हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

दूसरा भाग

अर्थ काण्ड
खण्ड
काम्य काण्ड

मूल्य [illegible] रु० । सजिल्द मूल्य [illegible] रु०

हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

दूसरा भाग

अनुवादक
'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रथम संस्करण :: श्रावण पूर्णिमा २०४० वि०—११ अगस्त १९८४

प्रकाशक
शाक्त-साधना-पीठ
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग–६

प्राप्ति-स्थान
शाक्त-साधना-पीठ
कल्याण मन्दिर (धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशक-विक्रेता)
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

मूल्य [illegible] रु०

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग–६

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन — सात

अर्थ-काण्ड

१ पहला परिच्छेद : आचार-सप्तकादि एवं गुरु-पंक्ति-निरूपण — १-१३

[१ सात आचारों का वर्णन, २ वेदाचार-वर्णन, ३ इष्ट-देवता एवं गुरुदेव का ध्यानादि, ४ मानसिक गन्धादि द्वारा गुरु का पूजन आदि, ५ गुरु-पूजा का क्रम, ६ गुरु के अन्य ध्यान आदि, ७ कुल-वृक्षों के लक्षण आदि, ८ गुरु-ध्यान और गुरु-पादुका-मन्त्र का उद्धार, ९ गुरु-पादुका का माहात्म्य, १० गुरु-पत्नी की पूजा के मन्त्रादि, ११ स्वशक्तिक-गुरु-स्तोत्र, १२ पादुका-पञ्चक-स्तोत्र, १३ गुरु-स्तोत्र, १४ गुरु-कवच, १५ प्रणाम, स्तुति आदि का फल, १६ सविधि गुरु-कवचम्, १७ गुरु-प्रणाम-स्तुति, १८ सद्गुरु-प्रणाम-मन्त्र, १९ बाह्य गुरु-चतुष्टय को नमस्कार आदि, २० स्त्री गुरु का ध्यान, स्तोत्र, कवचादि, २१ स्त्री-गुरोः स्तोत्रम्, २२ स्त्री-गुरु-कवचम्, २३ स्त्री-गुरु-गीता, २४ गुरु-पूजा की विधि, २५ सपत्नीक गुरु-पूजा का मन्त्रोद्धार, २७ गुरु-पूजा और मन्त्र के जप का फल, २८ गुरु-पंक्ति का चिन्तन]

२ दूसरा परिच्छेद : प्रातः-कृत्यादि विधि — १४-२५

[१ कुण्डलिनी का ध्यानादि, २ कुण्डलिनी-स्तोत्राष्टक, ३ कुण्डलिनी-स्तोत्र, ४ कुण्डलिनी-कवच, ५ चौर-गणेश-मन्त्र, ६ चौर-गणेश मन्त्र के विना पुराण-पाठ-पूजा-जपादि में दोष, ७ अजपा-मन्त्र का जप-काल, ८ चौर-मन्त्रों का प्रयोग, ९ अजपा-मन्त्र-जप का समर्पण, १० हंस का ध्यान, ११ जप का रहस्य, १२ अहोरात्र में अजपा की जप-संख्या, १३ 'अजपा' नाम का कारण, १४ मातृका-वर्णों का स्वरूप, १५ अजपा के दो रूप, १६ प्रातः-कृत्य आदि, १७ देव-पूजा-गृह के सम्मार्जन आदि का फल, १ देव-गृह के मार्जन में निषिद्ध द्रव्य, १९ देव-गृह का उप-लेपनादि, २० गुरु आदि को नमस्कार की विधि, २१ अद्वैत-भावनादि का वर्णन, २२ छिन्नमस्ता में विशेष-भावना, २३ दक्षिणा काली में विशेष भावना, २४ दक्षिण-कालिका-क्रम-स्तोत्र, २५ गुह्य-काली-क्रम-स्तोत्र, २६ त्रिपुर-सुन्दरी-क्रम स्तोत्र ।]

३ तीसरा परिच्छेद : स्नान से तिलक तक का वर्णन — २६-४२

[१ स्नान की विधि, २ स्नान न करने में दोष, ३ स्नान के भेद, ४ सात प्रकार के स्नान, ५ वैष्णव आभ्यन्तर स्नान, ६ शाक्त आभ्यन्तर स्नान, ७ शैव आभ्यन्तर स्नान, ८ नित्य-स्नान का फल, ९ बाह्य स्नान का फल, १० शाक्त के लिये विशेष कुश, ११ वैदिक स्नान के बाद तान्त्रिक स्नान और

स्नान का सङ्कल्पादि, १२ सङ्कल्प न करने से दोष, १३ सङ्कल्प में विहित और निषिद्ध पात्र, १४ मज्जन की विधि, १५ मृदालम्भन अर्थात् मिट्टी का लेप, १६ तर्पण की संक्षिप्त विधि, १७ पराये खात में स्नान, १८ अयनादि में तैल-स्नान का निषेध, १९ गात्र-मार्जन की विधि, २० गङ्गा-स्नान के बिना महा-विद्या-पूजन में दोष, २१ गङ्गा का ध्यान और मन्त्रादि, २२ गङ्गा का क्षेत्र, २३ गंगा के नाम का माहात्म्य, २४ गंगा-जल का माहात्म्य, २५ गंगा-युक्त देश की श्रेष्ठता, २६ गंगा में प्राण-त्याग का फल, २७ गंगा-यात्रा के मार्ग में मृत्यु होने का फल, २८ गंगा के किनारे मृत्यु का फल, २९ गंगा में मृतास्थि के फेंकने का फल, ३० गंगा-जल में मरने का फल, ३१ गंगा के पास चार हाथ मध्य में पिण्ड-दान, ३२ गंगा में तर्पण करने का फल, ३३ गंगा में अस्त-काल का अभाव, ३४ काल-भेद मानने में दोष, ३५ गंगा में पर-द्रव्य चुराने में दोष, ३६ गंगा में प्रति-ग्रह लेने में दोष, ३७ आत्माभिषेक का मन्त्र, ३८ मानस प्रयोग, ३९ मूलाधार-तीर्थ, ४० स्वाधिष्ठान और मणिपुर तीर्थ, ४१ अनाहत और विशुद्ध के तीर्थ, ४२ आज्ञा में स्थित तीर्थ, ४३ मानस स्नान का फल, ४४ जल में सूखे और स्थल में गीले वस्त्र का निषेध, ४५ पहने जानेवाले वस्त्र का परिमाण, ४६ ब्राह्मणादि के पहनने योग्य वस्त्र, ४७ वस्त्र पहनने की विधि, ४८ विशेष कर्म में विशेष वस्त्र, ४९ नीलादि वस्त्र पहनने में दोष, ५० कलियुग में सूती वस्त्रादि की प्रशंसा, ५१ सिले हुए वस्त्र से वैध कर्म का निषेध, ५२ द्विजातीय एवं कृमिज वस्त्र से स्नान का निषेध, ५३ कृमिज श्वेत वस्त्र की प्रशंसा, ५४ उत्तरीय वस्त्र का परिमाण, ५५ यज्ञोपवीत-मार्जन के द्रव्य, ५६ यज्ञोपवीत-मार्जन की विधि, ५७ कण्ठादि में यज्ञोपवीत पहनने में दोष, ५८ तिलक, उसका फल और धारण-मन्त्र, ५९ तिलक-धारण के स्थान, ६० तिलक न लगाने की निन्दा, ६१ ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारण की विधि और फल, ६२ त्रिपुण्ड्र की विधि और फल, ६३ शक्ति-तिलक की विधि]

४ चौथा परिच्छेद : सन्ध्या-विधि से गन्धादि-पात्र स्थापन तक के कर्म **४३–५७**

१ सन्ध्या की विधि, २ योगियों की सन्ध्या-विधि, ३ योगियों की तर्पण-विधि, ४ योगियों की अन्तर्याग-रूप सूर्य-पूजा, ५ कौलों की सन्ध्या-विधि, ६ वैदिक आपो-मार्जन की विधि, ७ गायत्री की आराधना आदि, ८ गायत्री का पूजा-यन्त्र, ९ गायत्री के न्यासादिक, १० गायत्री के षडंग-न्यासादि, ११ गायत्री के ध्यान, १२ गायत्री-पूजा-विधि, १३ गायत्री-जप का फल, १४ गायत्री-कवच, १५ गायत्री का पुरश्चरण, १६ गायत्री द्वारा काम्य कर्म, १७ तान्त्रिक गायत्री और उसका पुरश्चरण, १८ तान्त्रिक गायत्री के ऋष्यादि, १९ तान्त्रिक गायत्री के त्रिकाल-ध्यान, २० तान्त्रिक गायत्री का पूजा-क्रम, २१ विविध आसन और उसके फल, २२ सिद्धासन, २३ पद्मासन, २४ पूजा-द्रव्यों की स्थापना, २५ अर्घ्यादि पात्रों का निर्णय, २६ पाद्य-पात्र, २७ पाद्य-प्रक्षेपणीय पात्र, २८ अर्घ्य-पात्र, २९ आचमनीय-पात्र, ३० गन्ध-पात्र, ३१ धूप-पात्र, ३२ दीप-पात्र, ३३ दीप-माला, ३४ दीपाधार ३५ नीराजन-पात्र, ३६ घण्टा, ३७ नैवेद्य-पात्र, ३८ पानीय-पात्र, ३९ ताम्बूल-पात्र]

५ पाँचवाँ परिच्छेद : भूत-शुद्धि से भक्ष्याभक्ष्य तक ५८-६८

[१ भूत-शुद्धि, २ भूत-शुद्धि न करने में दोष, ३ प्राणायाम, ४ पूजा के आधार, ५ प्रतिमा के पास यन्त्र-करण निषिद्ध, ६ पार्थिव शिव-लिंग में शक्ति-पूजा का निषेध, ७ स्फटिक के लिंग में शक्ति-पूजा का फल, ८ शक्ति की साकारता का कारण, ९ प्राण-प्रतिष्ठा, १० आसनादि उपचार, ११ निर्माल्य-काल का निरूपण, १२ देव-पूजादि में विहित और निषिद्ध द्रव्यादि ।]

काम्य-काण्ड

१ पहला परिच्छेद : मन्त्र-चैतन्यादि एवं माला-प्रकरण ६९-७८

[१ मन्त्र-चैतन्य और उसका फल, २ मन्त्रार्थ, ३ कुल्लुका, ४ कुल्लुका न जानने में दोष, ५ सेतु और उसके न जानने में दोष, ६ महा-सेतु और उसका फल, ७ निर्वाण और उसके न जानने में दोष, ८ जप के आदि में मुख-शोधन और उसके न करने में दोष, ९ प्राण-योग, १० दीपन और उसका फल, ११ जप का क्रम और उसका फल, १२ पुरश्चरण-सम्बन्धी विशेष विवरण, १३ वार-पुरश्चरण, १४ तिथि-पुरश्चरण, १५ मास-नियत-कार्यों में पुरश्चरण, १६ वारादि-पुरश्चरण, १७ ऋतु-पुरश्चरण, १८ श्रीदुर्गा का रहस्य-पुरश्चरण, १९ नक्षत्र-पुरश्चरण, २० करण और योग में पुरश्चरण, २१ संक्रान्ति-पुरश्चरण, २२ ग्रहण-पुरश्चरण और उसका फल, २३ माला और उसका फल ।]

२ दूसरा परिच्छेद : साधना-उपयोगी स्थान से प्रायश्चित्त तक ७९-८७

[१ साधना के उपयोगी स्थान, २ सिद्ध-पीठ, ३ काम-रूप की महिमा, ४ पीठ-निरूपण और उसका फल, ५ पीठ-देवता और उनके स्थान, ६ पूजा का काल, ७ शांति-वश्यादि कर्मों का काल, ८ महा-निशा आदि का निरूपण, ९ देव-पूजा में अकस्मात् बाधादि के लिए प्रायश्चित्त, १० गुरु-त्याग का प्रायश्चित्त, ११ विविध त्रुटियों के लिए प्रायश्चित्त, १२ अस्थिहीन-जीवादि की हत्या का प्रायश्चित्त, १३ क्षत्रिय, वैश्यादि की हत्या का प्रायश्चित्त, १४ महा-पातक का प्रायश्चित्त, १६ शालग्रामादि के सम्पर्क में दिव्य-करण का प्रायश्चित्त, १७ प्रायश्चित्त हेतु गंगा-स्नान का सङ्कल्प-वाक्य ।]

३ तीसरा परिच्छेद : विशेष साधनादि से ज्वालामुखी-प्रयोग तक ८८-९४

[१ विशेष साधन, २ प्रकृत साधन, ३ शय्या-साधन और उसका फल, ४ त्रि-वाट, चतुर्वाट-साधन और उनका फल, ५ विल्व-साधन और उसका फल, ६ कार्त्तवीर्यार्जुन-प्रयोग, ७ कार्त्तवीर्यार्जुन-कवच, ८ कार्त्तवीर्य अष्टोत्तर-नाम-शतकं, ९ कार्त्तवीर्य-द्वादश-नाम-कीर्तन ।]

४ चौथा परिच्छेद : कुक्कुट, उच्छिष्ट-चाण्डालिनी आदि प्रयोग ९५-९८

[१ कुक्कुट-प्रयोग, २ वश्य-कर्म-प्रयोगादि, ३ चरणायुध-मन्त्र, ४ उच्छिष्ट-चाण्डाली-प्रयोग, ५ ग्राम-मेध और उसका फल, ६ धूमावती-प्रयोग और उसका फल, ७ कृत्या-परिमल का प्रयोग, ८ जय-दुर्गा मन्त्र और ज्वालामुखी के प्रयोगादि ।]

५ पाँचवाँ परिच्छेद : दुर्गोत्सव की विधि ९९-१००

[१ दुर्गोत्सव, २ पूजा का विधान, ३ पूजा-काल का निर्णय, ४ पूजा के आधार, ५ विल्व-युग्म-का विशेष-फल-कथन, ६ विल्व-युग्म या प्रतिमा के गिरने का दोष और उसका प्रायश्चित्त, ७ पूजा-मण्डप के स्थान का निरूपण, ८ सिंहासनादि का विवरण ।]

६ छठा परिच्छेद : दुर्गा के विशेष मन्त्र और ध्यान-पूजा, स्तुति आदि १०१-१०४

[१ त्र्यक्षर दुर्गा-मन्त्र, २ दशाक्षर जयदुर्गा-मन्त्र, ३ भगवती दुर्गा के ध्यान, ४ बलि-प्रकरण, ५ होम-विधि, ६ आहुति देने की विधि, ७ द्रव-विशेष में अग्नि-जिह्वा, ८ द्रव्य के अभाव में उसके प्रति-निधि, ९ पूर्णाहुति देने का नियम ।]

७ सातवाँ परिच्छेद : मास-कृत्यादि का कथन १०५-११२

[१ आश्विन मास के कृत्य, २ कार्तिक मास के कृत्य, ३ मार्गशीर्ष के कृत्य, ४ पौष के कृत्य, ५ माघ के कृत्य, ६ फाल्गुन के कृत्य, ७ वार्षिक कृत्य, ८ देवी की सोलह यात्रायें ।]

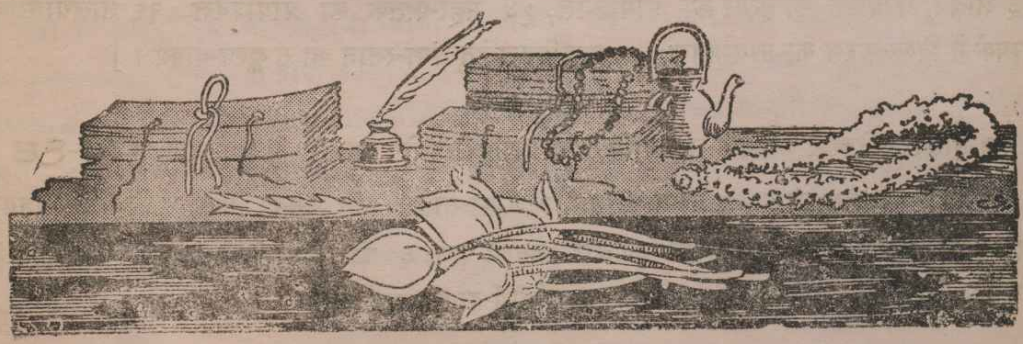

प्राक्कथन

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी ने एक ओर 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' जैसे लुप्त-प्राय तन्त्र-ग्रन्थों के पुनरुद्धार पर बल दिया था, दूसरी ओर उन्होंने इसकी भी आवश्यकता बताई थी कि तन्त्र-साधना में पारङ्गत साधकों और विद्वानों का जीवन भी यथा-सम्भव प्रकाश में लाया जाय। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत दूसरे भाग का प्रकाशन 'ईश्वर' नामक विक्रम सम्वत् के पितृ-पक्ष में हो रहा है, अतः प्राक्कथन में सबसे पूर्व इस ग्रन्थ के लेखक श्री रामतोषण के पूर्वजों का उल्लेख कर उनकी पुण्य स्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना उचित प्रतीत होता है। अतः यहाँ लेखक का वंश-वृक्ष प्रस्तुत किया जाता है—

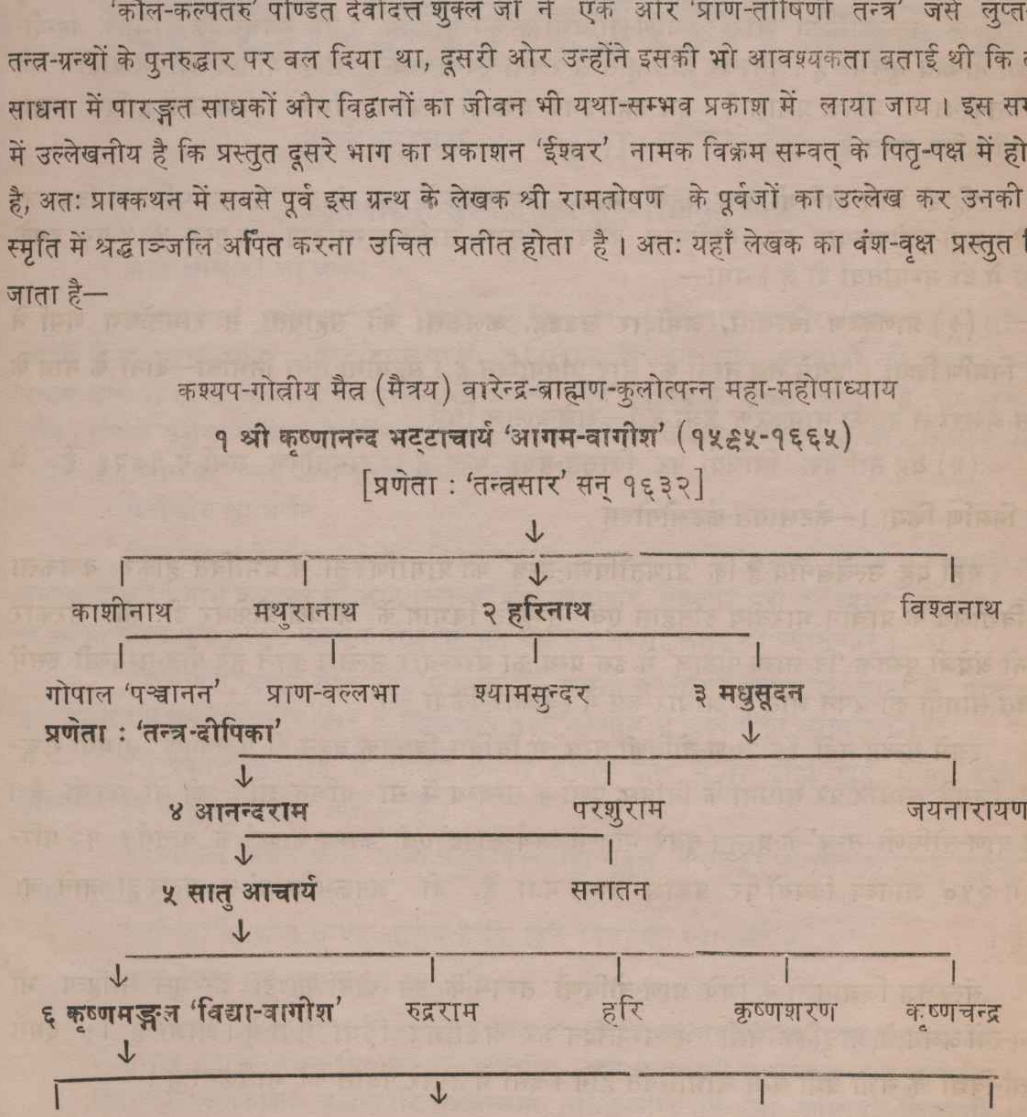

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' के प्रणेता श्री रामतोषण-भट्टाचार्य तन्त्रसार के प्रणेता 'आगम-वागीश' की सातवीं पीढ़ी में आविर्भूत हुये थे और इस वंश में एक-से-एक उद्भट विद्वान् हुए। इस यशस्वी परिवार के मूल निवास-स्थान का पता है—'आगनेश्वरी-तला', श्री-धाम, नवद्वीप (बंगाल)। वंशज अब भी श्रीधाम में हैं, जो आगमेश्वरी (भगवती काली) के उपासक हैं। इस प्रकार सात पीढ़ियों की सतत साधना के फल-स्वरूप कम-से-कम तीन साधना-विषयक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ—१ तन्त्र-सारः, २ तन्त्र-दीपिका और ३ प्राण-तोषिणी तन्त्रम्। इनमें से दो उपलब्ध हैं, जिनके हिन्दी-रूपान्तर भी अब सुलभ हैं। निश्चय ही यह तन्त्र-रचना स्वनाम-धन्य श्री कृष्णानन्द 'आगम-वागीश' की शाश्वत तपस्या का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हम यहाँ उनके यशस्वी दिवंगत वंशजों सहित उन्हें हार्दिक श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करते हैं।

'हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र' पहले भाग के प्राक्कथन में इस संग्रह-ग्रन्थ का परिचय दिया जा चुका है। महा-महोपाध्याय स्व० गोपीनाथ कविराज कृत 'तान्त्रिक साहित्य' के पृष्ठ ४०४ पर इसके सम्बन्ध में दो सम्मतियाँ दी हैं। यथा—

(१) प्राणकृष्ण विश्वास, जमींदार खडडह, कलकत्ता की सहायता से रामतोषण शर्मा ने इसका निर्माण किया। 'इसमें सब तन्त्रों का सार प्रतिपादित है। सहयोगी तथा निर्माता—दोनों के नाम के आद्यन्त अक्षरों से इसका नामकरण हुआ है।—राजेन्द्रलाल मित्र

(२) यह तान्त्रिक विधियों पर विस्तृत-संग्रह ग्रन्थ है। रामतोषण शर्मा ने १८२१ ई० में इसका निर्माण किया।—कैटलागस कैटलोगोरम्

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'प्राणतोषिणी-तन्त्र' की प्रामाणिकता से प्रभावित होकर कलकत्ता विश्व-विद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर डी. सी. सरकार ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'दि शाक्त पीठाज़' में इस ग्रन्थ का बारम्बार उल्लेख करते हुये पीठ-सम्बन्धी इसमें सङ्कलित सामग्री को अपने शोध के आधार-रूप में स्वीकार किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि '**प्राण-तोषिणी तन्त्र**' में विविध विषयक बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री सङ्कलित है, जिसके आधार पर साधना के विविध पक्षों के सम्बन्ध में सार-गर्भित शोध की जा सकती है। 'हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र' के प्रस्तुत दूसरे भाग में 'अर्थ-काण्ड' एवं 'काम्य-काण्ड' के अन्तर्गत १२ परिच्छेदों में २५० ज्ञातव्य विषयों पर प्रकाश डाला गया है, जो 'अनुक्रमणिका' से सहज ही जाने जा सकते हैं।

संस्कृतज्ञ जिज्ञासुओं के लिये **प्राण-तोषिणी तन्त्रम्** के इन दोनों काण्डों का मूल साहित्य भी ज्यों-का-त्यों अलग से आधुनिक शैली में सम्पादित कर प्रकाशित किया गया है। आशा है कि इससे अध्यात्म-विद्या के सभी प्रेमी बन्धु लाभान्वित होंगे। इसी में हमारे प्रयास की सार्थकता है।

प्रयाग, श्रावण पूर्णिमा २०४१

—कुल-भूषण

श्रीगणेशाय नमः

हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

अर्थ-काण्ड : पहला परिच्छेद

आचार-सप्तकादि एवं गुरु-पंक्ति-निरूपण

सात आचारों का वर्णन

नित्या-तन्त्र, प्रथम पटल में बताया है कि 'वेद' आदि चार आचार 'पशु-भाव' में और 'वाम' आदि तीन आचार 'वीर' तथा 'दिव्य-भाव' में निर्दिष्ट हैं। इन सात आचारों को कुलार्णव-तन्त्र के पञ्चम खण्ड में स्पष्ट किया है। यथा—सबसे उत्तम 'वेद' है, वेद से उत्तम 'वैष्णव' है, 'वैष्णव से उत्तम 'शैव', शैव से उत्तम 'दक्षिण' है, दक्षिण से उत्तम 'वाम', वाम से उत्तम 'सिद्धान्त' और सिद्धान्त से उत्तम 'कौल' है। कौल से उत्तम अन्य कोई आचार नहीं है।

वेदाचार का वर्णन

नित्या-तन्त्र में कहा है कि—'वेदाचार' में ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर गुरुदेव को उनके नामों से नमस्कार करे। नाम के अन्त में 'आनन्द-नाथ' शब्द लगाकर सहस्रार पद्म में ध्यान कर पाँच उपचारों से उनका पूजन करे। फिर वाग्भव बीज 'ऐं' का जप कर परमा कला का ध्यान करे।

रुद्र-यामल, उत्तर-खण्ड, द्वितीय पटल में—प्रभात में उठकर अरुणोदय-काल से प्रातःकृत्यादि कर शय्या पर पुनः बैठे और शिर के सहस्र-दल वाले अम्भोज में गुरुदेव का ध्यान करे।

इस प्रकार पूर्व-वचन से समता होने से प्रभात-काल में या ब्राह्म-मुहूर्त में या आगे कथित पश्चिम-याम में गुरु-ध्यानादि कर्त्तव्य है।

रुद्र-यामल, प्रथम खण्ड, प्रथम पटल में—ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर पद्मासन लगाकर भूत-शुद्धि कर प्रातःकाल गुरुदेव का स्मरण करे।

यहाँ 'आदि'-शब्द से यह आशय है कि इष्ट-देवता का ध्यानादि करे।

इष्ट-देवता एवं गुरुदेव का ध्यानादि

नील-तन्त्र, प्रथम पटल में—पश्चिम याम में उठकर उग्र-तारिणी का ध्यान करे। यथा—

आमूलाद् ब्रह्म-रन्ध्रान्तं विष-तन्तु-स्वरूपिणीम्, मूल-मन्त्र-मयीं साक्षादमृतानन्द-रूपिणीम्।
सूर्य-कोटि-प्रतीकाशां चन्द्र-कोटि-सुशीतलाम्, तडित्-कोटि-सम-प्रभां कामानल-शिखोपरि।
तत्-प्रभा-पटल-व्याप्त-पाटली - कृत-देह-वान्, सहस्र-दल-पङ्कजे सकल-शीत-रश्मि-प्रभाम्।
वराभय-कराम्बुजं विमल-गन्ध-पुष्पोक्षितम्, प्रसन्न-वदनेक्षणं सकल-देवता-रूपिणम्।
स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधान-पूर्वं गुरुम्॥

अर्थात् मूलाचार चक्र से ब्रह्म-रन्ध्र तक व्याप्त रहनेवाली, कमल-नाल के सूक्ष्म तन्तु के समान स्वरूपवाली, मूल-मन्त्र-मयी एवं साक्षात् अमृतानन्द-रूपवाली जो इष्ट-देवता कामाग्नि-शिखा के ऊपर कोटि-सूर्यों की जैसी चमक और कोटि चन्द्रों जैसी शीतलता तथा कोटि बिजलियों जैसी उज्ज्वल दिखाई देती है, उसकी प्रभा के प्रकाश से रक्त-वर्ण हुए शरीर वाले गुरुदेव को, जो वर और अभय हाथों से दे रहे हैं, मुख व दृष्टिपात जिनका प्रसन्न है, जो सभी देवतात्मक हैं, शीतलता देनेवाला प्रकाश जिनसे निकल रहा है और जो निर्मल गन्ध-पुष्प से युक्त हैं, अपने शिर के सहस्र-दल कमल में, 'हं-स' पर विराजमान, उनके नाम-सहित स्मरण करे।

रुद्र-यामल के पूर्व-खण्ड में भी यही ध्यान दिया है, केवल 'पुष्पोक्षितं' के स्थान पर, 'पुष्प-स्रजम्' पाठ है। अर्थात् गन्ध एवं पुष्प-माला से युक्त हैं।

विश्वसार के द्वितीय पटल में भी—

प्रातः शिरसि शुक्लेऽब्जे द्वि-नेत्रं द्वि-भुजं गुरुम्। वराभय-करं शान्तं स्मरेत् तन्नाम-पूर्वकम् ॥

अर्थात् प्रातःकाल अपने शिर में श्वेत कमल पर दो नेत्र, दो भुजावाले शान्ति-मय गुरुदेव का, जो हाथों में वर और अभय मुद्रा किए हैं, उनके नाम-सहित स्मरण करे।

कङ्काल-मालिनी तन्त्र के प्रथम पटल में भी—

सहस्र-दल-पद्मस्थं अन्तरात्मानभुज्ज्वलम्, तस्योपरि नाद-विन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वले।
तत्र निज-गुरुं नित्यं रजताचल-सन्निभम्, वीरासन-समासीनं सर्वाभरण-भूषितम्।
शुक्ल-माल्याम्बर-धरं वरदाभय-पाणिनम्, वामोरु-शक्ति-सहितं कारुण्येनावलोकितम्।
प्रियया सव्य-हस्तेन धृत-चारु-कलेवरम्, वामेनोत्पल-धारिण्या रक्ताभरण-भूषया।
ज्ञानानन्द-समायुक्तं स्मरेत् तन्नाम-पूर्वकम् ॥

अर्थात् सहस्र-दल पद्म पर स्थित उज्ज्वल अन्तरात्मा के ऊपर नाद और विन्दु के मध्य में उज्ज्वल सिंहासन पर नित्य अपने गुरुदेव का नाम-सहित ध्यान करे। वे चांदी के पर्वत-समान प्रकाशमान हैं, वीरासन से बैठे हैं, सभी आभूषणों से युक्त हैं, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहने हैं, हाथ में वर और अभय मुद्राएँ हैं; बाईं जंघा पर उनकी शक्ति हैं, जो दया-पूर्ण दृष्टि से देख रही हैं। गुरुदेव के सुन्दर शरीर को उनकी प्रिया शक्ति अपने दाएँ हाथ से आलिङ्गित किए हैं, जो बाएँ हाथ में कमल का पुष्प लिए हैं और लाल वस्त्र तथा आभूषणों से विभूषिता हैं।

पूर्व-खण्ड में भी है—

वामोरु-न्यस्त-शक्तिं च स्व-पाण्यालिङ्गित-प्रभम्, वाम-हस्तोत्पलां रक्तां ध्यायेत् परम-तृप्यतीम्।

अर्थात् बाँई जाँघ पर विराजमान शक्ति को, जो अपने हाथ से उन्हें आलिङ्गन किए हैं, बाँएँ हाथ में कमल लिए हैं, लाल वस्त्र पहने हैं और परम तृप्ति प्रदान कर रही हैं, ध्यान करे।

रुद्र-यामल के उत्तर-खण्ड, द्वितीय पटल में रक्त-वर्ण वाले गुरुदेव का जो ध्यान दिया है, वह 'राजस-गुरु' के सम्बन्ध में है। यथा—

तरुणादित्य-सङ्काशं तेजोबिम्बं महा-गुरुम्, अनन्तानन्त-महिमा-सागरं शशि-शेखरम्।
महा-सूक्ष्म-भास्वराङ्गं तेजो-विम्बं महा-गुरुम्, महा-शुक्लाम्बराब्जस्थं द्वि-नेत्रं द्वि-भुजं गुरुम्।
आत्मोपलब्धि-विषयं तेजसा शुक्ल-वाससम्, आज्ञा-चक्रोर्ध्व-निकरं कारणं च सतां सुखम्।

धर्मार्थ-काम-मोक्षाङ्गं वराभय-करं विभुम्, प्रफुल्ल-कमलारूढं सर्वज्ञं जगदीश्वरम्।
अन्तः प्रकाश-चपलं वन-माला-विभूषितम्, रत्नालङ्कार-भूषाढ्यं देव-देवं सदा भजेत्।

अर्थात् देवों के देव महान् गुरुदेव का सदा इस प्रकार ध्यान करे—वे तरुण सूर्य के समान तेजस्वी हैं, उनकी महिमा अति अनन्त है, मस्तक पर चन्द्रमा है, सारा शरीर अति तीक्ष्ण तेज से उद्दीप्त है, अत्यन्त उज्ज्वल कमल पर बैठे हैं, दो नेत्र और दो भुजाएँ हैं, आत्म-साक्षात्कार के तेज से वस्त्र उज्ज्वल हैं, आज्ञा-चक्र के ऊपर निवास है, सज्जनों को सुख देते हैं। धर्मार्थ-काम-मोक्ष-दाता हैं और हाथों में वराभय मुद्राएँ हैं। खिले हुए कमल पर बैठे वे सर्वज्ञ हैं—जगत् के ईश्वर हैं। अन्तःकरण के ज्ञान से पूर्ण वे सुन्दर माला एवं रत्नालङ्कारों से विभूषित हैं।

राघव भट्ट का यह मत है कि शक्ति-विषय में रक्त-वर्ण के ही गुरु का ध्यान करना चाहिए, श्वेत-वर्ण का नहीं। शक्ति से अतिरिक्त विषय में श्वेत-वर्ण का ही ध्यान करे किन्तु 'नील-तन्त्र' आदि में शक्ति-विषय में भी श्वेत-वर्ण वाले ध्यान दिए हैं। 'गुरु-कवच' में भी कहा है—

सहस्रारे महा-पद्मे कर्पूर-धवलो गुरुः।

आधुनिक लोग 'कर्पूर-धवल' को तृतीया-समास मानकर गुरु का धवलत्व अर्थात् श्वेत वर्ण बताते हैं। रक्त-वर्ण का ध्यान अनुशासन के विरुद्ध है क्योंकि कर्पूर के लेप करने का कहीं प्रमाण नहीं मिलता। अथवा रक्त-वर्णा शक्ति की प्रभा से गुरु को रक्त-वर्ण का मानते हैं। जैसा कि आगे उल्लिखित 'सित-रक्त-प्रभां' विशेषण से प्रकट होता है। यहाँ जवा-स्फटिक के न्याय से शक्ति-प्रभा की अधिकता को प्रकट करने के लिए 'रक्त' मात्र कहा है। कोई-कोई पाणिनि के 'व्यत्ययो बहुलं' इस सूत्र के आधार पर लिङ्ग-व्यत्यय से इसे स्त्री-ध्यान बताते हैं। राजस में रक्त-वर्ण का ध्यान विहित है, इसे आगे प्रतिपादित किया जायगा।

मानसिक गन्धादि द्वारा गुरु का पूजन आदि

नील-तन्त्र—तब अपनी-अपनी मुद्रा से मानसिक गन्धादि द्वारा पूजन करे। कनिष्ठा पृथिवी-तत्त्व है, उसके योग से 'गन्ध' की; अंगूठा आकाश तत्त्व है, उससे 'पुष्प' की; तर्जनी वायु-तत्त्व है, उससे 'धूप' की; मध्यमा अग्नि (तेज) तत्त्व है, उससे 'दीप' की; अनामिका जल-तत्त्व है, उससे 'नैवेद्य' की योजना करे। इसके बाद वाग्भव 'ऐं' का १०८ बार जप करे। जप-फल समर्पित कर भक्ति-पूर्वक भूमि पर दण्ड-वत् प्रणाम करे।

अन्नदा कल्प में भी—गुरु और गुरु-पत्नी के युगल-रूप का ध्यान कर भौतिकादि मन्त्रों से युक्त मुद्राओं द्वारा मानस उपचारों से पूजन करे। भूमि (लं), आकाश (हं), मरुत् (यं), वह्नि (रं), वारि (वं) —इन बीज-मन्त्रों से क्रमशः कनिष्ठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका से अंगूठे को मिला कर पाँच मुद्रायें बनाए। पृथिव्यात्मक गन्ध, आकाशात्मक पुष्प, वाय्वात्मक धूप, वह्न्यात्मक दीप और रसात्मक नैवेद्य होता है। इन्हें देकर वाग्भव 'ऐं' का १०८ बार जप करे।

कङ्काल-मालिनी-तन्त्र, प्रथम पटल में—मानस उपचारों से पूजाकर प्रसन्न मन से कल्पना करे। भूम्यात्मक 'गन्ध' देकर भाव-'पुष्प' दे। फिर वाय्वात्मक 'धूप' देकर तेज से 'दीप' दे। अमृत-रूप 'नैवेद्य' देकर वरुणात्मक 'पानीय' (पेय जल) दे। आकाश-रूप 'दर्पण' देकर 'चामर' और 'छत्र' दे। तत्सम्बन्धी मुद्रायें दिखाते हुए पूजा कर यथा-शक्ति गुरु-मन्त्र का जप करे। फिर कवच-स्तोत्र पढ़े।

गुरु-पूजा का क्रम

कुल-मूलावतार-कल्प-सूत्र-टीका, तृतीय काण्ड में—अपने गुरु का ध्यान कर निम्न मन्त्रों से मानस पूजन करे—

अमुकानन्द-नाथामुक-शक्त्यम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि—कनिष्ठाभ्यां लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः। अंगुष्ठाभ्यां हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः। तर्जनीभ्यां यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः। मध्यमाभ्यां रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः। अनामिकाभ्यां वं अमृतात्मकं नैवेद्यकं समर्पयामि नमः।

गुरु के अन्य ध्यान आदि

गुरु-गीता में—**हृदम्बुजे कर्णिक-मध्य-संस्थं सिंहासने संस्थित-दिव्य-मूर्तिम्,**
ध्यायेद् गुरुं चन्द्र-कला-प्रकाशं सच्चित्-सुखाभीष्ट-वर-प्रदानम्।
मुक्ता-फलाभूषित-दिव्य-मूर्तिं वामाङ्क-पीठ-स्थित-दिव्य-शक्तिम्,
श्वेताम्बरं श्वेत-विलेप-युक्तं मन्द-स्मितं पूर्ण-कला-विधानम्॥

अर्थात् हृदय-कमल की कर्णिका के मध्य में, सिंहासन पर विराजमान दिव्य स्वरूपवाले गुरुदेव का ध्यान करे। वे चन्द्र-कला से प्रकाशमान हैं, सच्चित् के सुख से अभीष्ट वर-दाता हैं, मोतियों से उनका दिव्य शरीर विभूषित है, बाएँ अङ्ग के पीठ पर दिव्य शक्ति विराजमाना है, श्वेत वस्त्र पहने हैं, श्वेत चन्दनादि का लेप लगाए हैं, मन्द मुस्कान कर रहे हैं और पूर्ण-कला से युक्त हैं।

यहाँ एक प्रश्न उठता है। वह यह कि गुरु का स्थान शिर के पद्म में बताया है। फिर यहाँ हृदय-कमल में क्यों कहा है? इस प्रश्न का समाधान पूर्व-लिखित रुद्र-यामल के वचन से हो जाता है।

सद्-गुरु का ध्यान (गुरु-गीता में)

ब्रह्मानन्दं परम-सुखदं केवलं ज्ञान-मूर्तिम्, द्वन्द्वातीतं गगन-सदृशं तत्त्वमस्यादि-लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षि-भूतम्, भावातीतं त्रिगुण-रहितं सद्-गुरुं तं नमामि॥

अर्थात् ब्रह्मानन्द-स्वरूप, परम सुख-दायक, एकमात्र ज्ञान-मूर्ति, द्वन्द्वों से परे, आकाश के समान सर्वज्ञ, 'तत्त्वमसि' आदि के मर्मज्ञ, एक-मात्र नित्य, निर्मल, स्थिर, सदा साक्षी, भावातीत, त्रिगुणों से परे सद्-गुरु को नमस्कार करता हूँ।

कुल-वृक्षों के लक्षण आदि

रुद्रयामल, पूर्व-खण्ड में कुल-वृक्षों को प्रणाम करने के बाद गुरु का ध्यान करने का निर्देश है। रेवती-तन्त्र, चतुर्थ पटल में नौ 'कुल-वृक्ष' ये बताए हैं—१ हरीतकी, २ धात्री, ३ निम्ब, ४ अश्वत्थ, ५ कदम्ब, ६ डुम्बरु, ७ वट, ८ विल्व और ९ तिन्तिड़ी। कुल-वृक्षों की लकड़ी आदि को होम के लिए लाना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि तिन्तिड़ी आदि की लकड़ी से भी होम के लिए अग्नि जलाई जाती है। अतः होमार्थ समिधा के लिए इन वृक्षों की लकड़ी कार्य में लाये।

गुरु-ध्यान और गुरु-पादुका-मन्त्र का उद्धार

रुद्र-यामल में—ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर कुल-वृक्ष को प्रणाम कर शिर के सहस्रार-पद्म में चन्द्र-मण्डल के मध्य में हंस-मन्त्र के अकारादि तीन रेखाओं वाले सुन्दर पीठ पर वीर साधक चाँदी के पर्वत के समान उज्ज्वल अपने गुरुदेव का ध्यान करे। यथा—

पद्मासीनं स्मित-मुखं वराभय-कराम्बुजम्, शुक्ल-माल्याम्बर-धरं शुक्ल-गन्धानुलेपनम् ।
वामोरु-स्थितया रक्त-शक्त्यालिङ्गित-विग्रहम्, तया स्व-दक्ष-हस्तेन धृत-चारु-कलेवरम् ।
वामेनोत्पल-धारिण्या सु-रक्त-वसन-स्रजा, सित-रक्त-प्रभां विभ्रच्छिव-दुर्गा-स्वरूपिणम् ।

अर्थात् पद्म के ऊपर विराजमान हैं, मुख पर मुस्कान है, कर-कमलों में वर और अभय मुद्रायें हैं, श्वेत-पुष्प-माला और श्वेत-वस्त्र पहने हैं, श्वेत चन्दन से लिप्त हैं। बाँई जंघा पर रक्त-वर्णा शक्ति उनके शरीर का आलिङ्गन किए बैठी हैं जो अपने दाएँ हाथ से उनके सुन्दर शरीर को पकड़े हुई हैं और बाँएँ हाथ में कमल का फूल लिए हैं तथा सुन्दर लाल वस्त्र एवं लाल पुष्प-माला से सुशोभिता हैं। इस प्रकार श्वेत और रक्त प्रभा वाले शिव एवं दुर्गा के समान स्वरूप वाले गुरु एवं उनकी शक्ति का ध्यान करे।

परमानन्द के रस से परिपूर्ण गुरुदेव का उनके नाम-सहित ध्यान करना चाहिए। पूजन का मन्त्र निम्न प्रकार है—

ॐ ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयूं हसखफ्रें हसौं अमुकानन्दनाथ-अमुकी-देव्यम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

यह श्रीगुरु-पादुका-मन्त्र सभी अभीष्ट फलों को देनेवाला है। 'मिथुन' अर्थात् गुरु एवं गुरु-पत्नी का ध्यान करना चाहिए। तब वाग्भव 'ऐं' का १०८ बार जप करे—यह विधान अन्नदा कल्प (पृष्ठ ३) के समान ही है।

गुरु-पादुका का माहात्म्य

कुल-मूलावतार-कल्पसूत्र-टीका में उद्धृत कल्प-वाहिनी में—पादुका के जानने मात्र से जीवन्मुक्ति मिलती है।

कुलार्णव में—करोड़ों महा दानों, करोड़ों व्रतों और करोड़ों यज्ञों से भी अधिक फल 'श्रीपादुका' को स्मरण करने से मिलता है। करोड़ों तन्त्रों, करोड़ों तीर्थों और करोड़ों देवार्चनों से भी अधिक फल-दायिनी 'श्रीपादुका' की स्मृति है। महा-रोग में, महा-सङ्कट में, महा-दोष में, महा-भय-आपत्ति में, महा-पाप में गुरु-पादुका के स्मरण से रक्षा होती है।

रुद्र-यामल, पूर्व-खण्ड, प्रथम पटल में—माया (ह्रीं) को लक्ष्मी (श्रीं) के पहले लगाए, सर्वत्र पूजन में यही विधि है।

पुरश्चरण-रसोल्लास, षष्ठ पटल में—पहले पुष्प-माला, चन्दन, सुवर्णादि के आभूषणों, श्वेत रक्त पीत व कृष्ण वर्ण के महीन वस्त्रों से गुरुदेव का उत्तम पूजन करे। फिर स्वर्ण-पात्रों में चारों प्रकार के भोजनों से उन्हें सन्तुष्ट करे। सोने-चांदी के पात्रों में सोलहों उपचारों से, कर्पूर एवं विविध सुगन्धियों से युक्त ताम्बूलों से 'शिव-सिंह' (गुरु) की पूजा करे।

इस प्रकार जगदीश्वर की पूजा कर गुरु की पत्नी आदि की सोलह उपचारों से पूजा करे। तब षोडशोपचारों से भक्ति-पूर्वक इष्ट-देवी की पूजा करे। अर्थात् पहले गुरुदेव की पूजा करे, तब देवी की सम्पूर्ण पूजा करे। इस प्रकार गुरु का ध्यान कर अन्तर्याग के क्रम से ही पद्म-पुष्पों से पूजन करे—इस वचन का आशय यह है कि मानस उपचारों द्वारा पूजा करे।

गुरु-पत्नी की पूजा के मन्त्रादि

मातृका-भेद तन्त्र, सप्तम पटल में पूजा-मन्त्र निम्न प्रकार बताया है—वाग्बीज (ऐं), महा-माया (ह्रीं), विष्णु-शक्ति (श्रीं), हसखफ्रें, आनन्दभैरव-मन्त्र (ह्सौं हसक्षमलवरयूं), आनन्दभैरवी-मन्त्र (स्ह्रौं सक्षमलवरयीं)। यही श्रीगुरु और श्रीगुरु-शक्ति का मन्त्र है। गुरु के नाम के अन्त में 'आनन्दनाथ' और श्रीगुरु-शक्ति के नाम के अन्त में 'अम्बा' कहें। अन्त में 'पूजयामि' कहें। यही पूजा की विधि है।

अन्नदा-कल्प में—तीन तार (ऐं ह्रीं श्रीं) का उच्चारण कर 'हसखफ्रें' कहे। फिर 'हसक्षमलवरयूं हसखफ्रें स्ह्रौः' कहे। तब 'अमुकानन्द-नाथ' के बाद 'अमुकी-देव्यम्बा श्रीपादुकां' कहकर 'चिन्तयामि नमः' अन्त में कहे। यह श्रीपादुका-मन्त्र सभी ईप्सित फलों का देनेवाला है।

रुद्र-यामल, पूर्व खण्ड, प्रथम पटल में—पहले त्रि-तार (ऐं ह्रीं श्रीं) कहकर शिव (ह), शक्ति (स), खकार (ख), फाग्नि + एकार + विन्दु (फ्रें) कहे, फिर शिव (ह), शक्ति (स), क्रम (क्ष म), भूमि (ल), इन्दु (व), वह्नि (र), वायु (य)—इनके अन्त में 'ऊं' लगाकर 'आनन्द-नाथ' युक्त गुरुनाम व उनकी शक्ति का उल्लेखकर 'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं श्रीपादुकां पूजयामि' कहने से पादुका मन्त्र होता है।

रुद्रयामल, पूर्व-खण्ड, पञ्चदश पटल में जप-मन्त्र—'आनन्दनाथ' शब्द के अन्त में 'गुरु' को चतुर्थी विभक्ति में अर्थात् 'गुरवे' कहे। फिर 'नमः' कहकर प्रणव (ॐ) कहे अर्थात् 'आनन्दनाथ-गुरवे नमः ॐ'। यह सर्व-सिद्धि-दायक है। गुरु के महा-मन्त्र को जपनेवाला सर्व-सिद्धियों का स्वामी होता है। गुरु-मन्त्र के प्रभाव से मुख में वाक्-सिद्धि होती है। नित्य १०८ या १००८ बार जपे। जप का समर्पण कर वाग्भव 'ऐं' से तीन बार प्राणायाम करे।

पूर्वोक्त अन्नदा-कल्प में उद्धृत नील-तन्त्र के वचनों के अनुसार वाग्भव (ऐं) भी जप-मन्त्र है। सम्प्रदाय के क्रम के अनुसार १०८ या १००८ बार गुरु-मन्त्र का जप कर तीन प्राणायाम करे। फिर 'गुह्याति-गुह्य०' इत्यादि से जप समर्पित कर स्तव, कवचादि का पाठ करे।

स्वशक्तिक-गुरु-स्तोत्र

शिरः-स्थित सु-पङ्कजे तरुण-कोटि-चन्द्र-प्रभं, वराभय-करा‌म्बुजं सकल-देवता-रूपिणम्।
भजामि वरदं गुरुं किरण-चारु-शोभोज्ज्वलं, प्रकाशित-पद - द्वयाम्बुजमलक्त - कोटि-प्रभम् ॥ १
जगद् - भय - निवारणं भुवन-भोग-मोक्ष-प्रदं, गुरोः पद-युगाम्बुजं भजति यत्र योगे जयम्।
भजामि परमं गुरुं नयन-पद्म-मध्य-स्थितं, भवाब्धि-भय-नाशनं शमन-रोग-काल-क्षयम् ॥ २
प्रकाशित-सु-पङ्कजे सु-दल-षोडशाख्ये प्रभुं, परापर-गुरुं भजे सकल-राज्य-भोग-प्रदम्।
विशाल-नयन-द्वयाम्बुज-तड़ित् - प्रभा-मण्डलं, कड़ार-मणि-पाटल-द्युति-मदिन्दु-विन्द्विन्दुकम् ॥ ३
महौजसमुमा - पतेर्विगत - दक्ष - भागे हृदि, प्रभाकर-शतोज्ज्वलं सु-विमलेन्दु-कोटचाननम्।
भजामि परमेष्ठिनं गुरु-गभीर-रावोल्वनं, चलाचल-कलेवरं प्रच्यपले दले द्वादशे ॥ ४

गुर्वङ्घ्रयब्जं शुभं मादन - गण - दहनं हेम - मञ्जीर - सारं,
नाना-शब्दाद्भुताक्लादित-परिचरणा-चारु-चक्रम् त्रिभङ्गम्।
नित्यं ध्यायेत् प्रभाते अरुण-शत-घटा-शोभनं योग-गम्यं,
नाभौ पद्मेऽति-कान्ते दश-दल-मणिभे भाव्यते योगिभिर्यत् ॥ ५
या माता मय - दानवादि - सुभुजा निर्माण - सीमा पुरे,
स्वाधिष्ठान - निकेतने रस - दले वैकुण्ठ - मूले मया।

जन्मोद्धार - विकार - भाव - लहरी वेद - प्रभा भाव्यते,
कन्दर्पार्पित - शान्ति - योनि - जननी विष्णु - प्रिया शाङ्करी ॥ ६
या भासानल - कुण्डली कुल - पथोद्दामाभ - शोभा - करी,
मूले पद्म - चतुर्दले कुल - वती निश्वास - देशाश्रिता ।
साक्षात् - कांक्षित - कल्पवृक्ष - लतिका सुप्ता स्वयम्भू-प्रिया,
नित्या योगि - भयापहा विष - हरा गुर्वम्बिका भाव्यते ॥ ७
ऊर्ध्वाम्भोरुह - निःसृतामृत - घटामोदाज्जलाप्लाविता,
गुर्वाद्या परिपातु सूक्ष्म - पथगा तेजो - मयी भास्वती ।
सूक्ष्मा साधन - गोचरामृत - मयी मूलादि - शीर्षाम्बुजे,
पूज्या चेतसि भाव्यते भुवि कदा माता सदोर्ध्वोद्गमा ॥ ८
स्थिति - पालन - योगेन ध्यानेन पूजनेन वा, यः पठेत् प्रत्यहं व्याप्य स देवो न तु मानुषः ।
कल्याणं धन-धान्यं च कीर्तिमायुर्यशः श्रियं, सायाह्ने च प्रभाते च पठेत् यदि सु-बुद्धिमान् ।
स भवेत् साधक - श्रेष्ठः कल्पद्रुम - कलेवरः, स्तवस्यास्य प्रभावेण वागीशत्वमवाप्नुयात् ॥ ९

पादुका-पञ्चक-स्तोत्रम्

कुल-मूलावतार-कल्पसूत्र टीका में 'पादुका-पञ्चक-स्तोत्र' में कुछ श्लोक अधिक हैं, वे भी यहाँ उद्धृत हैं ।

आदि-कादि किल खादि-तारकं वर्ण-मण्डलमखण्ड-सिद्धिदं,
अन्तरुल्लसित-हक्षलाक्षरं लक्षयन्ति पशवः कथं शिवे ॥ १
ब्रह्म - रन्ध्र - सरसीरुहोदरे नित्य - लग्नमवदातमद्भुतं,
कुण्डली - विवर - काण्ड - मण्डितं द्वादशार्ण-सरसीरुहं भजे ॥ २
तस्य कन्दलित - कर्णिका - पुटे क्लृप्त - रेखमकथादि-रेखया,
कोण-लक्षित-हलक्ष - मण्डली - भाव - लक्ष्यमबला-मयं भजे ॥ ३
तत्-पुटे पटु-तड़ित्-कडारिम-स्पर्द्धमान-मणि - पाटल - प्रभम्,
चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपुर्विन्दु-नाद-मणि-पीठ-मण्डलम् ॥ ४
ऊर्ध्वमस्य हुत-भुक्-शिखा-सखं तद्-विलास-परिवृंहणास्पदं,
विश्वघ-स्मर-महोत्सवोत्कटं व्यामृषामि युगमादि-हंसयोः ॥ ५
तत्र नाथ-चरणारविन्दयोः कुंकुमासव-झरी-मरन्दयोः,
द्वन्द्वमिन्दु-मकरन्द - शीतलं मानसं स्मरति मङ्गलास्पदं ॥ ६
निषक्त-मणि-पादुका-नियमिताघ - कोलाहल-स्फुरत्, किशलयारुणं नख-समुल्लसच्चन्द्रकम् ।
परामृत-सरोवरोदित - सरोज - सद् - रोचिषं, भजामि शिरसि स्थितं गुरु-पदारविन्द-द्वयम् ॥ ७
पादुका-पञ्चक-स्तोत्रं पञ्च-वक्त्राद् विनिर्गतं, षडाम्नाय-फलं प्राप्तं प्रपञ्चे चाति-दुर्लभम् ।

गुरु-स्तोत्र

कुब्जिका तन्त्र में 'गुरु-स्तोत्र' निम्न प्रकार दिया गया है—

ॐ नमस्तुभ्यं महा-मन्त्र-दायिने शिव-रूपिणे, ब्रह्म-ज्ञान-प्रकाशाय संसार-दुःख-तारिणे ।
अति-सौम्याय दिव्याय वीरायाज्ञान-हारिणे, नमस्ते कुल - नाथाय कुल-कौलिन्य-दायिने ।

शिव-तत्त्व - प्रबोधाय ब्रह्म-तत्त्व - प्रकाशिने, नमस्ते गुरवे तुभ्यं साधकाभय-दायिने।
अनाचाराचार-भाव-बोधाय भाव-हेतवे, भावाभाव-विनिर्मुक्त-मुक्ति-दात्रे नमो नमः।
नमस्ते शम्भवे तुभ्यं दिव्य-भाव-प्रकाशिने, ज्ञानानन्द-स्वरूपाय विभवाय नमो नमः।
शिवाय शक्ति-नाथाय सच्चिदानन्द-रूपिणे, काम-रूपाय कामाय काम-केलि-कलात्मने।
कुल - पूजोपदेशाय कुलाचार - स्वरूपिणे, आरक्त - निज - तच्छक्ति - सम-भाग - विभूतये।
नमस्तेऽस्तु महेशाय नमस्तेऽस्तु नमो नमः, इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं साधको गुरु-दिङ्-मुखः।
प्रातरुत्थाय देवेशि ! ततो विद्या प्रसीदति।

कङ्काल-मालिनी तन्त्र में 'गुरु-कवच' दिया है। यथा—**गुरु-कवचम्**

॥ देव्युवाच ॥

भूतनाथ ! महा-देव ! कवचं तस्य मे वद, गुरु-देवस्य देवेश ! साक्षाद्-ब्रह्म-स्वरूपिणः।

॥ ईश्वर उवाच ॥

अथ ते कथयामीशे ! कवचं मोक्ष-दायकं, यस्प ज्ञानं विना देवि ! न सिद्धिर्न च सद्-गतिः।
ब्रह्मादयोऽपि गिरिजे ! सर्वत्र जयिनः स्मृताः, अस्य प्रसादात् सकला वेदागम-पुरःसराः।
कवचस्यास्य देवेशि ! ऋषिर्विष्णुरुदाहृतः, छन्दो विराड् देवता च गुरु-देवः स्वयं शिवः।
चतुर्वर्गे ज्ञान-मार्गे विनियोगः प्रकीर्तितः।

सहस्रारे महा-पद्मे कर्पूर-धवलो गुरुः, वामोरु-स्थित-शक्तिर्यः सर्वत्र परि-रक्षतु।
परमाख्यो गुरुः पातु शिरसं मम वल्लभे, परापराख्यो नासां मे परमेष्ठी मुखं सदा।
कण्ठं मम सदा पातु प्रह्लादानन्द-नाथकः, बाहू द्वौ सनकानन्दः कुमारानन्द एव च।
वशिष्ठानन्द - नाथश्च हृदयं पातु सर्वदा, क्रोधानन्दः कटि पातु सुखानन्दः पदं मम।
ध्यानानन्दश्च सर्वाङ्गं बोधानन्दश्च कानने, सर्वत्र गुरवः पान्तु सर्वे ईश्वर-रूपिणः।
इति ते कथितं भद्रे ! कवचं परमं शिवे, भक्ति-हीने दुराचारे दत्वैतन्मृत्युमाप्नुयात्।
अस्यैव पठनाद् देवि ! धारणाच्छ्रवणात् प्रिये, जायते मन्त्र-सिद्धिश्च किमन्यत् कथयामि ते।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ शिखायां वीर-वन्दिते, धारणान्नाशयेत् पापं गङ्गायां कल्मषं यथा।
इदं कवचमज्ञात्वा यदि मन्त्रं जपेत् प्रिये, तत् सर्वं निष्फलं कृत्वा गुरुर्याति सुनिश्चितम्।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।

प्रणाम, स्तुति आदि का फल

पुरश्चरण-रसोल्लास, द्वितीय प्रश्न, दशम पटल में ईश्वर ने कहा है कि मन्त्र-साधना में बहुत साधक लगे रहते हैं किन्तु उन्हें मन्त्रों या चक्र-पूजनों से सिद्धि नहीं मिलती क्योंकि वे गुरु-पूजन-विधान और कवच को जाने बिना जप करते हैं। इसी से उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है। गुरु-चरणों में पहुँचकर कल्याणकारी कवच को प्राप्त करे, तो मन्त्र-यन्त्र की सिद्धि तुरन्त प्राप्त होती है। गुरु-कवच का यह विधान अति गुप्त है, किसी को बताए नहीं, चुपचाप इसके अनुसार करे। यथा—**सविधि गुरु-कवचम्**

विनियोग—ॐ नमोऽस्य श्रीगुरु-कवच-नाम-मन्त्रस्य परम-ब्रह्मर्षिः, सर्व-वेदानुज्ञो देव-देव श्री-आदि-शिवो देवता, नमो हंसौं हंसः हसक्षमलवरयूं बीजं, सोऽहं हंसः हसक्षमलवरयूं शक्तिः, हंसः सोऽहं कीलकं श्रीसमस्त-गुरु-मण्डल-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्--श्रीसिद्ध-मानव-मुखा गुरवः स्वरूपं, संसार-दाह-शमनं द्वि-भुजं त्रि-नेत्रम् ।
वामाङ्क-शक्ति - सक लाभरणैर्विभूषं, ध्यायेज्जपेत् सकल- सिद्धि-फल - प्रदं च ॥

इति मनसा प्रणम्य--हंसां हृदयाय नमः । हंसीं शिरसे स्वाहा । हंसूं शिखायै वषट् । हंसैं कवचाय हुँ । हंसौं नेत्र-त्रयाय वौषट् । हंसः अस्त्राय फट् ।

एवं कराङ्ग-न्यासं कृत्वा उपचारैः सम्पूज्य--

ॐ नमः प्रकाशानन्द-नाथश्च शिखायां पातु मे सदा, पर-शिवानन्द-नाथश्च शिरो मे रक्षयेत् सदा ।
पर-शक्ति-दिव्यानन्द-नाथो भाले च रक्षतु, कामेश्वरानन्द-नाथो मुखं रक्षतु सर्व-धृक् ।
दिव्यौघो मस्तकं देवि ! पातु सर्वं शिरः सदा, कण्ठादि-नाभि-पर्यन्तं सिद्धौघा गुरवः प्रिये !

भोगानन्द-नाथ-गुरुः पातु दक्षिण-बाहुकं, समयानन्द-नाथश्च सन्ततं हृदयेऽवतु ।
सहजानन्द-नाथश्च कटिं नाभिं च रक्षतु, एषु स्थानेषु सिद्धौघा रक्षन्तु गुरवः सदा ।
अधरे मानवौघाश्च गुरवः कुल-नायिके, गगनानन्द-नाथश्च गुल्फयोः पातु सर्वदा ।
लीलौघानन्द-नाथश्च रक्षयेत् पाद-पृष्ठतः, स्वात्मानन्द-नाथ-गुरुः पादांगुलीश्च रक्षतु ।
कन्दोलानन्द-नाथश्च रक्षेत् पाद-तले सदा, इत्येवं मानवौघाश्च न्यसेन्नाभ्यादि-पादयोः ।
गुरुर्मे रक्षयेदुर्व्यां सलिले परमो गुरुः, परापर - गुरुर्वह्नौ रक्षयेत् शिव - वल्लभे !
परमेष्ठी-गुरुश्चैव रक्षयेद् वायु-मण्डले, शिवादि-गुरवः साक्षादाकाशे रक्षयेत् सदा ।
इन्द्रो गुरुः पातु पूर्वे आग्नेय्यां गुरुरग्नयः, दक्षे यमो गुरुः पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिर्गुरुः ।
वरुणो गुरुः पश्चिमे च वायव्यां मारुतो गुरुः, उत्तरे धनदः पातु ऐशान्यामीश्वरो गुरुः ।
ऊर्ध्वं पातु गुरुर्ब्रह्मा अनन्तो गुरुरप्यधः, एवं दश दिशः पान्तु इन्द्राद्या गुरवः क्रमात् ।
शिरसः पाद-पर्यन्तं पान्तु दिव्यौघ-सिद्धयः, मानवौघाश्च गुरवो व्यापकं पान्तु सर्वदा ।
सर्वत्र गुरु-रूपेण संरक्षेत् साधकोत्तमं, आत्मानं गुरु-रूपं च ध्यायेन्मन्त्रं सदा बुधः ।
इत्येवं गुरु-कवचं ब्रह्म-लोकेऽपि दुर्लभं, तव प्रीत्या मयाख्यातं न कस्य कथितं प्रिये !
पूजा-काले पठेद् यस्तु जप-काले विशेषतः, त्रैलोक्य-दुर्लभं देवि ! भुक्ति-मुक्ति-फल-प्रदम् ।
सर्व-मन्त्र-फलं तस्य सर्व-यन्त्र-फलं तथा, सर्व-तीर्थ-फलं देवि ! यः पठेत् कवचं गुरोः ।
अष्ट-गन्धेन भूर्जे च लिख्यते चक्र-संयुतं, कवचं गुरु-पंक्तेस्तु भक्त्या च शुभ-वासरे ।
पूजयेद् धूप-दीपाद्यैश्च सुधाभिः सित-संयुतैः, तर्पयेद् गुरु-मन्त्रेण साधकः शुद्ध-चेतसा ।
धारयेत् कवचं देवि ! इह भूत-भयापहं, पठेन्मन्त्री त्रि-कालं हि स मुक्तो भव-बन्धनात् ।

एवं कवचं परात्परं दिव्यौघ-सिद्धौघ-कालवान् ।

यदि समर्थ हो, तो योग-सार में लिखित 'गुरु-सहस्रनाम-स्तोत्र' का भी पाठ करे । स्थानाभाव से उसे यहाँ नहीं उद्धृत किया है ।

रुद्र-यामल में बताया है कि आयु और आरोग्य की वृद्धि के लिए एकान्त भक्ति के साथ निम्न 'प्रणाम-स्तुति' द्वारा गुरुदेव को प्रणाम करे—

गुरु-प्रणाम-स्तुति

अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं, तत्-पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया, चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।

देवतायाः दर्शनं च करुणा-वरुणालयं, सर्व-सिद्धि-प्रदातारं श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ।
वराभय-करं नित्यं श्वेत-पद्म-निवासिनं, महा-भय-निहन्तारं गुरु-देवं नमाम्यहम् ।
महा-ज्ञानाच्छादिताङ्गं नराकारं वर-प्रदं, चतुर्वर्ग-प्रदातारं स्थूल-सूक्ष्म-द्वयान्वितम् ।
सदानन्द-मयं देवं नित्याञ्जन-निरञ्जनं, शुद्ध-सत्व-मयं देवं नित्य-कालं कुलेश्वरम् ।
ब्रह्म-रन्ध्रे महा-पद्मे तेजो-विम्बे निराकुले, योगिभिर्योग-गम्ये च चारु-शुक्र-विराजिते ।
सहस्र-दल-सङ्घाशे कर्णिका-मध्य-मध्यके, महा-शुक्ल-भास्वरार्क-कोटि-कोटी-महौजसम् ।
सर्व-पीठस्थममलं पर-हंसं परात्परं, वेदोद्धार-करं नित्यं काम्य-कर्म-फल-प्रदम् ।
सदा मनःशक्ति-मय-लय-स्थान-पदाम्बुजं, शरज्ज्योत्स्ना-ज्वलन्माला-शोभेन्दु-कोटिवन्मुखं ।
वाञ्छातिरिक्त-दातारं सर्व-सिद्धीश्वरं गुरुं, भजामि तन्मयो भूत्वा तं हंस-मण्डलोपरि ।
आत्मानं सुनिराकारं साकार-ब्रह्म-रूपिणं, विद्या-मन्त्र-प्रदातारं श्रीगुरुं परमेश्वरम् ।
सर्व-सिद्धि-प्रदातारं गुरु-देवं नमाम्यहं, कायेन मनसा वाचा ये नमन्ति निरन्तरम् ।
अवश्यं श्रीगुरोः पादाम्भोरुहे ते वसन्ति हि, प्रभाते कोटि-पुण्यं च प्राप्नोति साधकोत्तमः ।
मध्याह्ने दश-लक्षं च सायाह्नेऽनन्त-पुण्यदम् ।

सद्गुरु-प्रणाम-मन्त्र

गुरु-गीता में सद्गुरु को प्रणाम करने के लिए निम्न मन्त्र-श्लोक दिया है—

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरञ्जनं, नित्य-बोध-चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ।
आनन्दमानन्द-करं प्रसन्नं ज्ञान-स्वरूपं निज-बोध-युक्तं,
योगीन्द्रमीड्यं भव-रोग-वैद्यं श्रीमद्-गुरुं नित्यमहं नमामि ।

बाह्य गुरु-चतुष्टय को नमस्कार आदि

निर्वाण तन्त्र, तृतीय पटल में शिव से यह प्रश्न किया गया है कि शिर के पद्म में स्थित परमात्मा-स्वरूप गुरुदेव को बाहर कैसे नमस्कार किया जाय। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि शिर-पद्म में महादेव विराजमान हैं, वही परम गुरु हैं। उनके समान पूज्य तीन भुवनों में कोई नहीं है। बाहर गुरु-चतुष्टय को उन्हीं के रूप में ध्यान करना चाहिए। अन्य गुरु-जन भी उन्हीं के अंश-भाव से उत्पन्न हैं। इसी प्रकार सभी ब्राह्मण उनके अंशावतार हैं। जब इन सबकी भावना बाहर प्रत्यक्ष रूप में करे, तब चित्त को सहस्रार महा-पद्म से हटा ले। प्रत्यक्ष दर्शन होने पर उन्हीं को साक्षात् ब्रह्म-रूप में ध्यान करे और विधिवत् उन्हें नमस्कारादि करे। ब्राह्मण, ब्रह्मचारी और यति (संन्यासी)—इन तीनों को देखते ही भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करे। ऐसा करने से महा-पापी भी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। मोह-वश जो प्रणाम नहीं करता, उसे बड़ा पाप लगता है। रक्त-वस्त्र, भस्माङ्ग-भूषण, हाथ में दण्ड और त्रिशूल देखकर उन्हें धारण करनेवाले की तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए अन्यथा पाप होता है।

इस प्रकार बाहर गुरु आदि का दर्शन होने पर सहस्रार में गुरु का ध्यान करना निषिद्ध है।

स्त्री-गुरु का ध्यान, स्तोत्र, कवचादि

गुप्त-साधन तन्त्र, द्वितीय पटल में पार्वती पूछती हैं कि स्त्री से दीक्षा प्राप्त करना शुभ एवं सब कामनाओं की पूर्ति करनेवाला बताया है। यदि पूर्व-जन्मों के पुण्य से भाग्य-वश किसी को स्त्री-गुरु मिल

जाय, तो उनका ध्यान किस प्रकार करे ? अथवा उन स्त्री-गुरु का ध्यान कहाँ किया जाय ? इन प्रश्नों के उत्तर में शिवजी स्त्री-गुरु का ध्यान बताते हैं। यथा—

सहस्रारे महा-पद्मे किञ्जल्क-गण-शोभिते, प्रफुल्ल-पद्म-पत्राक्षी घन-पीन-पयोधरा।
प्रसन्न-वदना क्षीण-मध्या ध्यायेच्छिवां गुरुं, पद्म-राग-समाभासां रक्त-वस्त्र-सुशोभनां।
रक्त-कङ्कण-पाणिं च रक्त-नूपुर-शोभितां, शरदिन्दु-प्रतीकाशां रक्तोद्भासित-कुण्डलां।
स्व-नाथ-वाम-भागस्थां वराभय-कराम्बुजां।

स्त्री-गुरोः स्तोत्रम्

मातृका-भेद तन्त्र, सप्तम पटल में स्त्री-गुरु का स्तोत्र दिया है। यथा—

देव्युवाच—स्तुतिं च कवचं नाथ ! श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतं। श्रीगुरोः कवचं प्रोक्तं त्वया नाथ ! पुरा प्रभो!
इदानीं स्त्री-गुरोः स्तोत्रं कवचं मयि कथ्यतां, यस्य विज्ञान-मात्रेण पुनर्जन्म न जायते।
श्रीशिव उवाच—शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परम-गोपनं, यस्य श्रवण-मात्रेण संसारान्मुच्यते नरः।

नमस्ते देव-देवेशि ! नमस्ते हर-पूजिते ! ब्रह्म-विद्या-स्वरूपायै तस्यै नित्यं नमो नमः॥ १
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया, यया चक्षुरुन्मीलितं तस्यै नित्यं नमो नमः॥ २
भव-बन्धन-पारस्य तारिणी जननी परा, ज्ञानदा मोक्षदा नित्यं तस्यै नित्यं नमो नमः॥ ३
श्रीनाथ-वाम - भागस्था स-दया सुर-पूजिता, सदा विज्ञान-दात्री च तस्यै नित्यं नमो नमः॥ ४
सहस्रारे महा-पद्मे सदानन्द-स्वरूपिणी, महा-मोक्ष-प्रदा देवी तस्यै नित्यं नमो नमः॥ ५
ब्रह्म-विष्णु-स्वरूपा च महा-रुद्र-स्वरूपिणी, त्रिगुणात्म-स्वरूपा च तस्यै नित्यं नमो नमः॥ ६
चन्द्र-सूर्याग्नि-रूपा च मदाघूर्णित-लोचना, स्व-नाथं च समालिंग्य तस्यै नित्यं नमो नमः॥ ७
ब्रह्म-विष्णु-शिवत्वादि-जीवन्मुक्ति- प्रदायिनी, ज्ञान-विज्ञानयोर्दात्री तस्यै श्रीगुरवे नमः॥ ८
इदं स्तोत्रं महेशानि ! यः पठेद् भक्ति-संयुतः, स सिद्धिं लभते नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः।
प्रातःकाले पठेद् यस्तु गुरु-पूजा-पुरस्सरं, स एव धन्यो लोकेशो देवी-पुत्र इव क्षितौ॥

स्त्री-गुरु-कवचम्

इस कवच-स्तोत्र के स्मरण करने मात्र से साधक वागीश के समान होता है—

विनियोग—स्त्री-गुरोः कवचस्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः, ताराख्या देवता ख्याता चतुर्वर्ग-फल-प्रदा।
क्लीं वीजं चक्षुषोर्मध्ये सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु, ऐं वीजं मे मुखं पातु ह्रीं जिह्वां परि-रक्षतु।
श्रीं वीजं स्कन्ध-देशं मे हसखफ्रें भुज-द्वयं, हकार कण्ठ-देशं मे सकारः षोडशं दलं।
क्ष-वर्णस्तदधः पातु लकारो हृदयं मम, वकारः पृष्ठ-देशं च रकारो दक्ष-पार्श्वकं।
यूङ्कारो वाम-पार्श्वं च सकारो मेरुमेव च, हकारो मे दक्ष-भुजं क्षकारो वाम-हस्तकं।
मकारश्चांगुलीं पातु लकारो मे नखं वतु, वकारो मे नितम्बं च रकारो जठरं वतु।
यीङ्कारः पाद-युगलं ह्सौः सर्वाङ्गं मेऽवतु, ह्सौंलिङ्गं च लोमानि केशं च परि-रक्षतु।
ऐं बीजं पातु पूर्वे मे ह्रीं वीजं दक्षिणेऽवतु, श्रीं वीजं पश्चिमे पातु उत्तरे भूत-सम्भवं।
श्रीं पातु चाग्नि-कोणे च वेदाख्या नैऋतेऽवतु, देवाम्बा पातु वायव्यां शम्भौ श्रीपादुकां तथा।

पूजयामि तथा चोर्ध्वं नमश्चाधः सदाऽवतु, इति ते कथितं कान्ते ! कवचं परमाद्भुतं ।
गुरु-मन्त्रं जपित्वा तु कवचं प्रपठेद् यदि, स सिद्धः सगणः सोऽपि शिव एव न संशयः ।
पूजा-काले पठेद् यस्तु कवचं मन्त्र-विग्रहं, पूजा-फलं भवेत् तस्य सत्यं सत्यं सुरेश्वरि !
त्रि-सन्ध्यं यः पठेद् देवि ! स सिद्धो नात्र संशयः, भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
तस्य दर्शन-मात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः, विवादे जयमाप्नोति रणे च निर्ऋतेः समः ।
सभायां जयमाप्नोति मम तुल्यो न संशयः, सहस्रारे भावयन् यस्त्रि-सन्ध्यं प्रपठेद् यदि ।
स एव सिद्धो लोकेशो निर्वाण-पदमीयते, समस्त-मङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतं ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन, देयं शिष्याय शान्ताय चान्यथा पतनं भवेत् ।
अभक्तेभ्यश्च देवेशि ! पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत्, इदं कवचमज्ञात्वा दश-विद्याश्च यो जपेत् ।
स नाप्नोति फलं तस्य चान्ते च नरकं व्रजेत्, समाप्तं कवचं देवि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ।

तव स्नेहानु-बन्धेन किं मया न प्रकाशितं ।

स्त्री-गुरु-गीता

कङ्काल-मालिनी तन्त्र, द्वितीय पटल में 'स्त्री-गुरु-गीता' दी है । यथा—

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

शृणु तारिणि ! वक्ष्यामि गीतां ब्रह्म-मयीं परां, गुरुस्त्वं सर्व-शास्त्राणामहमेव प्रकाशकः ।
त्वमेव गुरु-रूपेण लोकानां त्राण-कारिणी, गया गङ्गा काशिका च त्वमेव सकलं जगत् ।
कावेरी यमुना रेवा कर-तोया सरस्वती, गोमती चन्द्र-भागा च त्वमेव कुल-पालिके !
ब्रह्माण्डं सकलं देवि ! कोटि-ब्रह्माण्डमेव च, नहि ते वक्तुमर्हामि क्रिया-जालं महेश्वरि !
उक्त्वा चोक्त्वा भावयित्वा भिक्षुकोऽहं नगात्मजे, कथं त्वं जननी भूत्वा वधूस्त्वं मम देहिनां ।
तव चक्रम् महेशानि ! अतीतं परमात्मनि, इति ते कथिता गीता गुरु-देवस्य ब्रह्मणः ।
संक्षेपेण महेशानि ! प्रभुरेव गुरुः स्वयं, जगत् समस्तमास्थाय गुरुस्त्वेको हि केवलं ।

गुरु-पूजा की विधि

वृहन्नील तन्त्र, द्वितीय पटल में—पहले सुन्दर आसन देकर क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप (गुग्गुल), दीप, नैवेद्य (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय), विविध प्रकार के रस-वाले फल प्रदान कर चन्दन-युक्त पुष्पाञ्जलि दे । फिर सुन्दर खाट पर मनोहर शय्या देकर गुरु के चरणों को दबावे । गुरु के समान ही गुरु-पुत्र एवं उनके सुतादि की सेवा करे ।

सपत्नीक गुरु की पूजा

पुरश्चरण-रसोल्लास, दशम पटल में—पत्नी-सहित अपने गुरु को प्रयत्न करके बुलाये । विविध सुगन्धियों से युक्त तैल से उनके शरीर की सेवा कर शुद्ध जल से उन्हें स्नान कराये । दिव्य वस्त्र से उनके शरीर को पोंछकर विविध प्रकार के पुष्पों और चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों तथा धूप, दीप, पेय पदार्थों

और सुगन्धित ताम्बूलों से उनकी पूजा करे। प्रकृति (शक्ति, पत्नी) के सहित इस प्रकार गुरुदेव का पूजन करे। गुरु के अङ्गों का लेप करे, उनके गले में सुन्दर माला पहनाये। विविध प्रकार के सुन्दर स्वर्ण, रत्नादि आभूषणों, रेशमी वस्त्रों से उन्हें सन्तुष्ट करे। उनकी पत्नी को साक्षात् जगदीश्वरी समझते हुए भक्ति द्वारा प्रसन्न करे। शङ्ख, कङ्कन, केयूर, नूपुर, रत्न-मय हारों द्वारा उनकी पूजा करे। उनकी बाईं ओर भक्तिपूर्वक खड़ा रहे और उनकी तौल बराबर द्रव्य, रत्नादि उन्हें प्रदान करे।

सपत्नीक गुरु-पूजा का मन्त्रोद्धार

काम-बीज (क्लीं) कहकर उनका नाम कहे, फिर 'काम' (क्लीं) का पुनः उच्चारण करे। यही पूजा-मन्त्र का उद्धार है।

गुरु-पूजा और मन्त्र के जप का फल

उक्त विधि से गुरु-चरणों की पूजा कर सहस्रार में उसके कोष के ऊपर सपत्नीक गुरु की भावना करे और गुरु की आज्ञा लेकर वहाँ उनकी पूजा करे। गुरु की आज्ञा को सिर पर लेकर एक बार भी यदि कोई पूजा करता है, तो उसे तुरन्त सिद्धि प्राप्त होती है। अयुत (दस सहस्र) जप जो कर ले, उसे सौ कोटि जप का फल मिलता है। इस प्रकार प्रतिदिन जप करे, जब तक एक लक्ष जप न हो जाय। दिन में पशु-भाव से एक लक्ष और रात्रि में दिव्य-वीर भाव से एक लक्ष जप करे। इस प्रकार विधिपूर्वक जप पूरा कर भक्ति-पूर्वक गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान करे। इससे सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के पुरश्चरण से बढ़कर फल प्राप्त होता है।

गुरु-पंक्ति का चिन्तन

वृहन्नील तन्त्र, द्वितीय पटल में—सिद्धौघ, दिव्यौघ और मानवौघ गुरु होते हैं, जो ऊर्ध्व-केश, व्योम-केश, नील-कण्ठ और वृष-ध्वज हैं।

कुल-चूडामणि में—मूलाधार से ब्रह्म-रन्ध्र तक 'कुल' का ध्यान कर गुरु का स्मरण करे। यथा—१ प्रह्लादानन्दनाथ, २ सनकानन्दनाथ, ३ कुमारानन्दनाथ, ४ वशिष्ठानन्दनाथ, ५ क्रोधानन्दनाथ, ६ सुखानन्दनाथ, ७ ध्यानानन्दनाथ, ८ बोधानन्दनाथ। इनका ध्यान 'कुल' के मुख के ऊपर अर्थात् सहस्रार पर स्थित चन्द्र-मण्डल में करे। इन सभी गुरुओं के हृदय परमानन्द के रस के उल्लास से पूर्ण हैं, नेत्र आरक्त हैं, शक्ति से आलिङ्गित हैं, समस्त अज्ञान को नष्ट करनेवाले हैं, कुल-शिष्यों से आवृत्त हैं, पूर्ण अन्तःकरण से वर-अभय देने को उद्यत हैं एवं कुल-तन्त्र के मर्मज्ञ हैं।

कुल-मूलावतार-कल्पसूत्र-टीका, तृतीय काण्ड के अनुसार साधक को यह भावना करनी चाहिए कि 'प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक और सायं से लेकर प्रातः तक जगत् के लिए मैं जो कुछ कर्म करता हूँ, वह सब तुम्हारा पूजन हो।'

दूसरा परिच्छेद

प्रातःकृत्यादि विधि

कुण्डलिनी का ध्यानादि

सभी कर्मों को गुरुदेव को समर्पित कर मन से गुरु की आज्ञा लेकर मूलाधार की कर्णिका के अंदर स्थित त्रिकोण के अन्तर्गत अधोमुख स्वयम्भू लिङ्ग को वेष्टित किए प्रसुप्त-भुजगाकारा, सार्द्ध-त्रि-वलया, विद्युत्-पुञ्ज-प्रभा, नीवार-शुक-वत् तन्वी 'कुल-कुण्डलिनी' को अपने इष्ट-देवता के रूप में ध्यान कर उसे 'हूं' या 'हंस' मन्त्र द्वारा त्रिकोण-मण्डल की अग्नि से पवन और अग्नि के योग द्वारा चैतन्य कर ब्रह्म-मार्ग से सहस्रार को ले जाय और वहाँ स्थित पर-शिव से उसे संयुक्त करे। उन दोनों के प्रगाढ़ सामरस्य की भावना करे, जैसा कि कालिका-श्रुति में लिखा है—

मूलाधारे स्मरेन्नित्यं त्रिकोणं तेजसां निधिं, तस्याग्नि-रेखामानीय अध ऊर्ध्व-व्यवस्थितां।
नील-तोयद-मध्यस्थ-तड़ल्लेखेव भास्वरां, नीवार-शूक-वत्-तन्वीं पीतां भास्वदनुपमां।

'नीवार-शुक-वद्' अर्थात् धान्य के अंकुर के समान सूक्ष्म। उसकी शिखा के मध्य में और परम ऊर्ध्व भाग में विराजमाना।

कुण्डलिनी का ध्यान करे—(कृपया देखें 'सविधि श्रीकुण्डलिनी-साधना' पृष्ठ ४६, ध्यान १)

अर्थात् वही ब्रह्मा, शिव, सूर्य, शङ्कर, विष्णु, प्राण, कालाग्नि और चन्द्रमा-स्वरूपा है।

इस प्रकार ध्यान करने से सब पापों से मुक्ति मिलती है। योग-सार में कुण्डलिनी का दूसरा ध्यान दिया है और लिखा है कि इस ध्यान को कर पूजन करने से साधक योगी होता है। यथा—(कृपया देखें 'सविधि श्रीकुण्डलिनी-साधना' पृष्ठ ४६, ध्यान २)

इस प्रकार ध्यान कर मानस गन्ध-पुष्पादि द्वारा कुण्डलिनी की पूजा कर वाग्भव 'ऐं' का जप करे। तब उसे स्तवन द्वारा सन्तुष्ट करे। रुद्र-यामल में लिखा है—प्रातःकाल उठकर विद्वान् व्यक्ति गुरुदेव के कल्याणकारी चरण-कमलों का ध्यान शिर के कमल में कर पुनः श्रीचरणों का ध्यान करे और विविध उपचारों से पूजन कर स्तवों द्वारा उन्हें नमस्कार करे। कुण्डलिनी का ध्यान निम्न प्रकार करे—(कृपया देखें 'सविधि श्रीकुण्डलिनी-साधना' पृष्ठ ४६, ध्यान ३)

इस प्रकार किरणोज्ज्वला, अमृतानन्द-स्वरूपा, महा-देवी कुण्डलिनी का उक्त स्थान में ध्यान कर आनन्द के साथ उन कल्याणकारिणी की पूजा करे। फिर माया (ह्रीं) या काम (क्लीं) वीज का मानस जप पञ्चाशद्-वर्ण-माला द्वारा अनुलोम-क्रम से कर पुनः विलोम-क्रम से उसका जप करे। तब निम्न स्तव का पाठ करे। इससे सिद्धि की प्राप्ति होती है।

कुण्डलिनी-स्तोत्राष्टकम्

(कृपया देखें 'सविधि श्री कुण्डलिनी साधना' पृष्ठ ४८)

कुण्डलिनी-स्तोत्रं

योग-सार, तृतीय पटल में यह दिया है—(कृपया देखें सविधि श्रीकुण्डलिनी साधना', पृष्ठ ४७)

कुण्डलिनी-कवचम्

रुद्र-यामल, उत्तर-खण्ड, पञ्च-त्रिंशत् पटल में यह कवच-स्तोत्र दिया है—(कृपया देखें 'सविधि श्री कुण्डलिनी साधना', पृष्ठ ५०)

चौर-गणेश-मन्त्र

स्वेष्ट-देवता के प्रणाम-मन्त्र से कुण्डलिनी को नमस्कार कर दश द्वारों में चौर-गणश मन्त्र का कवाट के समान न्यास करे। गणेश विमर्षिणी में लिखा है कि—

१-२ दो नेत्र, ३-४ दो कान, ५-६ दो नासा-छिद्र, ७ मुख, ८ नाभि, ९ लिङ्ग-मूल, १० गुद-स्थान—ये दश द्वार कहे गए हैं। प्रथम अंकुश बीज (क्रों) का जप दश बार हृदय में करे। दोनों कानों में कूर्च (हूं) का जप कर नासा-छिद्रों में काली (क्रीं) का जप करे। फिर मुख में 'स्त्रीं' का और नाभि में वाणी (ऐं) का जप करे। तब लिङ्ग-मूल में 'ह्सौः' बीज का जप कर, मूल (गुद-स्थान) में 'ब्लुं' का जप करे। भौहों के मध्य में 'ॐ' का और मन के स्थान में भी 'ॐ' का जप करे। ये ग्यारह बीज प्रत्येक द्वार में कवाट के समान होते हैं।

चौर-गणेश मन्त्र के बिना पुराण-पाठ-पूजा-जपादि में दोष

चौर गणेश मन्त्र का जप किए बिना कोई कर्म न करना चाहिए, नहीं तो दोष होता है। वर्ण-विलास-तन्त्र में गणेशजी का कथन है कि—

चौर-मन्त्र को जाने बिना जो पुराण को पढ़ता है, वह साक्षात् कलि होता है। अगले जन्म में वह पापी चौर-कुत्ता होता है। इसी प्रकार शिव, विष्णु, शक्ति की उसकी सभी पूजा का तेज स्वयं गणपति हर लेते हैं। पचास गण-देवताओं के ज्योति-स्वरूप मुनि-श्रेष्ठ प्रत्येक द्वार के पथ में जाकर प्रति कमल में जँभाई लेते हैं और प्रति कमल में स्थित रहकर जप के तेज को हर लेते हैं। जप-पूजाओं में जो तेज होता है, वहीं चौर-गणाधिप रहते हैं। अतः चौरों के प्रबोध के लिए दश चौर-मन्त्रों का जप करना चाहिए। तब बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने इष्ट-देवता का पूजन करना चाहिये। तभी ब्रह्मादि तीनों देवता फल प्राप्त करते हैं। चौर-मन्त्र महा-मन्त्र है, जिससे पचास गणों की प्रसन्नता होती है। चौर-मन्त्र के बिना शान्ति-स्वस्त्ययन का फल नहीं मिलता।

दो कान, दो नेत्र, नासा, मुख, नाभि, लिङ्ग-मूल, गुदा, मन और भौंहों का मध्य-स्थान—ये ग्यारह द्वार हैं। प्रत्येक द्वार में 'चौर' नामक मन्त्र का न्यास करे। चौर मन्त्र प्रत्येक द्वार पर किवाड़ के समान होता है। प्रथम द्वार में अंकुश (क्रों) का दश बार जप कर वहाँ किवाड़ लगाए, नहीं तो गण लोग अंकुशों के द्वारा किवाड़ को तोड़ देते हैं। दोनों नेत्रों में 'ह्रीं ह्रीं' इन दो बीजों का न्यास करे। दोनों कानों में 'ह्रीं ह्रीं' का और दोनों नासा-छिद्रों में 'हुं हुं' का न्यास करे। मुख में द्विविध 'स्त्रीं' बीज का और नाभि में 'क्लीं' का न्यास करे। लिङ्ग-मूल में 'ह्सौं' बीज का और भौंहों के मध्य में 'ब्युं' का तथा मन-स्थान में 'हुं' का न्यास करे। इस प्रकार ग्यारह द्वारों में चौर-मन्त्रों का न्यास करे। दस बार चौर-मन्त्र का अथवा बीज का एक बार। इसी जप से प्रत्येक द्वार में किवाड़ लगता है।

अजपा-मन्त्र का जप-काल

प्रातःकाल निद्रा से मुक्त होकर शय्या पर अपनी देह में मातृका-स्थानों में पूर्ववत् मातृका-न्यास करे। साथ ही ग्यारह द्वारों में चौर मन्त्रों का न्यास करे। चौर-मन्त्र को दश या एक बार जपे। चौर-

मन्त्र के जप से गणेश सन्तुष्ट होते हैं। चौर-मन्त्र के जप से यम का अधिकार नहीं रह जाता। सब मन्त्रों के जप से सभी का तेज उपस्थित रहता है। उस तेज को हरने की शक्ति गणेश में नहीं रहती।

चौर-मन्त्रों का प्रयोग

हृदय में 'क्रों' का १० बार जप करे। दाएँ नेत्र में 'ह्रीं ह्रीं' का १० बार। बाएँ नेत्र में 'ह्रीं ह्रीं' का १० बार। दाएँ कान में 'ह्रीं ह्रीं' का १० बार। बाएँ कान में 'ह्रीं ह्रीं' का १० बार। दाईं नाक में 'हुं हुं' का १० बार, बाँई नाक में 'हुं हुं' का १० बार, मुख में 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं' का १० बार, नाभि में 'ऐं क्लीं' का १० बार। लिङ्ग में 'हसौः' का दस बार। गुह्य में 'ब्लुं' का १० बार। भ्रू-मध्य में 'हूं' का १० बार। अर्थात् सभी स्थानों में १०-१० बार जप करे।

अजपा-मन्त्र-जप का समर्पण

इसके बाद स्थान-स्थान पर अजपा-मन्त्र का समर्पण करे। कुल-मूलावतार-कल्पसूत्र-टीका, तृतीय काण्ड में इसका विधान दिया है। यथा—

अस्याजपा-गायत्री-मन्त्रस्य शिरसि हंस-ऋषये नमः, मुखे अव्यक्त-गायत्री-च्छन्दसे नमः, हृदि परम-हंस-देवतायै नमः, लिङ्गे हं बीजाय नमः, आधारे सः शक्तये नमः, परमात्म-प्रीतये उच्छ्वास-निश्वासाभ्यां षट्-शताधिकैक-विंशति-सहस्र-जपेन पूर्व-भूतेभ्यो निवेदयामि।

मूलाधार-मण्डपे स्वर्ण-वर्ण-चतुर्दल-पद्मे-सान्त-चतुर्वर्णान्विते गायत्री-सहिताय गण-नाथाय षट्-शत-संख्य-जपमहर्निशं समर्पयामि नमः।

स्वाधिष्ठान-मण्डपे अनेक-विद्युन्निभे बादि-लान्त-षड् - वर्णान्विते षड्-दल-पद्मे सावित्री-सहिताय ब्रह्मणे अजपामन्त-षट्-सहस्रं निवेदयामि नमः।

मणिपूर-मण्डपे नीलोत्पल-मेघ-निभे डादि-फान्त-दश-वर्णान्विते दश-दल-पद्मे लक्ष्मी-सहिताय विष्णवे षट्-सहस्र-जपं समर्पयामि नमः।

अनाहत-मण्डपे तरुण-रवि-निभे द्वादश-वर्ण-युते द्वादश-दल-पद्मे गौरी-सहिताय शिवाय अजपा-षट्-सहस्र-जपं समर्पयामि नमः।

विशुद्ध-मण्डपे षोडश-दल-कर्णिका-मध्ये जीवात्मने अकारादि-अःकारान्ते अजपा-सहस्र-संख्य-जपं निवेदयामि नमः।

आज्ञा-मण्डपे श्रीचन्द्र-प्रभे द्वि-दल-पद्मे ह-क्ष-वर्णान्विते माया-सहित-गुरु-मूर्तये एक-सहस्र-जपं निवेदयामि नमः।

ब्रह्म-रन्ध्र-मण्डपे नाना-वर्णोज्ज्वले सहस्र-पद्म-स्थिताय परमात्मने अकारादि-क्षकारान्त-सहिताय एक-सहस्र-जपं निवेद-यामि नमः।

इस प्रकार जप समर्पित कर १०८ बार अजपा-जप करे। 'अ' से 'क्ष' तक के वर्ण हंस-स्वरूप हैं। शिव-शक्ति-विन्दु से युक्त होकर ब्रह्म-रूप ही हैं। 'अः'—विसर्ग-रूप दो विन्दु हरि और हर के अभेद के द्योतक हैं। 'सोऽहं'-इस अभेद-भावना से ब्रह्म-रूपता का चिन्तन करना निर्दिष्ट है। 'इक्कीस सहस्र छः सौ जप के द्वारा पर-देवता रूप श्रीपरमेश्वर प्रसन्न हों'—इस प्रकार सङ्कल्प कर 'हंस' का ध्यान करे। यथा—

हंस का ध्यान

आराधयामि मणि-सन्निभात्म-लिङ्गं, माया-पुरी-हृदय-पङ्कज-सन्निविष्टम् ।
श्रद्धा - नदी - विमल - चित्त - जलावगाहं, नित्यं समाधि - कुसुमैरपुनर्भवाय ॥

जप का रहस्य

पचास वर्णों को अनुलोम और प्रतिलोम से सम्पुट करे और 'क्ष' को ब्रह्म-रूप मेरु माने। इस वर्ण-माला से जप करने से लेश मात्र दोष नहीं होता। इसके द्वारा हंस और मातृकाओं का एकाकार होकर सारा विश्व कालात्मा से लोक में चिदात्मा-रूप कहलाता है। अजपा-विधान के बिना साधक श्रीविद्यादि सभी विद्याओं का अनधिकारी होता है। कहा भी है कि हंस-ज्ञान से रहित साधक के सभी कार्य निष्फल होते हैं।

राघव भट्ट द्वारा उद्धृत दक्षिणामूर्ति संहिता, सप्तम पटल में लिखा है कि अजपा के ज्ञान-मात्र से देशिक (साधक) पर-ब्रह्म-रूप होता है। 'हंसः' शब्द का जप प्रतिदिन करना चाहिए। मोह-रन्ध्र (छिद्र) को जो नहीं जानता, उसका मोक्ष नहीं होता। श्रीगुरु की कृपा से उसे जानकर उच्छ्वास और निःश्वास के साथ सदा जप करना चाहिए। इससे बन्धनों का क्षय होता है। उच्छ्वास में अर्थात् साँस लेते समय और निःश्वास में अर्थात् साँस निकालते समय 'हंसः' इन दो अक्षरों का जप करने से प्राण हंसात्मा बनकर आत्मा-रूप से स्थित हो जाता है। नाभि में उच्छ्वास-निःश्वास द्वारा हृदय की अग्नि व्यवस्थित होती है।

अहोरात्र में अजपा की जप-संख्या

दिन और रात्रि के समय में साठ श्वासों से प्राण होता है और नाड़ी में छः प्राण होते हैं। साठ नाड़ियों द्वारा अहोरात्र की जप-संख्या निर्दिष्ट होती है। इस प्रकार २१ हजार ६ सौ बार प्राणी प्रतिदिन जप करता है। जन्म से इस जप का प्रारम्भ होता है और मृत्यु में उस जप का समर्पण होता है।

'अजपा' नाम का कारण

बिना जप किए ही जप होता रहता है, इसी से 'अजपा जप' नाम पड़ा है। इस जप द्वारा संसार का बन्धन कट जाता है। इस जप को प्रतिदिन क्रमशः १ गणेश, २ ब्रह्मा, ३ विष्णु, ४ शिव, ५ जीवात्मा और ६ परमात्मा को समर्पित करना चाहिए। छः सौ सहस्र एवं एक सहस्र जप कर फिर सहस्र जप गुरु को निवेदन करे। इस प्रकार यथा-स्थान स्थित गणेशादि को जप-समर्पण की विधि है। उन-उन स्थानों में स्थित मातृका-वर्णों का रूप निम्न प्रकार है—

मातृका-वर्णों का स्वरूप

मूलाधार में 'व श ष स' इन चार मातृका-वर्णों को स्वर्ण-वर्ण (सुनहले) स्मरण करे। स्वाधिष्ठान में 'ब भ म य र ल' इन छः मातृका-वर्णों को विद्रुम (लाल) रंग का ध्यान करे। मणिपुर में 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' इन दस मातृका-वर्णों को विद्युत् (उज्ज्वल नील) वर्ण का स्मरण करे। चौथे अनाहत में 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' इन बारह मातृका-वर्णों को अग्नि-शिखा (पिङ्गल) के वर्ण-वत् ध्यान करे। विशुद्ध में १६ स्वर-वर्णों को रक्त (लाल) रंग का स्मरण करे। आज्ञा में 'ह क्ष' इन दो वर्णों को विद्युत् के समान उज्ज्वल (श्वेत) ध्यान करे। सहस्रदल-कमल में कर्पूर-वत् उज्ज्वल नादात्मक ब्रह्म-रन्ध्र का स्मरण करे।

उक्त सात चक्रों में स्थित देवों को जप-समर्पित कर न्यास करे। इस अजपा मन्त्र के जप का विनियोग इस प्रकार है—

विनियोग—ॐ अस्य अजपा-मन्त्रस्य अव्यक्त-रूपो हंसः ऋषिः। गायत्री छन्दः। परमादिः देवता। हंसोऽहं बीजं। सः शक्तिः। सोऽहं कीलकं। मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

तदनन्तर देह-सिद्धि के लिए षडङ्ग-न्यास करे। 'सूर्य, 'सोम', 'निरञ्जन' और 'निराभास' को चतुर्थ्यन्त कर अन्त में 'स्वाहा' लगाकर क्रमशः न्यास करे। यथा—'सूर्याय स्वाहा' इत्यादि। 'कवच' तक न्यास कर 'अनन्त'-पद का स्मरण करे।

अजपा के दो रूप

निरुत्तर तन्त्र, चतुर्थ-पटल में—'हंस' प्रकृति है और 'ॐ' प्रकृति का गुण है। 'ह' से श्वास बाहर जाती है और 'स' से पुनः भीतर आती है। इस प्रकार परम मन्त्र 'हंस' का जप जीव सदा करता रहता है। दिन-रात में २१ हजार छः सौ जप होता है। यह 'अजपा' नामक गायत्री योगियों को मोक्ष-दायिनी है। इसके दो रूप हैं—१ व्यक्ता, २ गुप्ता।

'गुप्ता' ठकार-रूप है और शिव-शक्ति कही जाती है। ठकार चन्द्र-बीज है। इसे 'वीप्सित स्वर' कहते हैं। अजपार्थ-मयी 'गुप्ता' वह्निजाया (स्वाहा) कहलाती है। इसके सङ्कल्प मात्र को पुरश्चरण कहते हैं।

इस प्रकार इष्ट-देवता, गुरु और कुण्डलिनी के ध्यान द्वारा मन और शरीर को पवित्र हुआ समझना चाहिए। राघव भट्ट ने लिखा है कि गुरु, देवता और आत्मा में ऐक्य की भावना करे। यथा—

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोक - भाक्।
सच्चिदानन्द - रूपोऽहं नित्य - मुक्त - स्वभाव - वान्।

भावना की विधि 'धर्म-काण्ड' में बताई गई है।

प्रातःकृत्य आदि

त्रैलोक्य-चैतन्य-मयाधिदेव ! श्रीनाथ ! विष्णो ! भवदाज्ञयैव,
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसार - यात्रामनुवर्तयिष्ये।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः,
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा-नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

उक्त श्लोक में 'श्रीनाथ', 'विष्णो' आदि शब्दों का प्रयोग शैवादि साधकों के लिए है। इसी से शाक्तानन्द-तरङ्गिणी, पञ्चमोल्लास में शक्ति-उपासकों के लिए उक्त प्रार्थना-श्लोक का प्रथम चरण निम्न प्रकार दिया है— **'त्रैलोक्य-चैतन्य-मयेश्वरेशि ! श्रीपार्वति ! त्वच्चरणाज्ञयैव'**

'व्यक्ता' दो प्रकार की है—१ शब्द-स्वरूपा, २ ज्योति-स्वरूपा। ज्योति-स्वरूपा देवी हृदय में प्रतिष्ठिता है।

उक्त प्रार्थना के बाद भूमि को नमस्कार कर शय्या से उठकर बाँयाँ पैर पहले बढ़ाकर मल-मूत्र त्याग करने जाय। फिर आचमन कर दन्त-धावन करे। महा-निर्वाण तन्त्र, पञ्चमोल्लास में—नमस्कार कर बाँयाँ पैर आगे कर बाहर जाए और मल-मूत्र त्याग कर दन्त-धावन करे।

गन्धर्व तन्त्र, पञ्चम पटल में—सर्व-मङ्गल से युक्त साधक बाहर जाकर मल-मूत्र त्याग दन्त-धावन करे। दातून किए बिना जो देवता की पूजा करता है, वह निष्फल होती है। ऐसे साधक को मृत्यु होने पर नरक मिलता है।

दक्षिणामूर्ति में—मुख का प्रक्षालन निम्न १४ अक्षरों के मन्त्र से करे—

क्लीं काम-देवं सर्व-जनं प्रियाय नमः।

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश में—शौच, आचमन, दन्त-धावन, प्रमुख-प्रक्षालन आदि आवश्यक कर्म कर स्नान करे।

पदार्थ-दर्शन में—ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर हाथ-पैरों को शुद्ध करे। मुख धोकर दोनों नासा-रन्ध्रों को स्वच्छ करे। नेत्रों में अञ्जन लगाकर शुद्ध स्थान पर बैठे। नेत्र में अञ्जन लगाए बिना जो सौर-मण्डल को देखता है, उसके पिछले जन्मों के कमाए फल नष्ट हो जाते हैं। इस निन्दा-वाद से कर्म की आवश्यकता का प्रतिपादन होता है।

स्मृति में बताई विधि से शौचादि देह-शुद्धि कर रात्रि के पहने वस्त्र उतारकर अन्य वस्त्र पहने। फिर मन्त्र-स्नान कर देव-गृह (पूजा-कक्ष) में आकर सम्मार्जन, लेपनादि कर देवता के निर्माल्य को दूर कर पूर्व दिन के बचे पत्रादि से पूजन कर नमस्कार करे। अन्यथा दोष होता है। कहा भी है कि बँधे हुए, प्यासे पशु, रजस्वला कन्या और निर्माल्य-युक्त देवता से पूर्व पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश में—स्मृति में बताई विधि से अच्छी तरह शौच कर्म कर, पैरों को धोकर, आचमन कर न्यास करे। देव-स्थान में प्रवेश कर, निर्माल्य को हटाकर पुष्पाञ्जलि दे और अर्घ्य, पाद्य, मुख-प्रक्षालन, दन्त-धावन, आचमनीय और निर्मल शुभ वस्त्र भी प्रदान करे।

देव-पूजा-गृह के सम्मार्जन आदि का फल

योगिनी तन्त्र, तृतीय भाग, नवम पटल में—पूजा-गृह की धूल जितना ही सम्मार्जन द्वारा बाहर निकलती है, उतने ही सहस्र वर्षों तक सम्मार्जन करनेवाला पुरुष या स्त्री सातों द्वीपों का महेश्वर होता है।

देव-गृह के मार्जन में निषिद्ध द्रव्य

लकड़ी, पत्ते, कुश, वस्त्र, तिनकों के गुच्छे, वीरण, नल, कुश, काश के गुच्छे से देव-गृह का मार्जन न करे।

देव-गृह का उप-लेपनादि

मिट्टी और गोबर से भूमि का लेपन करे। एक बार भी लेपन करनेवाले को गर्भ में रहने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। स्नान कर अवलेपन में जो जल देता है, उसे बड़ा पुण्य होता है। लेपने में जितने जल-बिन्दु पड़ते हैं, उतने सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में रहने का सुख मिलता है। मिट्टी और जल से प्रोक्षण करने से सब पापों से छुटकारा मिलता है और वारुण लोक की प्राप्ति होती है।

गुरु आदि को नमस्कार की विधि

तदनन्तर स्तवन मात्र करके नमस्कार करे, जैसा कि *विश्वसार तन्त्र*, तृतीय पटल में कहा है कि प्रातःकाल उठकर हाथ-पैरों को शुद्ध कर उत्तर की ओर मुखकर भक्ति-पूर्वक गुरु को मनसा, वाचा

और शरीर से नमस्कार करे। फिर क्रमशः क्षेत्रेश, वास्तुराज, विघ्नराज, दुर्गा, विनायक, शम्भु, भैरव, वटुक, ब्रह्मा, नैर्ऋति, चक्र-पाणि, विघ्न-नाथों, ऋषियों, देवों, वेद-शास्त्रों, वेदार्थों, रामायणों, भागवतों, पुराणों, ब्राह्मणों, गुरुओं, योगिनियों, यतियों, मनु-वंशों, मनुष्यों, वृक्षों, ओषधियों, लता-गुल्मों, कुल-पर्वतों, दिशाओं, दिक्-पालों, संहिताओं, शिवों, रुद्रों, योगों, करणों, दिवसों, पक्षों, सब कालों, योगिनियों, सब समयों, क्षणों, निमिषों, कर्मों, कारणों, पीठों, सागरों, तीर्थों, नदियों, कर्म-योगों, मन्त्रों, कृत्रिमों, अकृत्रिमों, ह्रदों, जीवों, सर्व-भावों, रसों, पुष्पों, आगमों, भाष्यों, अर्थ-शास्त्रों, आख्यानों, अस्त्रों, सर्व-शास्त्रों, मातृकाओं, पुरुषों, शक्तियों, धर्म-शास्त्रों, भूतों, पञ्च-भूतों, महा-भूतों, ज्योतियों, ज्योतिषों, आचार्यों, श्रुतियों, ऋतुओं, वर्णों, वर्ण-शक्तियों, कलाओं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुद्राओं, स्थानों, स्थान-देवताओं, सर्व-कालात्मन्, विघ्नों, काल-पीठों, योगिनी-गण-पालिका, भैरवों, भैरवियों, मातृ-मण्डल-चक्रों, रत्नों, स्वरों, देवी-प्रीति-कारकों को प्रणाम करे। इस प्रकार प्रणाम कर देवी का ध्यान करे।

अद्वैत-भावनादि का वर्णन

प्रान्तर, श्मशान, शून्य आवास या शून्य गृह में ब्रह्माण्ड-वत् व्यापक शरीरवाली अद्वैत-भावना करे। दो कमल पुष्प लिए 'आधार-शक्ति' का ध्यान करे। उसके सिर पर 'कूर्म' (कच्छप) रूपी जनार्दन को नीले बादल के समान वर्णवाले एवं सब तत्वों से युक्त देव-वत् ध्यान करे। उनके पीछे सहस्र फणों से युक्त, शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल 'अनन्त' का ध्यान करे, जिनके कन्धे पर हल, बाएँ पार्श्व में मुद्गर है और जो कुण्डल, रत्नाभूषणों से विभूषित हैं। उनके चक्र के ऊपर 'पृथिवी' का ध्यान करे, जो कृष्ण-वर्णा हैं और दो हाथों में शुक एवं व्रीहि लिए हैं। वहाँ मणि-जटित 'मण्डप' का ध्यान करे।

छिन्नमस्ता में विशेष भावना

वहाँ सब वाञ्छाओं का फल देनेवाले 'कल्पतरु' का ध्यान करे। उसके नीचे विशाल 'स्वर्ण-सिंहासन' का ध्यान करे। उस पर हृत्-पद्मस्था सुरेश्वरी देवी का ध्यान करे। छिन्नमस्ता के सम्बन्ध में यह विशेष भावना की जाती है।

दक्षिण काली में विशेष भावना

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर हाथ-पैर शुद्ध करे। पूर्वोक्त गुरु-ध्यान कर प्रणाम करे और विधिवत् उस सनातनी देवी का ध्यान करे। १००८ बार जप कर नित्य 'क्रम-स्तव' का पाठ करे। यथा—

दक्षिण-कालिका-क्रम-स्तोत्रम्

ॐ नमो गुरुभ्यो देवेभ्यस्तथा पर-तराय च, परापरेभ्यस्तद्-वच्च तथा परात्-पराय च।
क्षेत्र-पालं नमस्कृत्य द्वार-देवान् विधानतः, लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां गङ्गां गोदावरीं तथा।
भोगवतीं नमस्कृत्य वास्तु-देवान्नमेत् तदा, विघ्न-राजं चं वास्त्वीशं क्षेत्रेशं प्रणमाम्यहम्।
नैर्ऋतं चैव ब्रह्माणं ब्रह्म-कर्मात्मकं प्रिये! विघ्नान् प्रणम्य विधिना तान् देवांश्च नमेत् ततः।
आधार-शक्तिं तां नत्वा पङ्कज-द्वय-धारिणीं, नील-वर्णां महा-मायां द्वादशाक्षर-रूपिणीम्।
ततो धर्म-गणैः सेव्यां तां देवीं शक्ति-रूपिणीं, नील-वर्णं महा-कायं कूर्मं हिमाद्रि-संस्थितम्।
सर्व-शक्ति-तनुं विष्णुं कूर्माकारं नमाम्यहं, तस्य पृष्ठे स्थितं देवमनन्तं तं नमाम्यहम्।
सहस्र-फण-संयुक्तं सर्पाकारं हरिं नमः, हिमाद्रि-सदृशं विष्णुं एक-दण्ड-धरं विभुम्।
फणा - सहस्रैर्मणिभिर्भूषितं तं नमाम्यहं, तस्य कुक्षि-गतं ध्यायेल्लाङ्गलं चाशुभावहम्।

मुद्गरं वाम-भागे च तत्रैकादश-संयुतं, तस्य मूर्ध्नि स्थितं ध्यायेद् वराहं विष्णुमव्ययम् ।
एक-दन्तं महा-कायं काल-मेघ-सम-प्रभं, तस्य दन्ते सदा ध्यायेत् पृथिवीं पद्म-पायिनीं ।
नील-वर्णां महा-देवीं शालि-शूक-विभूषितां, अणिमादि-गुणैर्युक्तां सर्व-तत्त्व-विभूषिताम् ।
तस्या मूर्ध्नि सदा ध्यायेत् स-मुद्रान् रत्न-संयुतान्, नाना-पर्वत-संयुक्तां पृथिवीं चिन्तयेद् धिया ।
पर्वतांश्चिन्तयेत् तस्यां सर्वत्र कुल-भूषितान्, दिग्गजेभ्यो नमस्कृत्य योगेभ्यः प्रणमेत् सदा ।
मुनीन्द्रेभ्य ऋषिभ्यश्च योग-शास्त्र-धराय च, शाक्तेभ्यो वैष्णवेभ्यश्च शैवेभ्यः प्रणमेत् सदा ।
यन्त्रेभ्यो मन्त्र-देवेभ्यः सर्व-शास्त्र-पराय च, चन्द्राय चन्द्र-वंशेभ्यः सूर्य-वंशेभ्य एव च ।
मनु-वंश-मनुष्येभ्यः पञ्च-भूतेभ्य एव च, महा-भूतेभ्यो भूतेभ्यः कलाभ्यः प्रणमेत् सदा ।
रसेभ्योऽपि नमस्कृत्य गन्धेभ्यः प्रणमेत् सदा, पुष्पेभ्यः पुष्प-हासेभ्यो गन्धर्वेभ्यो नमो नमः ।
यक्षेभ्यो भूत-वर्गेभ्यः प्रेतेभ्यः सर्व-कर्मसु, शब्द-ब्रह्म-स्वरूपेभ्यः प्रणमामि सदा प्रिये !
रुद्रेभ्यो रुद्र-वंशेभ्यो भैरवेभ्यो नमो नमः, लिङ्गेभ्यो लिङ्ग-देवेभ्यो वेद-शास्त्रेभ्य एव च ।
वेदेभ्योऽपि च शास्त्रेभ्यस्तेभ्यो नित्यं नमो नमः, स्थावरेभ्यो नमस्कृत्य ऋषिभ्यः प्रणमेत् सदा ।
प्रणमामि सदार्थेभ्यो वेशेभ्योऽपि नमो नमः, मन्त्रेभ्योऽपि नमस्कृत्य मन्त्रार्थेभ्यो नमो नमः ।
पूजोपकरणेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यो नमो नमः, योगिनीभ्यो नमस्कृत्य शक्तिभ्योऽपि नमो नमः ।
रत्नेभ्योऽपि नमस्कृत्य नदीभ्यः प्रणमेत् सदा, पीठेभ्योऽपि नमस्कृत्य मातृभ्यः प्रणमेत् सदा ।
अन्नेभ्योऽपि नमस्कृत्य इन्द्रेभ्योऽपि नमो नमः, क्षेत्रेभ्योऽपि नमस्कृत्य क्षेत्र-पालेभ्य एव च ।
कुलाचलेभ्यो नत्वा तु प्रादुर्भावेभ्य एव च, उक्तानुक्तं च यत् किञ्चित् तेभ्यो नित्यं नमो नमः ।
ॐ नमामि कालिकां देवीं कलि-कल्मष-नाशिनीं, नमामि शम्भु-पत्नीं च नमामि भव-सुन्दरीम् ।
आद्यां देवीं नमस्कृत्य नमस्त्रैलोक्य-मोहिनीं, नमामि सत्य-सङ्कल्पां सर्व-पर्वत-वासिनीम् ।
पार्वतीं च नमस्कृत्य नमो नित्यं नगात्मजे !
मातस्त्वदीय-चरणं शरणं सुराणां, ध्यानास्पदैर्दिशति वाञ्छित-वाञ्छनीयम् ।
येषां हृदि स्फुरति तच्चरणारविन्दं, धन्यास्त एव नियतं सुर-लोक-पूज्याः ।
गन्धैः शुभैः कुंकुम-पङ्क-लेपैर्मातस्त्वदीयं चरणं हि भक्ताः ।
स्मरन्ति शृण्वन्ति लुठन्ति धीरास्तेषां जरा नैव भवेद् भवानि !
तवांघ्रि-पद्मं शरणं सुराणां परापरा त्वं परमा प्रकृष्टिः ।
दिने दिने देवि! भवेत् करस्थः किमन्यमुच्चैः कथयन्ति सन्तः ।
कवीन्द्राणां दर्पं कर-कमल-शोभा-परिचितं, विद्युन्वज्जङ्घा मे सकल-गणमेतद् गिरि-सुते !
अतस्त्वत्-पादाब्जं जननि ! सततं चेतसि मम, हितं नारी-भूतं प्रणिहित-पदं शाङ्करमपि ।
ये ते दरिद्राः सततं हि मातस्त्वदीय-पादं मनसा नमन्ति ।
देवासुराः सिद्ध-वराश्च सर्वे तव प्रसादात् सततं लुठन्ति ।
हरिस्त्वत्-पादाब्जं निखिल-जगतां भूतिरभवत्, शिवो ध्यात्वा ध्यात्वा किमपि परमं तत्पर-तरम् ।
प्रजानां नाथोऽयं तदनु जगतां सृष्टि - विहितं, किमन्यत् ते मातस्तव चरण - युग्मस्य फलता ।
इन्द्रः सुराणां शरणं शरण्ये ! प्रजापतिः काश्यप एव नान्यः ।
वरः पतिर्विष्णु-भवः परेशि ! त्वदीय-पादाब्ज-फलं समस्तम् ।
त्वदीय-नाभी-नव-पल्लवे वा नवांकुरैर्लोम-वरैः प्रफुल्लम् ।
सदा वरेण्ये ! शरणं विधेहि किंवापरं चित्त-वरैर्विभाव्यम् ।

त्वदीय-पादार्चित-वस्तु-सम्भवः सुरासुरैः पूज्यमवाप शम्भुः ।
त्वदीय-पादार्चन-तत्परो हरिः सुदर्शनाधीश्वरतामुपालभत् ।

धरित्री गन्ध-रूपेण रसेन च जलं धृतं, तेजो वह्नि - स्वरूपेण प्रणवे ब्रह्म - रूप - धृक् ।
मुखं चन्द्राकारं त्रिभुवन-पदे याम-सहितं, त्रि-नेत्रं मे मातः ! परिहरति यः स्यात् स तु पशुः ।
न सिद्धिस्तस्य स्यात् सुरत-सततं विश्वमखिलं, कटाक्षैस्ते मातः ! सफल-पद-पद्मं स लभते ।

क्रतुस्त्वं हविस्त्वं स्वधा त्वं मुरारेः पुरा त्वं परा त्वं सदाशीर्मुरारेः ।
हरस्त्वं हरिस्त्वं शिवस्त्वं शिवानां गतिस्त्वं गतिस्त्वं गतिस्त्वं भवानि !
नवाहं नवा त्वं नवा वा क्रियाया वरस्त्वं चरुस्त्वं शरण्यं धरायाः ।
नदस्त्वं नदी त्वं गतिस्त्वं निधीनां सुतस्त्वं सुता त्वं पिता त्वं गृहीणाम् ।
त्वदीय-मुण्डाख्यं भवानि ! मालां विधाय चित्ते भव-पद्मजादयश्च ।
सुराधिपत्वं लभते खलु मुनीन्द्रः शरण्यमेतत् किमपीह चान्यत् ।

नरस्य मुण्डं च तथा हि खड्गं भुज-द्वये ये मनसा जपन्ति ।
सव्येतरे देवि ! वराभयं च भवन्ति ते सिद्ध-जना मुनीन्द्राः ।
शिवोपरि त्वां हृदये निधाय जपन्ति विद्यां हृदये कदाचित् ।
सदा भवति काव्य-रसस्य वेत्ता अन्ते पद-द्वन्द्वमुपाश्रयेत् ॥

दिगम्बरीं त्वां मनसा विचिन्त्य जपेत् पराख्यां जगतां जनीति ।
जपेत् पराख्यां जगतां मतिश्च किंवा पराख्या-शरणं भवामः ।
शिवाविरावैः परि-वेष्टितां त्वां निधाय चित्ते सततं जपन्ति ।
भवेय देवेशि ! परा-परादि-निरीशतां देवि ! परा वदन्ति ॥

त्वदीय-शृङ्गार-रसं निधाय जपन्ति मन्त्रं यदि वेद-मुख्याः ।
भवन्ति ते देवि ! जनापवादं कवः कवीनामपि चाग्र-जन्मा ।
विकीर्ण-वेशां मनसा निधाय जपन्ति विद्यां चकितं कदाचित् ।
सुधाधिपत्यं लभते नरः स किमस्ति भूम्यां शृणु काल-कालि ॥

त्वदीय-वीज-त्रयं मातरेतज्जपन्ति सिद्धास्तु विमुक्ति-हेतोः ।
तदेव मातस्तव पाद-पद्मगा भवन्ति सिद्धिश्च दिन-त्रयेऽपि ॥
त्वदीय-कूर्च-द्वय-जापकत्वात् सुरासुरेभ्योऽपि भवेच्च वर्णः ।
धनित्व-पाण्डित्यमयन्ति सर्वे किंवा परां देवि! परापराख्या ॥
त्वदीय लज्जा-द्वय-जापकत्वात् भवेन्महेशानि ! चतुर्थ-सिद्धिः ।
त्वदीय-सत्सिद्धि-वर-प्रसादात् तवाधिपत्यं लभते नरेशः ॥
ततः स्व-नाम्नः शृणु मातरेतत् फलं चतुर्वर्ग वदन्ति सन्तः ।
वीज - त्रयं वै पुनरप्युपास्य सुराधिपत्यं लभते मुनीन्द्रः ।

पुनस्तथा कूर्च-युगं जपन्ति नमन्ति सिद्धा नरसिंह-रूपाः ॥
ततोऽपि लज्जा-द्वय-जापकत्वाल्लभन्ति सिद्धिं मनसो जनास्ते ।
अन्ते पदं क्षिप्य विभा विभावसोस्त्वन्मन्त्रमुद्धारमिदं वदन्ति ॥

त्रि-पञ्चारे चक्रे जननि ! सततं सिद्धि - सहितां, विचिन्वन् सञ्चिन्वन् परममृतं दक्षिण - पदम् ।
सदा कालीं ध्यात्वा विधि-विहित-पूजा - परिकरा, विशेषाख्यानं ते न खलु भव-भङ्गाभय - पदः ।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी काली त्वं ह्रीस्त्वं च करालिका, लज्जा लक्ष्मीः सती गौरी नित्याचिन्त्या चितिः क्रिया ।
परा आद्या पराख्या च परमापरमा वसुः, अकुल्याद्यैश्चित्ते प्रचय - पद - पद्यैः पद - युतैः ।

सदा जप्त्वा स्तुत्वा जपति हृदि मन्त्रं मनु-विदा ।

न तेषां संसारे विभव - परिभङ्ग - प्रमथने, क्षणं चितं देवि ! प्रभवति विरुद्धे परिकरम् ।
त्रयस्त्रिंशैः श्लोकैर्यदि जपति मन्त्रं स्तवति च, नमेच्चैतानेतान् परममृत-कल्पं सुर-वरम् ।
भवेत् सिद्धिः शुद्धौ जगति शिरसा त्वत्पद-युगं, प्रणम्य प्राकाम्यं वर-सुर-जनैः पूज्य-विततिम् ।

गुह्य-काल्याः क्रम-स्तवः

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय गुरु - देवान् नमेत् सदा । वारुणी - मुखमाश्रित्य नमस्कुर्यादुपर्यधः ।
गुरुभ्योऽपि नमो नित्यं नमस्तत् - पादुकाय च । परं परेभ्यश्च परात्परेभ्योऽपि नमोऽस्तु ते ।
आधार-शक्तिं नमस्कृत्य कुलाचलान् नमस्कुर्यात् । धर्म-कर्मणे नमस्कृत्य कूर्मराजाय वै नमः ।
अनन्ताय नमो नित्यं वराहाय नमो नमः । पृथिव्यै च नमो नित्यं कुलाचलेभ्यो नमो नमः ।
समुद्रेभ्यो नमो नित्यं स-रत्नैरमृतैर्जलैः । कुल - वृक्षेभ्यो नमो नित्यं कल्प - वृक्षेभ्यो नमो नमः ।
स्वर्ण-सिंहासनेभ्यश्च मणि - वेद्यै नमो नमः । चतुर्दिशि नमस्कुर्यात् सर्व - देवान् नमस्ततः ।
वेदेभ्योऽपि नमो नित्यं वेदार्थेभ्यो नमो नमः । शाखाभ्यस्तस्य वै नित्यं तत्-पादेभ्यो नमो नमः ।
तद्-वर्णेभ्यो नमो नित्यं वर्णार्थेभ्यो नमो नमः । असंस्कार - पदेभ्यश्च नमो वै परमात्मने ।
विद्याभ्योऽपि नमो नित्यमविद्याभ्यो नमो नमः । शास्त्रेभ्योऽपि नमो नित्यमशास्त्रेभ्यो नमो नमः ।
धर्मेभ्योऽपि नमो नित्यमधर्मेभ्यो नमो नमः । भागवतेभ्यो नमो नित्यं विद्याभ्योऽपि नमो नमः ।
श्रुतिभ्योऽपि नमो नित्यं श्रुत्यर्थेभ्यो नमो नमः । श्रीराम-भागवतेभ्यश्च दण्ड-वत् प्रणमेत् सदा ।
भागवतेभ्यो नमो नित्यं भागवतार्थेभ्यो नमो नमः । तत्त्वार्थेभ्यो नमो नित्यं तत्त्वेभ्योऽपि नमो नमः ।
योगेभ्योऽपि नमो नित्यं योगार्थेभ्यो नमो नमः । संहिताभ्यो नमो नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः ।
मातृकाभ्यो नमो नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः । कलाभ्योऽपि नमो नित्यं शक्तिभ्योऽपि नमो नमः ।
स्वरेभ्योऽपि नमो नित्यं रागेभ्योऽपि नमो नमः । रागिणीभ्यो नमो नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः ।
अस्त्रेभ्योऽपि नमो नित्यं शस्त्रेभ्योऽपि नमो नमः । जीवेभ्योऽपि नमो नित्यं बीजेभ्योऽपि नमो नमः ।
भूचरेभ्यो नमो नित्यं खेचरेभ्यो नमो नमः । योगेभ्योऽपि नमो नित्यं करणेभ्यो नमो नमः ।
मुहूर्त्तेभ्यो नमो नित्यं यामेभ्योऽपि नमो नमः । ऋतुभ्योऽपि नमो नित्यं वत्सरेभ्यो नमो नमः ।
डाकिनीभ्यो नमो नित्यं रुद्रेभ्योऽपि नमो नमः । भूतेभ्योऽपि नमो नित्यं प्रेतेभ्योऽपि नमो नमः ।
यक्षेभ्योऽपि नमो नित्यं विघ्नेभ्योऽपि नमो नमः । भूतेभ्योऽपि नमो नित्यं महा-भूतेभ्यो नमो नमः ।
आचार्येभ्यो नमो नित्यं शङ्करेभ्यो नमो नमः । वैष्णवेभ्यो नमो नित्यं ये च माया-विमोहिताः ।
मायायै प्रणमेन्नित्यं तत्त्वेभ्योऽपि नमो नमः । शरीरेभ्यो नमो नित्यं व्यापकेभ्यो नमो नमः ।

मन्त्रेभ्योऽपि नमो नित्यं यन्त्रार्थेभ्यो नमो नमः । नमो वर्णात्मिकाभ्यश्च देवताभ्यो नमो नमः ।
तत्-पदेभ्यो नमो नित्यं सत्-पदेभ्यो नमो नमः । भावनाभ्यो नमो नित्यं भाव-शास्त्रेभ्य एव च ।
स्तवेभ्यः कवचेभ्यश्च नामभ्योऽपि नमो नमः । आगमेभ्यो नमो नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः ।
तत्-क्रियाभ्यो नमो नित्यं श्रेष्ठ-शास्त्रेति कीर्त्यते । रसेभ्योऽपि नमो नित्यं गन्धेभ्योऽपि नमो नमः ।
पीठेभ्योऽपि नमो नित्यं तत्-स्थेभ्योऽपि नमो नमः । सत्त्वेभ्योऽपि नमो नित्यं राजसेभ्यो नमो नमः ।
तामसेभ्यो नमो नित्यं गुणेभ्योऽपि नमो नमः । सर्व - विद्यावतारेभ्यः सिद्धेभ्योऽपि नमो नमः ।
आनन्द - कन्दं नमस्कृत्य कन्दाय नमो नमः । सर्व - तत्त्वात्म - कमलाय प्रकृति - पत्रेभ्यश्च ।
सिद्ध-पीठाय सत्वस्य शव-रूप - शिवाय च । त्रि-पञ्चाराय चक्राय नमो नित्यं नमो नमः ।
तत्रस्थायै कालिकायै गुह्यायै काम-रूपिण्यै । गुरु-कुलादि-शक्तिभ्यः कालिकायै नमो नमः ।

नमो नमो नमोऽस्तु परापराभ्यो नमो नमः ।

विशाल-नेत्रां सुर-सङ्घ-वन्दितां सुरासुराभ्यर्चित-पाद-पद्मां ।
नृ-मुण्ड-मालाकलिता-शतांगैः परावरे ते प्रभवन्ति सिद्धाः ।।

स्थूलेति केचित् प्रवदन्ति सिद्धाः सूक्ष्मेति केचिन्मुनयो वदन्ति ।
तामम्बिकां नौमि विशाल-नेत्र-सुमङ्गलं धेहि मदीय-देहे ।।

त्वदीय-पादाम्बुजमेवमेतत् निषेव्य सिद्धाः प्रभवं प्रयान्ति ।
मातस्तवायं पापात् सर्व-शोक-दुःखाज्जगज्जन-रम्ये ।
ये त्वां ध्यायेयुर्मनसि विधानाः सर्वे ते सकल-फलाः ।।

त्रिपुरसुन्दरी-क्रम-स्तवः

ॐ गुरुभ्यो नमो नित्यं परात्पर - तराय च । परापरेभ्यः परेभ्यश्च नमो नित्यं नमो नमः ।
गोभ्यो नमो ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्म-पुत्रेभ्यो वै नमः । मुनिभ्यो मुनि-पत्नीभ्यो मुनि-पुत्रेभ्यो वै नमः ।
दिग्भ्यो नमो दिक्-पतिभ्यो दिगम्बरेभ्यश्च वै नमः । भ्रमणेभ्यो नमो नित्यं रसनाभ्यश्च वै नमः ।
वेदेभ्यो वेद-शास्त्रेभ्यो वेदार्थेभ्यो नमो नमः । भागवतेभ्यो नमो नित्यं श्री भागवतेभ्यो नमो नमः ।
श्रीराम-भागवतेभ्यो नमो नित्यं भागवतेभ्यो नमो नमः । तीर्थेभ्यः पर्वतेभ्यश्च पीठेभ्यः सततं नमः ।
योगिभ्यो योगिनीभ्यश्च योगादिभ्यश्च वै नमः । ध्यानेभ्यो मन्त्र-वर्णेभ्यो मातृकाभ्यो नमो नमः ।
आचार्येभ्यो नमो नित्यं भैरवेभ्यो नमो नमः । रुद्रेभ्यो रुद्र - पत्नीभ्यो गन्धर्वेभ्यो नमो नमः ।
किन्नरेभ्यः पिशाचेभ्यः कुष्माण्डेभ्यो नमो नमः । अवतारेभ्यो मूर्तिभ्य आदित्येभ्यो नमो नमः ।
नमः संवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः । नक्षत्र - ग्रह - योगेभ्यः करणेभ्यश्च वै नमः ।
तिथिभ्यः सर्व-कालेभ्यः ऋतुभ्योऽपि नमो नमः । ककाराद्यैर्महा - देव्यै कालिकायै नमो नमः ।
एकारस्थां महा-देवीं सर्वाधार-स्वरूपिणीम् । ईकारस्थां महा - देवीं रतिं कामाङ्ग-सुन्दरीम् ।
लकारस्थ - महा - देव्यै इन्द्राण्यै सर्व - सिद्धये । हकारस्थ - महा - देव्यै शिवायै सर्वतो नमः ।
एतैर्वर्णैर्महा - माया पातु मां सुन्दरी शुभा । सकारस्था महा-माया सावित्री पातु मां सदा ।

शिवा मां पातु देवेशी हकाराद्या सुरेश्वरी। शिवानी सर्वदा पातु हकारस्था महोदया।
वकारस्था महा - देवी पातु मां काम - दायिनी। लकारस्था महा-देवी इन्द्राणी पातु सर्वदा।
सर्वाङ्गे पातु मां देवी सर्वाणी सर्व - सुन्दरी। एतैर्वर्णैर्महा - माया पातु मां सुन्दरी सदा।
ककारस्था महा-माया ब्रह्माणी पातु मां सदा। हकारस्था शिवा पातु सर्वत्र शिव-दूतिका।
ककारस्था शिवा पातु हकारस्था सुरेश्वरी। सकारस्था सदा पातु सावित्री शर्म-दायिनी।
लकारस्था महा-देवी लक्ष्मीर्मां सर्वदावतु। भुवनेशी सदा पातु सर्वांगे भव - सुन्दरी।
अनन्ता सर्वदा पातु अकारस्था सुरेश्वरी। अकाराद्या सदा पातु शिव-दूती सुरेश्वरी।
सकारस्था सदा पातु कामिनी काम - दायिनी। लकारे पातु मां सर्व - क्षेत्रे त्रि-भुवनेश्वरी।
लकारस्था सदा पातु इन्द्राणी सर्वदा मम। मकारस्था सदा पातु सर्वत्र मां सुरेश्वरी।
एभिर्वर्णैः स्थिता देवी पातु मां भुवनेश्वरी। शिवानी मां सदा पातु सर्वत्र हर - सुन्दरी।
चन्द्र-वीज-स्थिता विद्या सावित्री शम्भु-रूपिणी। पातु मां सर्व-क्षेत्रेषु देवता भुवनेश्वरी।
एतैर्वर्णैर्महा - माया पञ्च - विंशति - वर्णिका। भुवनेशी सदा पातु सर्वांगे त्रिपुराम्बिका।
सर्व-वीजेषु सर्वत्र योजयेद् भुवनेश्वरीम्। सर्वांगे मां सदा पातु देवी त्रि-भुवनेश्वरी।
शिखायां भ्रू-युगे चाक्ष्णोरोष्ठयोर्गण्डयोर्नसि। तथा च चिबुके दन्ते जिह्वायां तालु-मूलके।
हृदये पार्श्व - युगले पृष्ठे नाभौ तथोदरे। नितम्बे च तथोपस्थे गुह्ये च जानु - युग्मके।
जानु-चक्रे च जङ्घायां कटिके पादके पुनः। सर्वांगे पातु मां देवी श्रीमत् - त्रिपुर - सुन्दरी।
शास्त्रे वादे च संग्रामे राज - द्वारे सुरार्चने। प्रान्तरे गिरि - दुर्गे च शत्रु - मध्ये तथापरे।
चौरे व्याघ्रे च सिंहे च विषयादि - भयादिषु। अत्यन्त - रोग - युक्तेषु पातु मां त्रिपुराम्बिका।
सुन्दरी पातु सर्वत्र सुन्दरी परि - रक्षतु। इदं त्रिपुर - सुन्दर्याः क्रम - स्तोत्रमुदाहृतम्।
यत्र तत्र न वक्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितं। शठाय भक्ति - शून्याय निन्दकाय महेश्वरि!
न्यूनाङ्गे चातिरिक्ताङ्गे दर्शयेन्न कदाचन। शूद्राय न च दद्याच्च स्तव-राजं महेश्वरि!
वदेद् वा दर्शयेद् वापि शङ्करेण च भाषितं। श्लोकं वा स्तवमेकं वा पूजयेद् वा पठन्नपि।
ब्रह्म-हत्यां सुरा - पानं स्तेयं गुर्वङ्गना-गमः। सर्वमाशु तरत्येव स्तवस्यास्य प्रसादतः।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो लभते धनं। अरोगी बलवांश्चैव जायते स्पर्शनादपि।
किमन्यद् बहुना देवि! यद् यद् वांञ्छितमात्मनः। तत् सर्वं लभते देवि! स्तवस्यास्य प्रसादतः।

दक्षिण-कालिका, गुह्य-काली एवं त्रिपुर-सुन्दरी के जो 'क्रम-स्तव' यहाँ दिये गये हैं, वे विश्व-सार-तन्त्र से उद्धृत हैं।

तीसरा परिच्छेद

स्नान से तिलक तक का वर्णन

स्नान की विधि

यामल में—श्रुति और स्मृति की सभी क्रियाओं का मूल 'स्नान' है। इसलिए श्री, पुष्टि और आरोग्य की वृद्धि के लिए 'स्नान' अवश्य करना चाहिए। यही वचन मत्स्य सूक्त, दशम पटल में भी है।

स्नान न करने में दोष

राघव भट्ट का कथन है कि अशुद्ध वस्त्र-युक्त, स्नान-रहित, अलङ्कार-हीन पुरुष के पास देवता नहीं आता।

स्नान के भेद

रुद्र-यामल, उत्तर खण्ड, इक्कीसवें पटल में—स्नान दो प्रकार का है—१ मज्जन, २ गात्र-मार्जन। मन्त्र-जलादि द्वारा स्नान उत्तम कहा गया है।

सात प्रकार के स्नान

विश्वसार, द्वितीय पटल में—१ मान्त्र, २ भौम, ३ आग्नेय, ४ वायव्य, ५ दिव्य, ६ वारुण और ७ मानस। इस प्रकार विधिवत् स्नान करने से पवित्रता होती है, अन्यथा नहीं। 'आपो हिष्ठा०' इत्यादि से 'मान्त्र', देह के प्रमार्जन से 'भौम', भस्म से 'आग्नेय', गोरज से 'वायव्य', आतप-वर्षा से 'दिव्य', जल में अवगाहन से 'वारुण' और विष्णु के ध्यान से 'मानस' स्नान होता है। मान्त्र स्नान दो प्रकार का होता है—१ आन्तर, २ बाह्य।

वैष्णव आभ्यन्तर स्नान

वशिष्ठ-संहिता में—अनन्त आदित्यों के समान वासुदेव चतुर्भुज हैं। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म लिए हैं। मुकुट तथा वन-माला पहने हैं। द्वादशार्ण पद्म पर विराजमान हैं। इस प्रकार नारायण विभु का ध्यान करे।

विश्वसार तन्त्र, द्वितीय पटल में—अपने भीतर स्थित मूर्तिमान् पुण्डरीकाक्ष प्रभु का स्मर करते हुए ध्यान करे कि उनके पादोदक की धारा अपने सिर पर गिर रही है, जो ब्रह्म-रन्ध्र से होकर अपने शरीर में आ रही है। उस धारा से अपने शरीर के सारे मल को धोने की भावना करे। ऐसी भावना करने से मन्त्र-साधक तुरन्त ही स्फटिक के समान निर्मल हो जाता है। यह श्रेष्ठ स्नान मान्त्र स्नान से सहस्र गुना अधिक प्रभाववाला माना गया है।

शाक्त आभ्यन्तर स्नान

श्रीपञ्चमी-मत में—स्नान के दो प्रकार हैं—१ बाह्य, २ आभ्यन्तर। आन्तर स्नान अत्यन्त रहस्यमय है। संसार से छुटकारा पाने और चतुर्वर्ग का फल पाने के लिए उसका वर्णन करते हैं। चरण-त्रय के मध्य में सम्वित्-त्रय का स्मरण करे। उनसे स्रवित होनेवाले सच्चिदानन्द-प्रवाह को भावना से देखे, जो लोगों को स्मरण मात्र से योगियों की मुक्ति देनेवाला है। उस प्रवाह से अपने को आप्लावित होता हुआ ध्यान करे। इससे संसार से मुक्ति मिलती है।

शैव आभ्यन्तर स्नान

शैवागम में—मन में मूल-मन्त्र द्वारा प्राणायाम-सहित मानस स्नान करे, जो सर्वत्र विहित है।

गन्धर्व तन्त्र, षष्ठ पटल में—स्नान और सन्ध्या के तीन प्रकार बताए हैं—१ आन्तर, २ बाह्य, ३ मानस। मन को शुद्ध करने से मानस स्नान होता है। स्पर्श, लेपादि की इसमें आवश्यकता नहीं होती। बाह्य स्नान मन्त्रों द्वारा होता है और आन्तर स्नान के लिए प्राणायाम कर शक्ति को पर-शिव से मिलाने की भावना करे तथा उनसे उत्पन्न अमृत में निमज्जन करे।

नित्य-स्नान का फल

मत्स्य-सूक्त, दशम पटल में—नित्य स्नान करनेवाला यम की यातना का दुःख नहीं पाता। पाप करनेवाले लोग भी नित्य स्नान करने से पूज्य बन जाते हैं। अगम्या-गमन, पापियों से प्रतिग्रह, गुप्त रूप से किए गए पापादि से नित्य स्नान करनेवाला मुक्त हो जाता है।

बाह्य स्नान का फल

रुद्र-यामल, पूर्व-खण्ड, द्वितीय पटल में—नदी, सरोवर, तालाब, कुएँ या बावली में प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल यथा-विधि स्नान करे।

विश्वसार तन्त्र, द्वितीय पटल में—स्नान के उद्देश्य से विधिपूर्वक पूर्वाह्निक क्रिया को करे। नदी, देव-खात, दीर्घिका या सागर के पास पहुंचकर यह क्रिया करनी चाहिए। नदी आदि से निकाले गए जल की अपेक्षा स्थान में स्थित जल को प्रशस्त माना गया है। गङ्गा आदि सभी नदियाँ स्थान में स्थित होने से ही प्रशस्त हैं। भारत में काशी आदि जो समस्त तीर्थ हैं, उन स्थानों की नदियाँ सब पापों को दूर करती हैं। गङ्गा-जल निकाला हुआ भी प्रशस्त माना गया है। ऊपर 'गङ्गा आदि' से तात्पर्य है गङ्गा से भिन्न नदियाँ।

नील-तन्त्र, द्वितीय पटल में—मिट्टी और कुशों को भी लेकर जल के पास जाए। मल-त्याग के बाद स्नान कर मान्त्र स्नान करे।

शाक्त के लिये विशेष कुश

श्यामा रहस्य में—तर्जनी में चाँदी और अनामा में स्वर्ण धारण करे। शाक्त के लिए यही कुश हैं, वन में उत्पन्न दर्भ नहीं।

वैदिक स्नान के बाद तान्त्रिक स्नान और स्नान का सङ्कल्पादि

महा-निर्वाण तन्त्र, पञ्चम उल्लास में—पहले जल का स्पर्श करे, तब जल में प्रवेश करे। नाभि तक जल में खड़े होकर मल को दूर करे। एक बार डुबकी लगाकर खड़ा होवे और मान्त्र-स्नान करे। इस प्रकार मल दूर किए बिना केवल सङ्कल्प-पूर्वक स्नान करना अनुशासन के विरुद्ध है।

कुछ लोग पूर्वोक्त विश्वसार-वचन के अनुसार पौर्वाह्निक क्रिया के बाद स्नान की विधि देखकर उक्त क्रिया न कर तैल लगाए हुए ही स्नान के पूर्व पौर्वाह्निक क्रिया कर लेते हैं। यह ठीक नहीं है।

पूर्वोक्त यामल-वचन के अनुसार क्रिया-मात्र का मूल स्नान होने से राघव भट्ट द्वारा मान्य स्नान करने के बाद देव-गृह में आकर सम्मार्जनादि का कथन किया गया है।

नील तन्त्र में—विद्या (मन्त्र) के द्वारा तीन डुबकी लगावे। फिर डुबकी लगाकर सङ्कल्प करे। इष्ट-देवी के पूजन के लिए जलाशय में स्नान करे।

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश में—अरुण (सूर्य) के उदय होने के पूर्व मन्त्र-साधक तीर्थ या निर्मल जल में वैदिक-स्नान कर तान्त्रिक स्नान करे।

गन्धर्व तन्त्र, प्रथम पटल में—'ॐ तत् सत्' का उच्चारण कर कर्म करना चाहिए। कर्म के आरम्भ में इस मन्त्र का स्मरण करने से साधक ब्रह्म-स्वरूप होता है।

तोड़ल तन्त्र, द्वितीय पटल में—'अद्य' इत्यादि का उच्चारण कर सौर मास का नाम ले। फिर, 'देवता-प्रीतये' कहकर शुद्ध जल से स्नान करे।

कुल-चूड़ामणि में—कृष्ण, रक्त, हरित और नील—विविध वर्ण की देव-मूर्तियाँ हैं। अपने देवता को सारे आकाश, पृथ्वी, पाताल में व्याप्त भावना करते हुए कुल-दर्भ से आचमन करे। दूर्वा, तिल और जल से युक्त कुल-पात्र को लेकर कुल-देवता की प्रीति के लिए स्नान करे। सङ्कल्प कर जल में कुल-चक्र का न्यास करे। 'कुल-पात्र' ताम्र-पात्र को और 'कुल-चक्र' त्रिकोण को कहते हैं।

सङ्कल्प न करने से दोष

मत्स्य-सूक्त में—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, पितृ और दैव-कर्म में सङ्कल्प-पूर्वक ही कर्म करना चाहिए, नहीं तो कोई फल नहीं होता।

सङ्कल्प में विहित और निषिद्ध पात्र

शुक्ति, शङ्ख, अश्म, हस्त, कांस्य, रौप्य, मृण्मय पात्रों से कभी सङ्कल्प न करे। औडुम्बर पात्र या सोने के पात्र से अथवा मेध्य पत्तों के दोने से सङ्कल्प करना चाहिए। स्नान-काल में हाथ से या ताम्र-पात्र से सङ्कल्प करे। पैतृक कर्म में श्राद्ध-पात्र और दैव कर्म में शङ्ख-पात्र प्रशस्त हैं।

मज्जन की विधि

धारा की ओर या सूर्य की ओर मुख करके नारायण का स्मरण करे। फिर गङ्गा और इष्ट-देव का ध्यान करे। केश खोलकर स्नान करे। बाद में शिखा को पुनः बाँध ले। तब हाथ जोड़कर तीर्थों का आवाहन करे। यथा—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ! नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु। ब्रह्माण्डे देव-तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः। तेन सत्येन मे देव ! तीर्थं देहि दिवाकर ! प्रिय-व्रतानि तीर्थानि सूर्य-रश्मि-स्थितानि च। आगत्यार्घ्यं गृहीत्वा च सर्व-सिद्धिं प्रयच्छ मे।

चतुरस्र बनाकर उसमें स्नान करे। राघव भट्ट द्वारा उद्धृत है—

आवाहयामि त्वां देवि ! स्नानार्थमिह सुन्दरि ! एहि गङ्गे ! नमस्तुभ्यं सर्व-तीर्थ-समन्विते !

इस मन्त्र से अंकुश मुद्रा द्वारा आदित्य-मण्डल से तीर्थ-आवाहन कर 'वं' से जल में तीर्थ का संयोजन कर वहाँ सोम-सूर्य-अग्नि-मण्डलों का चिन्तन कर उसे अमृत-बीज 'वं' से बारह बार अभिमन्त्रित कर, कवच 'हुं' से अवगुण्ठन कर, अस्त्र 'फट्' से संरक्षण कर मूल-मन्त्र द्वारा ग्यारह बार अभिमन्त्रित करे। इसका प्रमाण वशिष्ठ-संहिता में दिया है। यथा—हृन्मन्त्र से अंकुश-मुद्रा द्वारा सूर्य-मण्डल से तीर्थ का आकर्षण कर जल में उसका आवाहन-संयोजन कर सोम-सूर्य-अग्नि-मण्डलों का चिन्तन कर उनके मध्य में स्नान करे। मन में मूल-मन्त्र का जप करे।

ज्ञानार्णव में—प्राणायाम कर शरीर में षडङ्ग-न्यास करे। फिर सूर्य-मण्डल से अंकुश मुद्रा द्वारा तीर्थ का आकर्षण कर उसे 'वं' से आप्लावित, कवच 'हुं' से अवगुण्ठित, अस्त्र 'फट्' से संरक्षित और मूल-

मन्त्र से रुद्र (११) बार अभिमन्त्रित करे। तब उसमें डुबकी लगाकर श्रीदेव का ध्यान कर यथा-शक्ति जप करे।

मत्स्य-सूक्त में भी—मीन-मुद्रा से आच्छादन कर रुद्र (११) संख्यक मन्त्र-जप करे। सूर्य की ओर मुख करके रवि (१२) संख्यक अंजलि-जल छोड़े। मूल-मन्त्र का उच्चारण कर दोनों हाथ धोये। चरणों से निकले हुए जल में तीन बार डुबकी लगाकर मन्त्र का जप करे।

मृदालम्भन अर्थात् मिट्टी का लेप

विश्वसार तन्त्र में—गङ्गा में विधिपूर्वक अपने शरीर में मृदोदक (मिट्टी मिला जल) मलकर सविधि स्नान करे, जैसा कि महाकाल का वचन है।

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश में—मूल-मन्त्र से मिट्टी को लेकर उसके तीन भाग करे। एक भाग को मन्त्रोच्चारण करते हुए जल में डाले और उससे मूर्द्धा (सिर) से लेकर नाभि तक लेपन करे। दूसरे भागों से शरीर के अधोभाग में लेपन करे।

मत्स्य-सूक्त में—नाक, मस्तक, गण्ड (कनपटी), चिबुक (ठुड्डी), दोनों पार्श्वों (बगलों), पैरों, पीठ, नाभि, ऊरु और जाँघों में मिट्टी लगाने की विधि है। जल में मिट्टी मिलाने का मन्त्र निम्न प्रकार है—

इदं विष्णुरिति मन्त्रस्य मेधातिथिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, विष्णुः देवता, तोये मृत्तिकालम्भने विनियोगः।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं स मूढ़मस्य पांशुले।

विश्वसार में शरीर में मिट्टी-लेपन का मन्त्र दिया है। यथा—

ॐ अश्व-क्रान्ते रथ-क्रान्ते विष्णु-क्रान्ते वसुन्धरे! मृत्तिके! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतं।
ॐ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शत-बाहुना। नमस्ते सर्व-देवानां प्रभवारुणि! सु-व्रते!

तब निम्न मन्त्र से प्रणाम कर तीन बार डुबकी लगाये—

ॐ आधारं सर्व-रूपस्य विष्णुरतुल-तेजसः। तद्-रूपाश्च ततो जाता अग्रेताः प्रणमाम्यहं।

वशिष्ठ-संहिता में—उठकर आचमन करे। तब षडङ्ग-न्यास कर कलश-मुद्रा से मूल-मन्त्र द्वारा अपने शरीर को मूल-मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से सात बार अभिषिञ्चित करे।

ज्ञानार्णव में कलश-मुद्रा बताई है कि दाएँ हाथ की मुष्टि (मुट्ठी) बाएँ हाथ में लगाने से 'कलश' नामक शुभ मुद्रा बनती है, जो सब पाप-हारिणी है।

वशिष्ठ-संहिता में—कुम्भ-मुद्रा बाँधकर स्नान करे। फिर 'वषट्' से शङ्ख में शालग्राम-शिला के जल में तुलसी और चन्दन मिलाकर उसे तीन बार घुमाते हुए अपने सिर पर छोड़े।

तर्पण की संक्षिप्त विधि

तदनन्तर ब्राह्मणों, मनुष्यों, पितरों का संक्षेप में तर्पण करे।

पराये खात में स्नान

पराये अर्थात् अन्य व्यक्ति के 'खात' अर्थात् सरोवर में स्नान करने की विधि विश्वसार तन्त्र द्वितीय पटल में दी है, तदनुसार उसमें से पहले निम्न मन्त्र द्वारा पङ्क-पिण्ड (कीचड़ का पिण्ड) निकाले—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पङ्क! त्वं त्यज पुण्यं परस्य च। पापानि विनाशय मे शान्तिं देहि सदा मम।

अयनादि में तैल-स्नान का निषेध

योगिनी तन्त्र, उत्तर खण्ड, नवम पटल में—अयन, विषुव, मङ्गलवार, दिन-क्षय, द्वादशी तिथि और राहु-ग्रस्त काल में तैल-स्नान न करना चाहिए।

गात्र-मार्जन की विधि

कपास (रुई) या वल्कल वस्त्र से शरीर पोंछना चाहिए। लाल वस्त्र से कुष्ठ और पाण्डर (पीले) वस्त्र से रोग होता है। कुसुमों से भी न पोंछे अन्यथा नाश होता है। नीले वस्त्र से रक्त-क्षय होता है। मध्याह्न काल के स्नान में शरीर पोंछने का निषेध मत्स्य-सूक्त, दशम पटल में है। यथा—मध्याह्न-स्नान में वस्त्र या हाथ से शरीर को न पोंछे। प्रेत-स्नान में, तीर्थ व गङ्गा में स्नान करने में सभी कालों में तूलिक (रुई) के बीज से भी शरीर नहीं पोंछना चाहिए। इन स्थितियों में शरीर पोंछने से अधिक दोष होता है, यही स्पष्ट करने के लिए तूलिक-बीज का उल्लेख हुआ है।

मध्याह्न में शरीर पोंछने का निषेध इसलिए है क्योंकि देवता शिर का, पितर मुख का, पितृ-गन्धर्व वक्षःस्थल का और अधर का जल सभी प्राणी पीते हैं। अतः मध्याह्न में विशेष कर शरीर न पोंछना चाहिए।

गङ्गा-स्नान के बिना महा-विद्या-पूजन में दोष

गङ्गा-स्नान किए बिना जो कालिका की या दश विद्याओं की पूजा करता है, वह सब व्यर्थ होती है। गङ्गा के सुलभ न होने पर क्षेत्रीय नदी में गङ्गा के मन्त्र का उच्चारण करते हुए जो स्नान करता है, वह सब पापों से छूट जाता है।

गङ्गा का ध्यान और मन्त्रादि

भारत में कलि-काल में गङ्गा का तन्त्रोक्त ध्यान व मन्त्र प्रशस्त हैं। ध्यान इस प्रकार है—

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां शुक्लाम्बर-विभूषितां। शुक्ल-मुक्तावली-मालां हृदयोपरि-शोभितां।
श्वेत-माला-धरां देवीं श्वेताभरण-भूषितां। सदा षोडश-वर्षीयां ब्रह्मादि-परिसेवितां।

इस प्रकार ध्यान कर गङ्गा की विद्या (मन्त्र) का जप करे यथा—

प्रणव (ॐ), माया (ह्रीं), गंगायै, ॐ ह्रीं, नमः

यह नवाक्षरी विद्या सुषुम्ना-मार्ग में संस्थिता है। दूसरा पञ्चाक्षर मन्त्र निम्न प्रकार है—

प्रणव (ॐ), गंगायै, ॐ

सुषुम्ना-मार्ग में स्थित तीसरी सप्ताक्षरी विद्या निम्न प्रकार है—

माया-वीज (ह्रीं), प्रणव (ॐ), गंगायै ह्रीं ॐ

चौथा परम दुर्लभ पञ्चाक्षर मन्त्र निम्न प्रकार है—

माया-वीज (ह्रीं), गंगायै, माया (ह्रीं)

इस प्रकार ध्यान और मन्त्र के द्वारा जो सदा गङ्गा की पूजा करता है, उसे शीघ्र ही सिद्धि मिलती है। प्रतिदिन मन्त्र का जप करने से गङ्गा-स्नान का फल प्राप्त होता है। अतः पहले गङ्गा की विद्या का जप करे, इससे साधक को पवित्र करने के लिए गङ्गा स्वयं आती हैं।

गंगा का क्षेत्र

जो गङ्गा महती माया, कुण्डली और पर-कुण्डली है, वह सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त किए है। महा-नद और नदी के रूप में वह सर्वत्र रहती है। जिस क्षेत्र में एक योजन तक नदी होती है, वह गंगा ही है, इसमें सन्देह नहीं। गंगा के समान पुण्यदायक और कुछ भी नहीं है।

गंगा के नाम का माहात्म्य

योगिनी तन्त्र, पूर्व खण्ड, अष्टादश पटल में—गंगा का माहात्म्य क्या कहा जाय, उसके नाम के स्मरण से ही पापी मुक्ति पा जाते हैं। 'गंगा गंगा'—इस प्रकार जो पापी से भी पापी व्यक्ति कहता है, वह पापों से मुक्त होकर वैष्णवी पुरी को पहुंच जाता है।

गंगा-जल का माहात्म्य

जो-जो पाप कहे गए हैं, जिनका प्रायश्चित्त नहीं किया गया है या जिनका कोई प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, वे सब पाप गंगा-जल के अभिषेक से नष्ट हो जाते हैं।

गंगा-युक्त देश की श्रेष्ठता

घर्घरा आदि नदियों का जल गंगा में गिरकर गंगा को प्रवाहित करता है, अतः वे सब मन्त्र की महिमा से गंगा ही हो जाती हैं। जिस देश में गंगा बहती हैं, वह पुण्य-भाजन माना गया है। पुण्य क्षेत्र की पवित्रता दो योजन तक व्याप्त रहती है। वहाँ जो कर्म किया जाता है, वह गंगा में ही किया गया सा फलदायक होता है। गंगा में किये गये कर्म का अक्षय फल होता है। संगम हो या न हो, उस क्षेत्र के निवासी सभी प्राणी देव-लोक से निकले हुए होते हैं। वे विविध सुखों को भोगकर और सदा अच्छे कर्म करके अनायास ही पुनः परम दुर्लभ देव-स्थान में पहुंच जाते हैं।

गंगा में प्राण-त्याग का फल

पुण्यों के प्रभाव से जो गंगा में प्राण त्याग करता है, वह ज्ञानी हुआ तो मोक्ष को और अज्ञानी हुआ तो वैकुण्ठ को प्राप्त करता है।

गंगा-यात्रा के मार्ग में मृत्यु होने का फल

गङ्गा के उद्देश्य से जाते हुए व्यक्ति की यदि मार्ग में मृत्यु होती है, तो पापी होने पर भी वह विष्णु-लोक में जाता है।

गंगा के किनारे मृत्यु का फल

गङ्गा के किनारे न्याय या अन्याय से जो प्राण छोड़ता है, वह स्वर्ग को ही प्राप्त करता है।

गंगा में मृतास्थि के फेंकने का फल

गङ्गा में मृत व्यक्ति की जितनी अस्थियाँ फेंकी जाती हैं, उतने ही सहस्र वर्षों तक वह स्वर्ग में रहता है।

गंगा-जल में मरने का फल

गङ्गा-जल में जहाँ कहीं मरण होने से मृत व्यक्ति सब पापों से छूटकर विष्णु-लोक को प्राप्त करता है।

गंगा के पास चार हाथ मध्य में पिण्ड-दान

गंगा-तट पर चार हाथ के क्षेत्र के मध्य में भक्तिपूर्वक पिण्ड-दान देने से पितरों की निष्कृति होती है और पिण्ड-दाता विष्णु-लोक में जाता है।

गंगा में तर्पण करने का फल

जो पुण्यवान् व्यक्ति गङ्गा में तर्पण करता है, उसके पितरों को सौ वर्ष की महा-तृप्ति होती है। ऋषियों और देवताओं को भी वैसी ही तृप्ति होती है।

गंगा में अस्त-काल का अभाव

दिन में या रात्रि में, सध्या-समय या महा-निशा में—सभी समय गङ्गा में स्नान, दान, तप, होम, तर्पण, पूजनादि सभी कर्म करने चाहिए। गङ्गा में काल-भेद का विचार नहीं है।

काल-भेद मानने में दोष

काल-भेद मानकर जो गङ्गा में कोई कर्म नहीं करता, वह व्यक्ति मरकर अगले जन्म में अरण्य (जंगल) में स्थावर (वृक्षादि) होता है। दावाग्नि से उसकी शिखा जलकर वह भस्मीभूत होता है। फिर वह चाण्डाल होकर सात जन्मों तक नित्य दुःख पाता है। उसके बाद तीन जन्मों तक वह धोबी होता है। तदनन्तर दस जन्मों तक शूद्र-योनि में रहकर वह वैश्य होता है। चार जन्म बीतने पर वह तीन जन्मों तक क्षत्रिय होता है। अन्त में ब्राह्मणत्व पाकर उसकी सद्गति होती है। इस प्रकार गङ्गा में काल-अकाल का विचार करना निन्दनीय है।

गंगा में पर-द्रव्य चुराने में दोष

गङ्गा में जो किसी की कुछ भी वस्तु चुराता है, वह रौरव नरक में जाता है और प्रलय-काल तक उसका उद्धार नहीं होता।

गङ्गादि में प्रति-ग्रह (दान) लेने में दोष

गङ्गा के किनारे या गङ्गा में जो मनुष्य दान लेता है, वह दस जन्मों तक श्वपच (चाण्डाल) होता है। फिर सात जन्मों तक दरिद्रता भोगते हुए पृथ्वी पर भटकता फिरता है। तब उसका उद्धार होता है।

योगिनी तन्त्र में इसी प्रकार गङ्गा का माहात्म्य वर्णित है।

आत्माभिषेक का मन्त्र

राघव-भट्ट द्वारा उद्धृत निम्न दो मन्त्रों से अपना अभिषेक करे—

ॐ वं सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते। मातरः सर्व-भूतानामापोः देव्यः पुनन्तु माम्! अलक्ष्मी मल-रूपां यां सर्व-भूतेषु संस्थितां। क्षालयन्ति निज-स्पर्शादापो नित्यं पुनन्तु माम्।

फिर निम्न मन्त्र से जल को नमस्कार करे—

ॐ यन्त्रे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तत्त्वं तु वो नमः। आयुरारोग्यमैश्वर्यमरि - पक्ष - क्षयं सुखं। सन्तोष - क्षान्तिरास्तिक्यं श्रिद्धा भवतु वो नमः।

बन्ध-मोक्ष का कारण मन और मानस-स्नान

योगिनी तन्त्र, तृतीय भाग, अष्टम पटल में—मन ही नित्य है, मन ही कारण है, मन ही मनुष्य के बन्धन व मोक्ष का कारण है। उसका नियन्त्रण करने से ही मनुष्य कभी संसारी नहीं होता। कहता है कुछ और करता कुछ है, इस प्रकार जो वाणी और मन में स्थित है, तथा दिखाता कुछ है, ऐसे व्यक्ति की क्रिया व्यर्थ होती है। बाद का अतिरिक्त कथन मत्स्य-सूक्त, षड्-विंशति पटल में है।

मत्स्य-सूक्त में यह भी लिखा है कि जो सोचे हुए दुष्ट कर्म को करता है, उसे तीर्थ में स्नान करने से कोई फल नहीं मिलता, जिस प्रकार सुरा-भाण्ड को सौ बार भी जल से धोयें, तब भी वह अपवित्र रहता है।

योगिनी-तन्त्र में—जो इष्ट नहीं है, उसी में लगा रहना ही दुःख का मुख्य कारण है। दुष्ट चित्त वाले व्यक्ति के लिए तीर्थ-स्नान निषिद्ध है क्योंकि निरन्तर जल से धोने पर भी अपवित्र सुरा-भाण्ड के समान वह व्यक्ति भी अशुचि ही रहता है। चाहे गुफा में बहुत समय तक रहे, चाहे पर्वत के शिखर पर; चाहे पुराण पढ़े, चाहे वेद के सिद्धान्त-तत्त्व को जाने किन्तु यदि हृदय अशुद्ध है, तो इन सबका विरुद्ध ही फल होता है। तीर्थ, दान, व्रत, आश्रम आदि दुष्ट-बुद्धि, दुष्टाशय व्यक्ति को कभी पवित्र नहीं बनाते।

मानस प्रयोग

चित्त को वश में कर मनुष्य यहाँ, वहाँ—कहीं भी रहे, उसके लिए सभी स्थान कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर और गया के समान तीर्थ ही होते हैं।

ज्ञान-संकुली में—यह तीर्थ है, यह तीर्थ है, ऐसा कहते हुए तमोगुणी लोग इधर-उधर भटकते फिरते हैं। वे 'आत्म-तीर्थ' को नहीं जानते। फिर उनकी मुक्ति कैसे हो ?

रुद्र-यामल, उत्तर खण्ड, एक-विंशति पटल में—हृदय-कमल के निर्मल पुष्कर तीर्थ में स्नान करने मात्र से अनन्त पापों से मुक्ति मिलती है। अथवा सब जन्मों के पाप से मुक्त होने के लिए 'विन्दु-तीर्थ' में स्नान करे। शरीर-रूपी इस शिव-तीर्थ में इड़ा-सुषुम्ना नदियाँ ज्ञानाम्बु से भरी हुई बहती हैं। इन दोनों के ब्रह्माम्बु से जो सदा स्नान करता है, उसे गङ्गा के या पुष्करादि तीर्थों के जल की क्या आवश्यकता ?

ये दोनों वचन कल्प-सूत्र-टीका में उदयाकर पद्धति में भी लिखे हैं।

ज्ञान-संकुली में—इड़ा भागीरथी गङ्गा है और पिङ्गला है यमुना नदी। उन दोनों के मध्य में सुषुम्ना नाम की नाड़ी सरस्वती है। जहाँ त्रिवेणी-सङ्गम है, वहीं तीर्थ-राज कहा गया है। वहाँ स्नान करे, तो सब पापों से मुक्ति मिलती है।

मूलाधार-तीर्थ

रुद्र-यामल में—सूर्यात्मिका इड़ा (गंगा) मल-स्थान में रहती है और यमुना (पिङ्गला) मल-प्रवाहिका है। सुषुम्ना मल-देश से जाती है किन्तु मज्जनात्मिका सरस्वती-रूप से रक्षा करती है। मन में स्थिर होकर विशिष्ट तत्त्व का ज्ञाता जो मनुष्य मन्त्र-क्रिया-योग से मही (पृथिवी-तत्त्व) में स्थित मूलाम्बुज (मूलाधार चक्र) तीर्थ के निर्मल जल में प्रसन्न होकर स्नान करता है, वह सुन्दर मुक्ति का अधिकारी होता है। सभी तीर्थों को पवित्र करनेवाली गंगा, जो महा-सत्व से निकलती है, पापों का नाश करती है और मुक्ति प्रदान करती है।

स्वाधिष्ठान और मणिपूर तीर्थ

स्वर्ग में स्थित सभी तीर्थ स्वाधिष्ठान के सुन्दर कमल में हैं। श्रेष्ठ योगी उसमें उसी प्रकार स्नान करता है, जैसे गंगा-जल में।

मणिपूर में पञ्च-कुण्ड सरोवर वाला देव-तीर्थ है। जो मुक्ति चाहता है, वह वहाँ स्थित कामना-तीर्थ में स्नान करता है।

अनाहत और विशुद्ध के तीर्थ

अनाहत में सूर्य-मण्डल के मध्य में स्थित सभी तीर्थ हैं। उन सब तीर्थों की भावना कर मुमुक्षु व्यक्ति उसमें स्नान करता है।

विशुद्ध नामक महा-पद्म में अष्ट-तीर्थ हैं। वीर साधक उसे कैवल्य मुक्ति का दाता मानकर श्रेष्ठ मुक्ति के लिए उसमें स्नान करता है।

आज्ञा में स्थित तीर्थ

आज्ञाचक्र में मानस विन्दु-तीर्थ और कला-युक्त काली-कुण्ड का ध्यान कर निर्वाण-सिद्धि के लिए उसमें स्नान किया जाता है।

मानस स्नान का फल

कुल (शक्ति) को प्रिय इस स्नान को योगी लोग सहर्ष करते हैं। इस स्नान से वीर साधक सत्व-युक्त होकर सर्व-सिद्धि-सम्पन्न होते हैं। महा-तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्म-हत्यादि सभी पापों से मुक्ति मिलती है, अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वायु-संग्रह (प्राणायाम) करने में असमर्थ व्यक्ति इस स्नान मात्र से—इन तीर्थों के दर्शन करने से मुक्त योगी होता है, यह निश्चित है।

जल में सूखे और स्थल में गीले वस्त्र का निषेध

मत्स्य-सूक्त, दशम पटल में—जल से उठकर और जल के पास बैठकर कर्म करने में विपरीतता न करे अर्थात् जल में सूखा वस्त्र पहनकर और स्थल पर गीला वस्त्र पहनकर दैव या पैत्र्य कर्म नहीं करना चाहिए अन्यथा किए गए कर्म का फल नहीं होता।

पहने जानेवाले वस्त्र का परिमाण

गौतमीय में—वस्त्रों को धोकर, आचमन कर, शुद्ध दो श्वेत वस्त्रों को धारण करे, जो कटे-फटे न हों, समान-रूप हों और पीठ (आसन) पर बैठकर आचमन करे।

मत्स्यसूक्त में—धुले हुए दो वस्त्र पहने, जो न लाल रंग के हों, न मैले हों। नीले वस्त्र भी प्रशस्त नहीं हैं। आठ, सात, छः और चार हाथ लम्बे वस्त्र क्रमशः ब्राह्मण, छत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए विहित हैं।

ब्राह्मणादि के पहनने योग्य वस्त्र

मत्स्य-सूक्त में—ब्राह्मणादि वर्ण क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण रंग के वस्त्र धारण करें।

वस्त्र पहनने की विधि

दूसरे के द्वारा पहने गए वस्त्र को कभी न पहने। वस्त्र के मूल भाग को निकाल कर पीठ की ओर छः अंगुल ढँके। तीन अंगुल कमर में छोडें, जिससे नाभि मात्र दिखाई दे।

विशेष कर्म में विशेष वस्त्र

उदयभानुनाथ-कृत कृष्णार्चन-चन्द्रिका में उद्धृत श्यामा-रहस्योक्त स्वतन्त्र तन्त्र में—मोक्षार्थी दो रक्त-वस्त्र, भोगार्थी दो श्वेत वस्त्र, मारण में कृष्ण-वस्त्र और वशीकरण में सदा रक्त वस्त्र पहने। इस प्रकार पूर्वोक्त अन्नदा-कल्प में रक्त-वस्त्र पहनने को बताया है। उच्चाटन में व्याघ्र-चर्म और स्तम्भन में वृक्ष की छाल पहनकर साधक याग-भूमि में बैठे।

नीलादि वस्त्र पहनने में दोष

न वस्त्रों का और न केशों का धुनन करे। नीले और रक्त वस्त्र से स्नान, दान, जप, होम जो भी कर्म द्विज करता है, वे सब निष्फल होते हैं।

कलियुग में सूती वस्त्रादि की प्रशंसा

कलियुग में कपास (रुई) के अर्थात् सूती वस्त्र और पाट के तथा रेशमी वस्त्र प्रशस्त हैं। इन्हें नित्य जल से धोकर शुद्ध कर लेना चाहिए।

सिले हुए वस्त्र से बँध कर्म का निषेध

सुई से बिंधे हुए अर्थात् सिले हुए या कीड़ों द्वारा कटे हुए वस्त्र स्नान का फल नष्ट कर देते हैं। अतः ऐसे वस्त्र निषिद्ध हैं।

द्विजातीय एवं कृमिज वस्त्र से स्नान का निषेध

जो वस्त्र कृमि (कीट) से उत्पन्न हुआ हो, उसे दैव और पितृ कर्मों में उपयोग न करे। कोष्ठज वस्त्र ही प्रशस्त है। कृमिज वस्त्र से जो स्नान करता है, उसके सभी पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

कृमिज श्वेत वस्त्र की प्रशंसा

श्वेत कृमि से उत्पन्न वस्त्र दैव एवं पितृ कर्मों में प्रशस्त है।

उत्तरीय वस्त्र का परिमाण

मत्स्य-सूक्त में—दो सौ सूत्रों का उत्तरीय वस्त्र बनवाना चाहिए। अथवा उसके आधे सूत्रों से काम चलाये। वीर-मित्रोदय में उद्धृत सिद्धान्त शेखर के अनुसार उत्तरीय के तीन प्रकार बताए हैं—१ व्याघ्र-चर्म का २ मृग-चर्म का और ३ तन्तु (सूत) का बना। उसकी चौड़ाई यज्ञ-सूत्र के अनुसार चार अंगुल मात्र रखे।

यज्ञोपवीत-मार्जन के द्रव्य

स्नान के बाद यज्ञोपवीत का मार्जन करना चाहिए। गायत्री तन्त्र, चतुर्थ ब्राह्मण पटल में—यत्न-पूर्वक दही, दूध, घी से मार्जन करे। घी आदि के अभाव में चावल के चूर्ण से, वह भी न हो, तो सरसों के तेल से मार्जन करे। तिल-तैल का उपयोग न करे। द्विज-श्रेष्ठ विल्व (बेल) फल के रस से मार्जन करे, तो सूत्र शुद्ध सत्वात्मक होता है।

यज्ञोपवीत-मार्जन की विधि

बाँएँ कंधे से उतार कर यज्ञोपवीत को बाँएँ अंगूठे पर रखे क्योंकि बाँयाँ अँगूठा बाँएँ कंधे के ही समान है। अतः बाँएँ अँगूठे से सूत्र को पकड़कर उसका मार्जन करे।

कण्ठादि में यज्ञोपवीत पहनने में दोष

कण्ठ में, शिर या दाएँ हाथ में यज्ञोपवीत को करने से शूद्रत्व आता है। इस दोष के होने पर गायत्री मंत्र का अयुत (दस हजार) जप करने से दोष दूर होता है। क्षत्रिय लाल चन्दन के जल से और वैश्य हल्दी के जल से मार्जन करें।

तिलक, उसका फल और धारण मन्त्र

मत्स्य-सूक्त, दशम पटल में—पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठे। तब गोपीचन्दन, रोचना, कुंकुम, मिट्टी, मलयज (चन्दन), तुलसी या विल्व-रस से तिलक लगाए।

योगिनी तन्त्र, तृतीय भाग, नवम पटल में—मलयज गन्ध, गोपी-चन्दन, विल्व-काष्ठ, तुलसी-काष्ठ, पद्म, तमाल या रोचना—इनमें से किसी एक से तिलक लगाए। विल्व-काष्ठ का तिलक उदासीनों (विरक्तों) के लिए उपयुक्त है।

मत्स्य-सूक्त में—मिट्टी के तिलक से मुक्ति, चन्दन से आयुष्य, कुंकुम से कार्य-सिद्धि, रोचना से वशीकरण होता है। जल में स्थित मिट्टी वर्जित है। तट की मिट्टी पुण्य-दायक होती है। खड़े होकर मिट्टी से तिलक न लगाए। गङ्गा-तट की मिट्टी प्रशस्त है।

तिलक लगाते समय निम्न पहला मन्त्र और चन्दन लगाते समय दूसरा मन्त्र पढ़े—

१ केशवानन्त, गोविन्द, वराह, पुरुषोत्तम ! पुण्यं यशस्यमायुष्यं तिलकं मे प्रसीदतु ।
२ कान्तिं लक्ष्मीं धृतिं सौख्यं सौभाग्यमतुलं मम । ददातु चन्दनं नित्यं सततं धारयाम्यहं ।

तिलक-धारण के स्थान

मत्स्य-सूक्त में—पहले ललाट पर, फिर मूर्ध्नि, हृदय, कण्ठ, दोनों कानों, दोनों भुजाओं, भुजा के दोनों मूल भागों, नाभि, पीठ और दोनों पार्श्वों पर क्रमशः तिलक लगाए। इससे सब पापों से मुक्ति मिलती है।

ललाट पर दीप-शिखा के समान, भुजाओं पर विल्व-पत्र के समान, हृदय पर कमलाकार और गले पर चन्द्र-वत् तिलक लगाए।

वैष्णवों के लिए विशेष नियम यह है कि ललाट पर गदा, मूर्ध्नि पर धनुष-बाण, हृदय पर पद्म और भुजाओं पर शङ्ख-चक्र रूप में तिलक अङ्कित करे। शङ्ख-चक्र से अङ्कित विप्र की यदि श्मशान में मृत्यु होती है, तो उसकी वही सद्गति होती है, जो प्रयाग में मरनेवाले को मिलती है।

श्यामा-प्रदीप, द्वितीय परिच्छेद में—यज्ञ के पास तिलक-कर्म न करे। वहाँ मिट्टी या जल का ही उपयोग करे, अन्यथा ऊसर में बीज के समान कोई फल नहीं मिलता।

तिलक न लगाने की निन्दा

मत्स्य-सूक्त में—मस्तक पर तिलक लगाए बिना जो चाण्डाल को देखता है, मल-मूत्र त्याग करता है, उसे पुनः स्नान करना पड़ता है। जल या घड़े में अथवा दर्पण में छाया देखकर यत्नपूर्वक तिलक लगाए। अमावास्या के दिन तिलक न लगाए।

तिलक में अपने देवता के अस्त्र दक्षिण-क्रम से अंकित करे। बाहु, उदर, उत्सङ्ग (क्रोड़) या भाल पर बीज, प्रणव आदि अंकित करे।

ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारण की विधि और फल

राघव भट्ट द्वारा उद्धृत ब्रह्माण्ड-पुराण में—जिसके ललाट पर सौम्य ऊर्ध्व-पुण्ड्र दिखाई देता है, वह चाण्डाल होने पर भी शुद्धात्मा और पूज्य होता है, इसमें सन्देह नहीं। पद्म-पुराण, प्रथम चरण के अनुसार मिट्टी द्वारा अंकित ऊर्ध्व-पुण्ड्र 'सौम्य' होता है। अपवित्र, अनाचारी और मन से पाप करनेवाला भी नित्य ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाने से पवित्र हो जाता है। देवता की प्रसन्नता या रक्षा के लिए नित्य ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण करे। देव-पूजा, होम में सायं प्रातःकाल ध्यान देकर संसार से पार करानेवाले ऊर्ध्व-पुण्ड्र को सदा धारण करे।

स्कन्द-पुराण, कार्तिक प्रसंग में—जिसके ललाट पर मिट्टी का शुभ्र ऊर्ध्व-पुण्ड्र दिखाई देता है, वह चाण्डाल भी विशुद्धात्मा ब्रह्म-वत् होता है। ऊर्ध्व-पुण्ड्र में लक्ष्मी, यश, मुक्ति और साक्षात् हरि विद्यमान हैं।

विशाल, मनोहर ऊर्ध्व-पुण्ड्र के मध्य में लक्ष्मी-सहित विष्णु रहते हैं। अतः जिसके शरीर में वह अंकित है, उसका देह भगवान् के मन्दिर समान है। ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण करनेवाला विप्र सब लोकों में पूजा पाकर अन्त में सुन्दर विमान पर बैठकर विष्णु के परम पद को जाता है। ऐसे विप्र को देखने से पाप छूट जाते हैं। उसके नाम का स्मरण करने, उसकी भक्ति करने से सब प्रकार के दान का फल मिलता है। उसे श्राद्ध में जो भोजन कराता है, उसके कोटि पितर तृप्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण कर जो श्राद्ध करता है, वह कोटि-सहस्र युगों तक वैकुण्ठ में वास करता है। यज्ञ,

दान, तप, पूजा, जप, होमादि ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारणपूर्वक करने से उसका अनन्त पुण्य-फल होता है।

ब्रह्माण्ड-पुराण में—ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारी मनुष्य जहाँ कहीं भी मरता है, चाण्डाल भी हो, तो विमान में बैठकर विष्णु-लोक को जाता है। ऐसा मनुष्य जिसके घर में अन्न खाता है, उसके बीस कुलों का नरक से उद्धार हो जाता है।

पद्म-पुराण में—यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृ-तर्पण—ये सभी ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाए बिना करने से व्यर्थ होते हैं।

उत्तर खण्ड में—ऊर्ध्व-पुण्ड्र से विहीन जो इष्ट-पूर्त्त आदि कर्म करता है, वह सब निष्फल होता है। ऐसा मनुष्य सन्ध्या-कर्मादि जो करता है, वह सब राक्षस कर्म होता है और वह नरक को जाता है। जिन मनुष्यों के शरीर में ऊर्ध्व-पुण्ड्र न हो, वे चाण्डाल-वत् होते हैं। उन्हें देखना भी नहीं चाहिए।

स्कन्द में—जिस मनुष्य के ललाट में ऊर्ध्व-पुण्ड्र न हो, उसे देखकर सूर्य का दर्शन करे।

उत्तर खण्ड में—वैदिक ब्राह्मण को शुभ्र मिट्टी से ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण करना चाहिए। तिरछा पुण्ड्र कभी धारण न करे।

भगवद्-भक्ति-विलास में—ऊर्ध्व-पुण्ड्र के ऊपर जो नराधम त्रिपुण्ड्र लगाता है, वह विष्णु-लोक का भोगकर निश्चय ही नरक को जाता है।

स्कन्द-पुराण में—मृत्यु-सङ्कट होने पर भी तिरछा पुण्ड्र न लगाए और न ही नारायण को छोड़कर अन्य नाम बोले।

शाक्तानन्द-तरङ्गिणी में—ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण कर सन्ध्या करे। वैष्णव-ब्राह्मणों के लिए ऊर्ध्व-पुण्ड्र और अन्य लोगों के लिए त्रिपुण्ड्र की विधि है।

पद्म-पुराण में—जिस विप्र के त्रिपुण्ड्र न लगा हो, उसे देखने या छू लेने पर वस्त्र-सहित स्नान करना चाहिए।

ब्रह्माण्ड-पुराण में ऊर्ध्व-पुण्ड्र बनाने की विधि यह दी है कि दर्पण या जल में देखकर यत्नपूर्वक जो ऊर्ध्व-पुण्ड्र बनाता है, वह परम गति को पाता है। दश अंगुल का उत्तम, नौ अंगुल का मध्यम और आठ अंगुल का अधम होता है। अंगुलि-भेदों से ही इसे बनाना चाहिए, नखों द्वारा स्पर्श न करे।

मत्स्य-सूक्त में लक्षण दिया है कि नासिका से केश तक ऊर्ध्व-पुण्ड्र की विधि है। मध्य में छिद्र रहना चाहिए। यह छिद्र हरि-मन्दिर है।

पद्म-पुराण, उत्तर खण्ड में—एकान्त में अन्तराल-सहित-पुण्ड्र बनाए, जिसकी आकृति हरि-चरण जैसी हो। श्याम वर्ण का शान्ति-कारक, रक्त वश्य-कर, पीला श्री-दायक और श्वेत मोक्ष-प्रद है।

गोल, तिरछा, छिद्र-हीन, छोटा, बहुत बड़ा, कुरूप, भिन्न-मूल, पद-च्युत, अशुभ्र, रूखा एवं अंगुलि से न बना हुआ पुण्ड्र निन्दित है क्योंकि अनिष्ट करता है।

मत्स्य-सूक्त, दशम पटल में—कुश, सुवर्ण, तुलसी, विल्व-काष्ठ या रजत से ही पुण्ड्र बनाए। काष्ठ, लौह, शङ्ख, ताम्र या कांस्य से कभी न बनाए।

उत्तर काण्ड में ऊर्ध्व-पुण्ड्र का आकार बताया है कि अश्वत्थ (पीपल) या वेणु के पत्ते के समान या पद्म-कुद्मल-वत् सुन्दर आकृति होनी चाहिए। नासिका-मूल से लेकर ललाट तक बनाए। नासिका का तीसरा भाग नासिका मूल है, यह भाग मस्तक से वहाँ लगा है, जहाँ से नासिका निकलती है। इसी भाग से प्रारम्भ कर भौंहों के मध्य को अन्तराल बनाते हुए दण्डाकार सुन्दर पुण्ड्र केशों तक बनाए। मध्य

में छिद्र रहे, यही छिद्र हरि-मन्दिर है। इस पुण्ड्र के बाईं ओर ब्रह्मा, दाईं ओर सदाशिव और मध्य में विष्णु को जानना चाहिए। इसी से मध्य में लेप नहीं करना चाहिए।

यजुर्वेदीय हिरण्य-केशीय शाखा में—अपने हरि की पदाक्रान्ति को अङ्कित कर उसके मध्य में छिद्र रख जो ऊर्ध्व-पुण्ड्र को धारण करता है, वह पर-देवता का प्रिय होता है, पुण्यवान् होता है, मुक्ति-भागी होता है।

भगवद्-भक्ति-विलास में उद्धृत स्मृति के अनुसार अनामिका काम-प्रदा, मध्यमा आयुष्करी, अंगुष्ठ पुष्टि-दायक और तर्जनी मोक्ष-साधिनी है। अतः तिलक-रचना में इनका उपयोग करे।

पद्म-पुराण में—पर्वताग्र, नदी (गंगा) तट, बिल्व-मूल, जलाशय, समुद्र-तट, वल्मीक और हरि-क्षेत्र, जहाँ विष्णु का स्नानोदक सदा बहता रहता है—इन स्थानों की मिट्टी पुण्ड्र धारण करने के लिए ग्रहण करे। श्रीरंग, (कावेरी-मध्यस्थ एक क्षेत्र, जो दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है), वेङ्कट-गिरि (तैलंग-देश में शेषांचल नाम से प्रसिद्ध), श्री कूर्म (कलिंग-देश में प्रसिद्ध क्षेत्र), द्वारका, प्रयाग, नारसिंह गिरि, वाराह, तुलसी-वन—इन स्थानों की मिट्टी भक्तिपूर्वक लेकर विष्णु-पाद-जल के साथ शरीर के अंगों में पुण्ड्र बनाने से विष्णु का सायुज्य प्राप्त होता है।

मत्स्य-सूक्त में—विष्णु द्वारा निर्मित गोपी-चन्दन से तिलक लगाने से ब्रह्म-हत्या तक का निवारण हो जाता है। पद्म-पुराण में भी नारद वचन है कि ब्रह्म-हत्या या गो-हत्या जैसे पाप गोपी-चन्दन के सम्पर्क से दूर हो जाते हैं। जो वैष्णव को गोपी-चन्दन का टुकड़ा देता है, उसका शतशः उद्धार हो जाता है।

स्कन्द-पुराण में ध्रुव-वचन है कि शङ्ख-चक्र से अङ्कित शरीर, शिर पर मञ्जरी, गोपी-चन्दन से लिप्त अङ्ग वाले भक्त को यदि देख ले, तो पाप कहाँ ठहर सकते हैं! जिस घर में गोपी-चन्दन, तुलसी, शङ्ख, शालग्राम और श्रीचक्र—ये पाँच विद्यमान हैं, उसे पाप का भय कहाँ!

काशी-खण्ड में—श्री-खण्ड में वह आनन्द कहाँ, स्वर्ण में वह चमक कहाँ, तीर्थ में वह पवित्रता कहा—जो गोपी-चन्दन में है।

गरुड़-पुराण में श्रीनारद-वचन—द्वारका में उत्पन्न मिट्टी को हाथ में लेकर जो ललाट पर नित्य ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाता है, उसके कर्म का फल कोटि गुना बढ़ जाता है। क्रिया-हीन, मन्त्र-हीन, श्रद्धा-हीन, काल-वर्जित व्यक्ति भी ललाट पर गोपी-चन्दन लगाकर उन-उन सभी कर्मों का अक्षय फल पाता है। गोपीचन्द से बने सुन्दर पुण्ड्र को जो द्विज ललाट पर नित्य रात-दिन धारण करता है, वह प्रयाग के माघ-स्नान का पुण्य प्राप्त कर विष्णु-लोक में देव-वत् रहता है। जिस घर में गोपी चन्दन रहता है, लोग ललाट पर उसे धारण करते हैं, उस घर में हरि सदा रहते हैं। कृष्ण-पुरी में उत्पन्न, पवित्र और कलि के पापों को दूर करनेवाले गोपीचन्दन को जो मन्त्र-सहित ललाट पर धारण करता है, यमराज उसके सामने नहीं आते। अन्त समय में जिसके बाहु, ललाट, हृदय और मस्तक पर गोपी-चन्दन रहता है, वह विष्णु-लोक को जाता है, भले ही वह बाल-घात या ब्रह्म-हत्या का दोषी हो। जिसके ललाट पर गोपी-चन्दन रहता है, हरि की कृपा से उसे ग्रह, राक्षस, यक्ष, पिशाच, सर्प, भूत, दानवादि पीड़ा नहीं पहुंचा सकते।

पद्म-पुराण में अम्बरीश के प्रति वचन है कि महा-पाप के क्षय के लिए उन लोगों के दर्शन करो, जो नित्य ललाट पर गोपी-चन्दन का पुण्ड्र धारण करते हैं।

काशी-खण्ड में यम की उक्ति है कि हे दूतो, सुनो। जो मस्तक गोपी-चन्दन द्वारा अङ्कित हो, उसे जलते हुए इन्धन जैसा समझकर दूर से ही छोड़ देना।

भगवद्-भक्ति-विलास में उद्धृत काशी-खण्ड में—इसके बाद उसके ऊपर तुलसी-मूल की मिट्टी से सुन्दर ऊर्ध्व-पुण्ड्र बनाए।

स्कन्द-पुराण में—तुलसी-मूल की मिट्टी लेकर जो ललाट पर पुण्ड्र बनाता है, वह मरने पर मोक्ष पाता है। उसके शरीर को पाप छू नहीं पाते।

गरुड़-पुराण में—जो प्रतिदिन तुलसी की मिट्टी से पुण्ड्र लगाता है, उसके देखने मात्र से लोगों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

तिलक तीन प्रकार का माना गया है—पहले गोपी-चन्दन का तिलक लगाये, फिर उसके ऊपर तुलसी-मूल की मिट्टी से तिलक कर उसके ऊपर विष्णु-निर्माल्य का अनुलेपन करे।

ब्रह्म-पुराण में केशव आदि बारह नामों से बारह अंगों में तिलक लगाने की विधि बताई है।

पद्म-पुराण, उत्तर खण्ड में—१ ललाट में केशव, २ उदर में नारायण, ३ वक्ष में माधव, ४ कण्ठ में गोविन्द, ५ दाएँ कुक्षि में विष्णु, ६ दक्ष बाहु में मधु-सूदन, ७ स्कन्ध में त्रि-विक्रम, ८ बांएँ पार्श्व में वामन, ९ वाम बाहु में श्रीधर, १० कन्धर में हृषीकेश, ११ पृष्ठ में पद्म-नाभ और १२ कटि में दामोदर का न्यास करे। वासुदेव से मूर्धा पर प्रक्षालन-जल छोड़े।

योगिनी-तन्त्र में—मलयज, गोपी-चन्दन, विल्व, तुलसी-काष्ठ, पद्म-कृत, गोरोचन आदि में से किसी एक, दो, तीन या चार को मिलाकर तिलक लगाये।

मत्स्य-सूक्त में—रात्रि में और भोजन करने के बाद तिलक कभी न लगाए।

बह्वृच-परिशिष्ट में—पहले भगवान् के चरण-कमलों में लेपन करे। तब निर्माल्य प्रसाद से अपने सब अंगों का मार्जन करे।

ब्रह्म-पुराण में—शालग्राम शिला में लगे चन्दन को सभी अंगों में लगाए। इससे अत्यन्त शुद्धि होती है।

त्रिपुण्ड्र-धारण की विधि और फल

राघव-भट्ट के अनुसार अग्नि-होत्र से उत्पन्न भस्म उपयोग में लाये। अथवा पृथ्वी से जिसका स्पर्श न हुआ हो, उस गोमय (गोबर) को 'ॐ' से लाकर अपने बांई ओर पात्र में रख प्रणव (ॐ) से संशोधन कर 'अघोर०' इत्यादि मन्त्र से उसे जलाये, 'तत्पुरुष०' मन्त्र से उसे उठाये और 'ईशान०' मन्त्र से भस्म को शुद्ध करे। इस प्रकार संस्कृत भस्म को 'अग्नि०' इत्यादि मन्त्र से मसल कर अंगों को स्पर्श करे। फिर उस भस्म को 'तस्माद् ब्रह्म०' इस यजुर्वेदीय मन्त्र से ग्यारह बार अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर 'ॐ ईशानाय नमः' आदि मंत्रों से अथवा पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय से) मस्तक, अंस-देश, उदर और हृदय में त्रिपुण्ड्र धारण करे। ऐसा करने से साधक साक्षात् शिव-रूप होता है।

वायर्वीय संहिता में—शिवाग्नि, अग्निहोत्र या विवाह-सम्बन्धित होमाग्नि से उत्पन्न भस्म का संग्रह करे। अथवा कपिला गाय के गिरते हुए गोबर को भूमि पर गिरने से पूर्व ही हाथ में लेकर, उसका जो अंश कठिन, पतला, दुर्गन्धित, बासी हो उसे तथा ऊपर और नीचे का अंश छोड़कर शेष गोबर का पिण्ड बना ले। उस पिण्ड को मूल-मन्त्र से शिवाग्नि में छोड़े। फिर बिना पके और अति पके अंश को छोड़कर शुद्ध श्वेत भस्म तैयार कर ले। कालाग्नि-रुद्रोपनिषद् के अनुसार वृष (बैल) के भी गोबर से इसी प्रकार भस्म प्रस्तुत की जा सकती है।

ऊपर उल्लिखित १ वामन, २ अघोर, ३ ईशान और ४ अग्नि इत्यादि मन्त्र निम्न प्रकार हैं—

वामेनेति—ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः। कालाय नमः कल-विकरणाय नमो बल-विकरणाय नमो बल-प्रमथनाय नमः सर्व-भूत-दयनाय नमो मनोन्मनाय नमः।

अघोरेणेति मन्त्रस्तु—ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोर-तरेभ्यः सर्वतः सर्व-सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्र-रूपेभ्यः।

तत्पुरुषेणेति मन्त्रस्तु—ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महा-देवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

ईशानेनेति मन्त्रस्तु—ॐ ईशानः सर्व-विद्यानामीश्वरः सर्व-भूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति-र्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।

अग्निरित्यादि-मन्त्रस्तु –अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्व-हरा इदम्। भस्म, मन एतानि चक्षूंषि तस्माद् व्रतमेतत् पाशुपतं यत्। (भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्)। तस्माद् ब्रह्म तदेतत् पाशुपतं पशुपतं पशु-पाश-विमोक्षाय।

कुल-मूलावतार-कल्पसूत्र, तृतीय काण्ड की टीका में उद्धृत श्रुति—शुद्ध द्रव्य या उक्त आग्नेय भस्म से तीन रेखावाला, अर्द्ध-चन्द्र के समान त्रिपुण्ड्र बनाए।

सनत्कुमार-प्रमाण—ललाट से चक्षु तक और बाद में भौंहों के मध्य में। इस त्रिपुण्ड्र की पहली रेखा आहवनीय, सूर्य, ऋग्वेद, प्रातः सवन एवं महेश्वर-रूप है। दूसरी रेखा सावसथ्य, उकार, यजुर्वेद, सदाशिव-रूप है और तीसरी रेखा गार्हपत्य, परमात्म-ज्ञान-शक्ति-रूप है।

कालाग्नि-रुद्रोपनिषत्

संवर्त्तोऽग्निः ऋषिः, विराड् विश्व-रूपी रुद्रो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीविश्व-रूप-प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः।

अथ कालाग्नि-रुद्रं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ—अधीहि भोस्त्रिपुण्ड्र-विधिं स-तत्त्वं; किं द्रव्यं, किं च स्थानं, कति प्रमाणं, का रेखाः, के मन्त्राः, किं दैवतं, कः कर्त्ता, किं फलमिति।

तं होवाच भगवान् कालाग्नि-रुद्रः—सत्यमुक्तं। यद् द्रव्यं यदाग्नेयं यद् भस्म सद्योजातादि पञ्च-रुद्र-ब्रह्म-मन्त्रैः परिगृह्य अग्निरिति भस्म अनेनाभिमन्त्र्य मानस्तोक इति संक्षुभ्य त्र्यायुषमित्यादिना शिरो-लालाट-स्कन्ध-कण्ठ-हृद्-बाहु-द्वयेषु त्रिभिरायुषैस्त्र्यम्बकैस्तिर्यक् तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत। एतदेव तच्छाम्भवं सर्व-वेदेषु वेद-विद्भिरुक्तं। तत् समाचरन् मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय।

भेदमाललाटादाचक्षुषोराभ्रुवोर्मध्यतः। कर्णादाकर्ण-पर्यन्तं तिर्यक् तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत। या स्यात् प्रथमा रेखा सा गार्हपत्याग्निश्चाकारो भूर्लोक आत्म-क्रिया-शक्तिश्च ऋग्वेदः। प्रथमं सवनं महेश्वरः या स्याद् द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकारः। सत्यमन्तरीक्षमन्तरात्मा चेच्छा - शक्तिर्यजुर्वेदः। मध्यन्दिनं द्वितीय-सवनं सदाशिव-देवतेति। या स्यात् तृतीया रेखा सा आहवनीयोऽग्निर्मकारस्तमो द्यौः परमात्मा ज्ञान-शक्तिः साम-वेदस्तृतीय-सवनं शिव-देवेति।

त्रि-पुण्ड्रकं भस्मना करोति यो विद्वान्, ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थो, यतिर्वा स समस्त-महा-पातकोप-पातकेभ्यः पूतो भवति; सर्वान् वेदान् पठिता भवति; सर्व-तीर्थेषु स्नातो भवति; स सन्ततं सर्व-मन्त्र-जापी भवति। सकल-भोग-भुग्-देहं त्यक्त्वा शिव-सायुज्यमेति, न पुनरावर्तते। स वैष्णवः, शिवः सोऽपि, स च ब्रह्मा प्रजा-पतिः। स मुक्तः सर्व-पापेभ्यो, न पुनर्भवमिष्यते।

इत्यस्ति भगवान् कालाग्नि-रुद्रः पुनराह—अग्निरिति भस्म, जलमिति भस्म, वायुमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, सर्वं विश्वं तदाग्नेयं याज्ञयं, वृष-पुरीष-भस्म तेन त्रि-पुण्ड्रकं तेन तद् विद्वान् किञ्चिद् याज्ञिकं कर्म इत्याह भगवान् भवः। इति कालाग्नि-रुद्रोपनिषत् समाप्ता।

वायवीय संहिता में तेरह स्थानों में त्रिपुण्ड्र लगाने का निर्देश है। यथा—१ ललाट में ब्रह्म, २ हृदय में हव्य-वाहन, ३ नाभि, ४ स्कन्ध, ५ गले में पूषा, ५ दांई बाहु में रुद्र, ६ दांएँ बाहु-मध्य में आदित्य, ७ दांएँ मणि-बन्ध में शशि, ८ बांई बाहु में वाम-देव, ९ बांएँ बाहु-मध्य में प्रभञ्जन, १० बांएँ मणि-बन्ध में आठो वसु, ११ पीठ में हर, १२ ककुदि में शम्भु और १३ मूर्ध्नि में परमात्मा शिव।

अतः कालाग्नि-उपनिषद् और वायवीय संहिता—इनमें से किसी एक के निर्देशानुसार त्रिपुण्ड्र लगाए।

पुरश्चरण-लहरी-तन्त्र, द्वितीय पटल में—जले हुए गोबर की भस्म 'आग्नेय' कहलाती है। षडक्षर मन्त्र से उसका शोधन करे, वेद-मन्त्रों का प्रयोग न करे। शिर, ललाट, स्कन्ध और भौंह—इन स्थानों में मध्यमा, अनामा और अंगुष्ठ द्वारा तिलक लगाए। इस तिलक में तीन रेखाएँ होती हैं। रेखाओं के नौ देवता हैं। पहली रेखा की—पृथिवी, अग्नि, आत्मा, क्रिया-शक्ति, महेश्वर। दूसरी रेखा की—इच्छा-शक्ति, सदाशिव। तीसरी रेखा की—परमात्मा, शिव। इन्हें नित्य नमस्कार कर त्रिपुण्ड्र धारण कर महेश्वर-व्रत रखे, तो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, या संन्यासी कोई भी हो, वह सब पापों से छूटकर सिद्धीश्वर होता है। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और वीर या ब्राह्मण की हत्या जैसे पापों से भी मुक्ति मिलती है। बिना मन्त्र के भी मस्तक पर तिलक लगाने से सभी पापों से छुटकारा मिलता है। जिसके शरीर पर रुद्राक्ष और ललाट पर त्रिपुण्ड्र होता है, वह चाण्डाल होने पर भी सब वर्णों में श्रेष्ठ होता है। ललाट में त्रिपुण्ड्र लगाने से सभी तीर्थों और गङ्गादि पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। सात कोटि महा-मन्त्र हैं, श्री विष्णु के कोटि मन्त्र हैं और श्रीशिव के कोटि मन्त्र हैं, इन सब मन्त्रों के जप का फल त्रिपुण्ड्र के लगाने से मिल जाता है। वंश के सभी मृत व्यक्तियों का उद्धार हो जाता है। अष्टैश्वर्य-गुणों से युक्त होकर दिव्य विमान पर चढ़कर दिव्य स्त्रियों से सेवित होकर विद्याधरों, सिद्धों, गन्धर्वों, इन्द्रादि-लोक-पालों के लोकों में क्रमशः विपुल भोगों को भोगकर वह ब्रह्म-पद को प्राप्त कर विष्णु-लोक में ब्रह्मा के सौ वर्षों की अवधि तक रमण करता है। फिर शिव-लोक में पहुंचकर शिव का सायुज्य प्राप्त कर वह पुनः जन्म नहीं लेता, मुक्त हो जाता है।

त्रिपुण्ड्र न लगाने की निन्दा

शाक्तानन्द-तरङ्गिणी में उद्धृत भविष्य पुराण में—त्रिपुण्ड्र के बिना जो भी वैदिक क्रिया की जाती है, वह निष्फल होती है।

श्यामा प्रदीप में उक्त कथन स्कन्द-पुराण का बताया है।

कूर्म-पुराण में—वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर कोई हो, त्रिपुण्ड्र के बिना जो पूजा करता है, वह अधोगति को प्राप्त करता है।

शिव-धर्म में---श्वेत भस्म से ललाट पर त्रिपुण्ड्र बनाने से साधक सब पापों से छूटकर शिव-लोक में स्थान पाता है। 'भस्म' लक्षण मात्र है, अन्य द्रव्य से भी त्रिपुण्ड्र बना सकते हैं। सदा यज्ञ-भस्म से त्रि-पुण्ड्र लगाए। उसके अभाव में चंदन, मिट्टी या जल से---ऐसा भविष्य-पुराण का वचन है।

त्रिपुण्ड्र के बिना किए गए सभी कर्म व्यर्थ होते हैं। छिद्र-सहित त्रिपुण्ड्र लगावे क्योंकि धर्मार्थ-काम और मोक्ष छिद्र में चले जाते हैं। यह निषेध ऊर्ध्व-पुण्ड्र के ऊपर त्रिपुण्ड्र लगाने की विधि के अनुसार है। ऊर्ध्व-पुण्ड्र और त्रिपुण्ड्र को छिद्र-सहित बनाने का जो निषेध है, वह वैधेतर हेतु है। शैवों को ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाने के बाद भस्म द्वारा त्रिपुण्ड्र भी लगाना चाहिए क्योंकि राघव भट्ट के अनुसार द्विजों के लिए ऊर्ध्व-पुण्ड्र आवश्यक है।

शक्ति-तिलक की विधि

शाक्तानन्द-तरङ्गिणी में उद्धृत गौतमीय में---रक्त गंध या चंदन से तिलक लगाए। मस्तक पर देवी का अस्त्र अर्थात् इष्ट देवता का बीज अंकित कर हृदय पर तारा बीज (स्त्रीं) लिखे।

अन्नदा-कल्प, पञ्चम पटल में—हाथ-पैरों को धोकर दो रक्त-वस्त्र धारण कर बिन्दु-सहित अर्द्ध-चन्द्रात्मक सुन्दर रक्त चन्दन या कुंकुम से तिलक लगाए। तीन रेखाएँ सिन्दूर-बिन्दु से युक्त बनाए। देवी-चरण-कमलों का ध्यान करते हुए मूल-मंत्र से साधक को तिलक लगाना चाहिए। इससे वह दुर्गा की पूजा का अधिकारी होकर शिव-स्वरूप होता है।

कृष्णार्चन-चन्द्रिका में उद्धृत मालिनी-विजय में—मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्रात्मक तीन रेखाएँ विद्युत् जैसी उज्ज्वल बनाकर उनके मध्य में दोनों भौंहों के बीच में अरुण सूर्य की किरणों की आभा वाला रक्त-बिन्दु अङ्कित करे। हृदय के मध्य में श्वेत पद्म-रूप चन्द्रमा के समान, दोनों भुजाओं पर वीरण-पत्र के आकार का और अन्य स्थानों में बिन्दु लगाकर जो तिलक की रचना करता है, वह विश्वेश्वर जैसा होता है।

अन्नदा-कल्प—जल में यदि सन्ध्यादि कर्म करे, तो याग-मण्डप (पूजा-गृह) में आने के बाद बैठकर तिलक लगाना चाहिए।

चौथा परिच्छेद

सन्ध्या-विधि से गन्धादि-पात्र स्थापन तक के कर्म

सन्ध्या की विधि

वैदिक सन्ध्या के बाद तान्त्रिक-सन्ध्या करनी चाहिए। पुरश्चरण-रसोल्लास, प्रथम पटल—प्रातःस्नान कर सन्ध्योपासन-पूर्वक गायत्री का जप करे। तब तान्त्रिक सन्ध्या कर तान्त्रिक गायत्री का जप करे। फिर सूर्य को अर्घ्य देकर पूजा करने के लिए गृह में आए।

वृहन्नील तन्त्र, प्रथम पटल—पहले वैदिक सन्ध्या करे। तब आगमोक्त सन्ध्या करे। ऐसा करने से वीर साधक कोटि कुलों का उद्धार करता है। इन तीन सन्ध्याओं से दिन-रात की वन्दना सम्पन्न होती है।

गन्धर्व तन्त्र, षष्ठ पटल—पवित्र स्थान में बैठकर तीन तत्त्वों से आचमन करे। फिर तीन प्राणायाम तीन बीजों द्वारा सविधि करे। बाँएँ हाथ में जल लेकर गिरती हुई बूँदों द्वारा मूल-मन्त्र का स्मरण करते हुए सिर पर सात बार प्रोक्षण करे। शेष जल को दाएँ हाथ में लेकर नाक से स्पर्श कराकर अघमर्षण करे। यथा—इड़ा से उसे खींचकर देह के भीतर के पापों को धोने से उस जल को काला हुआ समझे और बाँईं नाड़ी से बाहर निकाल कर दाँएँ हाथ में उसे पाप-रूप मानते हुए अपने सामने कल्पित वज्र-पाषाण पर अस्त्र मन्त्र (फट्) द्वारा पटक दे। इस प्रकार अघमर्षण कर पुनः आचमन करे। तब विधिपूर्वक सिर का निम्न मन्त्र से अभिसिञ्चन करे—

ॐ आपो देवी रसोऽमृतं पूतं ब्रह्म पुनीमहे।

अब मार्तण्ड-भैरव के प्रति जलाञ्जलियाँ भूमि पर प्रदान कर भुजाओं को ऊपर उठाकर निम्न मन्त्र से सूर्यदेव की प्रार्थना करे—

ॐ उदुत्यं जात-वेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यं।

यह सन्ध्या-विधि गौड़देश में प्रचलित नहीं है। उसका वर्णन तोड़ल तन्त्र, तृतीय पटल में है, यथा—आत्म, विद्या और शिव तत्त्वों से आचमन करे। मन्त्र के आदि में प्रणव (ॐ), अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) रहे। 'ॐ आत्म-तत्त्वाय स्वाहा' इत्यादि। 'ॐ गङ्गे च०' इत्यादि से तीर्थों का आवाहन करे। मूलमन्त्र से तीन बार भूमि पर जल छोड़े। उसी जल से सात बार अपना अभिषेक करे। तब अङ्ग-न्यास कर बाँएँ हाथ में गगन, वायु, वरुण, भूमि और वह्नि-बीजों (हं, यं, वं, लं, रं) का तीन बार जप करे। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से मूल-मन्त्र का उच्चारण कर तत्त्व-मुद्रा से सात बार अपना अभिषेक करने से सब पापों से छुटकारा मिलता है। शेष जल को दाँएँ हाथ में लेकर इड़ा द्वारा जल को देह के भीतर ले जाकर प्रक्षालन करे। फिर उस जल को पिङ्गला से बाहर निकाले। प्रक्षालन-क्रिया से काले हुए उस जल को पाप-रूप समझे और उसे अपने सामने वज्र-शिला पर 'फट्' मन्त्र से पटक दे। फिर हाथ धोकर, आचमन कर, सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करे। तब गायत्री का पाठ कर तीन बार जल ऊपर की ओर फेंके। फिर गायत्री का जप करे। तब अङ्ग-न्यास कर, आचमन-पूर्वक इष्ट-देवी का ध्यान सूर्य-मण्डल में करे। पुनः प्राणायाम आदि कर मूल-मन्त्र का १०८ बार जप करे।

कल्प-सूत्र-टीका, तृतीय काण्ड में उद्धृत लक्ष्मी-कुलार्णव—जो सन्ध्या नहीं करता, उसे दीक्षा का फल नहीं मिलता।

नवरत्नेश्वर—वैदिकी और तान्त्रिकी सन्ध्या को क्रमानुसार करना चाहिए।

महा-निर्वाण-तन्त्र, पञ्चम उल्लास—(कृपया देखें 'हिन्दी महानिर्वाण तन्त्र', पृष्ठ २२-२३)

वृहन्नील तन्त्र, प्रथम पटल—द्वादशी आदि अशौच समयों में भी सन्ध्या करनी चाहिए। न करने से पाप होता है।

उल्लेखनीय है कि 'वैदिकी सन्ध्या एवं तान्त्रिकी सन्ध्या क्रमानुसार करें' ऐसा वचन तन्त्रसार में होने से कुछ का मत है कि जब वैदिकी सन्ध्या न होगी, तो तान्त्रिकी सन्ध्या भी न होगी क्योंकि दोनों को क्रम से करने का निर्देश है। किन्तु यह मत ठीक नहीं है क्योंकि 'अशौच' वैदिक कर्मों के लिए ही विहित है, तान्त्रिक कर्मों के लिए नहीं। अतः अशौच में भी तान्त्रिकी सन्ध्या कर्तव्य है।

विश्वसार तन्त्र, द्वितीय पटल में—महा-गुरु की मृत्यु आदि होने पर भी पूजा में व्यतिक्रम न करे। मोह-वश या दैवयोग से यदि कोई कभी पूजा नहीं करता, तो उसका सर्वनाश होता है, ऐसा सदा-शिव का वचन है। अतः सदा नित्य पूजा करे।

कामद तन्त्र, नवम पटल—श्री काली के उपासक सदैव शुद्ध रहते हैं। जन्म, मरण या अन्य अशौच उन्हें बाधा नहीं देते। गंगा के समान उनमें निरन्तर पवित्रता रहती है, फिर अशौच कैसा ? काली से सम्बन्धित पूजा, जप, होम, दानादि अशौच में भी त्याज्य नहीं हैं। इस प्रकार शाक्त को सभी कर्म सदैव करने चाहिए क्योंकि वह सर्वदा परम शुद्ध ही रहता है।

ऊपर के वचन में 'श्री काली' से तात्पर्य सभी शक्ति-देवताओं से है।

योगियों की सन्ध्या-विधि

कल्प-सूत्र-टीका, तृतीय काण्ड में—जो गुरु-रूपिणी कुण्डलिनी-शक्ति मृणाल-सूत्र के अन्दर से जाती है, वह स्व-प्रकाशा है और कुलाकुल के सामरस्य की भावना द्वारा उसका अन्तःकरण में ध्यान किया जाता है। मध्याह्न-काल में उसे तरुण अङ्गों वाली, अति तेजस्विनी, कामराज-रूपिणी, मूलाधार से ब्रह्म-रन्ध्र तक और ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक व्याप्त ध्यान करे। कुलाकुल-योग द्वारा उसे श्वेत-वर्णा, शक्ति-बीज-स्वरूपा, मृणाल-तन्तु-निभा चिन्तन करे। अर्ध-रात्रि में परापर-कुण्डलिनी-रूपा को पद्मराग-वर्णा, मूलाधार से हृदय तक वाग्भव-बीज-रूपिणी, हृदय से भ्रूमध्य तक काम-बीज-रूपा और भ्रू-मध्य से ब्रह्म-रन्ध्र तक शक्ति-बीज-रूपिणी ध्यान करे।

उदयाकर-पद्धति—आद्या मृणाल-सूत्र की आभावाली, मध्यमा पीत-रक्त-वर्णा, उनके अन्तर्गता शक्ति श्वेत-वर्णा और सन्ध्या उभय-रूपा है।

योगियों की तर्पण-विधि

मूलाधार से सोम-सूर्य-अग्नि-रूपिणी कुण्डलिनी को उठाकर परविन्दु का भेदन करे और उससे उत्पन्न अमृत से अपने इष्ट-देवता का तर्पण करे।

नव-चक्रेश्वर—चन्द्रार्काग्नि के संघर्षण से जो परामृत निकलता है, उसी दिव्य अमृत से परा-सुन्दरी का तर्पण करना चाहिए।

योगियों की अन्तर्याग-रूप सूर्य-पूजा

मूलाधार से कुल-कुण्डलिनी को उठाकर हृदय-स्थित अर्क (सूर्य) मण्डल में ले जाये और उसकी कर्णिका में सुधा-धारा से मूल-मन्त्र का स्मरण करते हुए उसे सिञ्चित करे। यही योगियों का अन्तर्याग है।

कौलों की सन्ध्या-विधि

गन्धर्व तन्त्र, षष्ठ पटल—ध्यान-परायण होकर सदा विधिपूर्वक आत्मा का ध्यान करे। देवता-भेद से यह श्रेष्ठ मानसी सन्ध्या है। जिस काल में शिव और शक्ति का समायोग होता है, वही कुल-निष्ठ साधकों की सन्ध्या है।

भूत-शुद्धि तन्त्र, प्रथम पटल—जिस काल में शिव और शक्ति का समायोग होता है, वही कुल-साधुओं की सन्ध्या है।

वैदिक सन्ध्या की विधि 'ब्राह्मण-सर्वस्व' आदि ग्रन्थों में देखें। केवल मार्जन के सम्बन्ध में निर्वाण तन्त्र, तृतीय पटल में विशेष विवरण है। यथा—

वैदिक आपो-मार्जन की विधि

१ भूमि, २ शिर, ३ आकाश, ४ आकाश, ५ भूमि, ६ मस्तक, ७ मूर्ध्नि, ८ भूमि और ९ आकाश —इस क्रम से आपोमार्जन (जल द्वारा सिञ्चन) करना चाहिए। यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का यही क्रम है। ऋग्वेद का क्रम है—१ शून्य, २ शिर, ३ आकाश, ४ भूमि, ५ शून्य, ६ शिर, ७ भूमि, ८ शून्य और ९ आकाश। आपोहिष्ठा-मन्त्र के नौ अष्टाक्षर-मन्त्रों द्वारा अपने वेद के क्रम से ही आपोमार्जन करना चाहिए। इससे सभी पापों का नाश होता है। क्रम के अनुसार मार्जन न करने से पद-पद पर ब्रह्म-हत्या जैसा दोष लगता है। मार्जन के बाद स्तुति और कवच का पाठ कर प्रणाम करे।

गायत्री की आराधना आदि

निर्वाण तन्त्र, तृतीय ब्राह्मण-पटल—चारों वेदों द्वारा पूजिता गायत्री 'वेद-माता' नाम से विख्यात है, जो त्रिवर्गों की फल-दायिनी है। हालाहल (ॐ) का उद्धार कर गायत्री को जानना चाहिए। उसके जप से मुक्ति मिलती है, इसमें सन्देह नहीं। अन्त के दो यकारों के स्थान में जो 'य' इस प्रकार उच्चारण करता है, वह चाण्डाल-स्वरूप होता है और उसे ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। सावित्री परमा विद्या है, तीनों लोकों में दुर्लभ है। इसे ग्रहण करने मात्र से साधक ब्रह्म-रूप होता है, इसमें सन्देह नहीं।

गायत्री-तन्त्र, प्रथम ब्राह्मण-पटल—ब्राह्मणों के लिए तीन प्रणवों (ॐ) से युक्त और क्षत्रियादि के लिए दो प्रणवों से युक्त गायत्री प्रशस्त है।

द्वितीय ब्राह्मण-पटल—तीन प्रणवों से युक्त गायत्री का जो जप करता है, वही गायत्री का फल पाता है क्योंकि कलियुग में विद्या हो चाहे उप-विद्या—प्रणवों से पुटित करके जप करने से ही सिद्धि मिलती है अन्यथा जप निष्फल होता है।

राघव भट्ट—प्रणव से ब्रह्म का प्रतिपादन होता है, व्याहृतियों से भी ब्रह्म का ही प्रतिपादन होता है। १ 'भूः' का अर्थ है सत्, २ सबकी भावना होने से या सबका प्रकाशन होने से 'भुवः' चिद्-रूप है। ३ सबको प्रेरणा देने से 'स्वः', ४ तेज-रूप तथा पूजनीय होने से 'महः', ५ सबको उत्पन्न करने से 'जनः', ६ ज्ञान-रूप तथा सबको तापित करने से 'तपः', ७ श्रेष्ठ, सर्वात्मक और अनन्त ज्ञान-रूप होने से 'सत्यं' —इस प्रकार सात व्याहृतियों द्वारा पर-ब्रह्म का ही कथन है। प्रणव (ॐ) के साथ इनका आन्तरिक सम्बन्ध है। क्योंकि प्रणव की सात मात्रायें ही सात व्याहृतियाँ हैं। अथवा 'भूः' आदि सात लोक प्रणव द्वारा वाच्य ब्रह्म के रूप हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है, यही तात्पर्य है।

'तत्' शब्द से ब्रह्म को बताया है। 'ॐ तत् सद्'—से यह निर्देश है कि ब्रह्म त्रिविध है। सारे प्रपञ्च का उपदेशक होने से 'सवितुः', परमानन्द-रूप, सर्वश्रेष्ठ और सबके द्वारा सेवनीय होने से 'वरेण्य',

पापों का नाश करने और भक्तों को अभय देने से 'भर्गः', सबको प्रकाशित करने से 'देवस्य', ब्रह्म का हम ध्यान करते हैं अर्थात् 'धीमहि'; 'नो' अर्थात् हमारी 'धियः' अर्थात् बुद्धि को, 'यः प्रचोदयात्'—जो प्रेरित करता है।

इस प्रकार इस मन्त्र द्वारा सबके अन्तःकरण के प्रकाशक, सर्व-साक्षी, परमात्मा का कथन होता है। व्याप्त करता है—'आपः', सबका प्रकाशक-'ज्योतिः'। अथवा 'आपो ज्योती रस' से सोमाग्नि-तेज का तात्पर्य है। उसी का स्वरूप 'जगत्' है। अकल्याण को दूर करने से 'अमृतं', वृहत् होने से 'ब्रह्म' और ज्ञानानन्द-लक्षणवाला होने से 'सत्य' है।

'भूर्भुवः स्वः' पद से 'सोऽहं' का तात्पर्य है। इस प्रकार 'सर्वात्मकं ब्रह्म' का बोधक गायत्री-मन्त्र है। 'प्रणवाद्या' का सम्बन्ध व्याहृति से है। 'तत्' शब्द के आदि में, अर्थात् उसके पूर्व वह सम्बद्ध है। यथा—

'ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं' इसके बाद 'तत्-सवितुः' यह ऋचा और इसके अन्त में 'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिदं शिवः।'

तन्त्रान्तर में इस मन्त्र के बीजादि बताए हैं—'रे' बीजं, 'य' शक्तिः, 'नी' कीलकं। गायत्री त्रिपदात्मिका है।

दो चरणों की सन्धि से चार अक्षरों का 'चतुष्क' बनता है। अन्यत्र एक-एक अक्षर लेकर चौबीस अक्षरों से न्यास करने का निर्देश है। प्रत्येक अक्षर के ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान बताए गए हैं। यथा—सभी अक्षरों के ऋषि 'प्रजा-पति' हैं। विनियोग और अङ्ग-न्यास में छन्द 'गायत्री' है। अक्षरों के देवता क्रमशः ये हैं— १ अग्नि, २ वायु, ३ सूर्य, ४ विद्युत्, ५ यम, ६ वरुण, ७ बृहस्पति, ८ पर्जन्य, ९ इन्द्र, १० गन्धर्व, ११ पूषा, १२ शिव, १३ त्वष्टा, १४ ब्रह्मा, १५ विष्णु। जप-काल में इनका स्मरण करने से सायुज्य मुक्ति मिलती है।

तत्—चम्पक पुष्प-वत् पीला, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक, शत-दल-कमल पर आसीन।
स—अतसी-पुष्प-वत् श्याम-वर्ण, पद्म के मध्य में स्थित, सौम्य और पाप-नाशक।
वि—कपिल-वर्ण, कमल के आसन पर विराजमान, महा-पाप-नाशक।
तु—इन्द्र-नील के समान, सर्व-पापों एवं ग्रह-बाधा से उत्पन्न रोगों का नाशक।
वं—अग्नि की दीप्ति के समान, भ्रूण-हत्या जैसे पापों को तुरन्त नष्ट करनेवाला।
रे—स्फटिक-वत् निर्मल, अगम्या-गमन जैसे पापों का नाशक।
णं—स्फटिक-वत्, अभक्ष्य-भक्षण जैसे पापों का नाशक।
यं—तारक (तारों) के समान आभा, चन्द्र से विभूषित, योगियों को वर-दाता और ब्रह्म-हत्या का विनाशक।
भ—नील मेघ के समान कृष्ण-वर्ण, सब पापों का नाशक।
र्गो—रक्त-वर्ण, कमलासन पर विराजमान, गोहत्या-जैसे पापों का विनाशक।
दे—रक्त-वर्ण, कमलासन पर विराजमान, स्त्री-हत्या जैसे पापों का विनाशक।
व—जाती-पुष्प के समान उज्ज्वल, गुरु-हत्या जैसे पापों का विनाशक।
स्य—सुवर्ण-वत् पीत-वर्ण, मन द्वारा चिन्तित पापों का विनाशक।
धी—कुन्द-पुष्प-वत् श्वेत-वर्ण, पितृ-मातृ-बध जैसे पापों का विनाशक।

म—पद्म-राग-वत् आभावाला, पूर्व-जन्म के पापों का विनाशक।
हि—शङ्ख वर्ण, पूर्ण-चन्द्र के समान आभा, सम्पूर्ण पापों का विनाशक।
धि—पाण्डु-वर्ण, पद्म के ऊपर विराजमान, प्रतिग्रह (दान) के पापों का विनाशक।
यो—इन्द्र-गोप के समान रक्त-वर्ण, प्राणि-बध जैसे पापों का विनाशक।
यो—रक्त-वर्ण, सब पापों का विनाशक।
नः—उदयकालीन सूर्य के समान आभा, पूर्व-मुख, परम पद को प्राप्त करानेवाला।
प्र—नील-कमल जैसा श्याम-वर्ण, दक्षिणायन, ऐश्वर-पद का दाता।
चो—गोरोचन के समान पीत-वर्ण, चतुर्मुख, वैष्णव-पद का दाता।
द—इन्दु के समान शुक्ल-वर्ण, पश्चिम-पद का दाता।
यात्—शिव-स्वरूप, चतुर्मुख, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र के समान प्रत्यक्ष फल-दायक।

इस प्रकार ध्यान कर जो जप और होम करता है, उसे सूतक का दोष नहीं लगता। जो गायत्री को इस प्रकार नहीं जानता, उसे मृत्यु-जन्य सूतक का सामना करना पड़ता है। साथ ही उसे दान, यज्ञ, तीर्थ-दर्शनादि का फल नहीं मिलता क्योंकि उसका सूतक-दोष दूर नहीं होता।

गायत्री तन्त्र के अनुसार 'वर्ण-कल्प' निम्न प्रकार है—

तत्—चम्पक-पुष्प के समान पीत और ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक, स—श्याम-वर्ण, वि—कपिल, तु—इन्द्र-नील जैसा, र्व—अग्नि-वत्, रे—अग्नि-वत्, णि—रक्त, यं—धूम्र, भ—कृष्ण, र्गो—रक्त, दे—श्यामल, व—शुक्ल, स्य—नील, धी—कुन्द-पुष्प-वत्, म—शुक्ल, हि—चन्द्र-वत्, धि—पीत, यो—तड़ित्-समान, यो—धूम्र, वायु-बीज जो सब पापों का शोषक है, न—तपे हुए स्वर्ण-समान 'मुख' कहा गया है, :—नकार से लगे हुए इन दो बिन्दुओं में से ऊपर का बिन्दु रक्त-वर्ण और नीचे का श्याम-वर्ण है, प्र—नील कमल के समान श्याम और 'दक्षिणामुख', चो—गोरोचन के समान पीत और सौम्य 'पश्चिम मुख', द—शङ्ख के समान शुक्ल-वर्ण और 'चतुरामुख', यात्—मूर्धा और 'ऊर्ध्व-मुख', ब्रह्म-मन्दिर।

गायत्री के वर्णों के पूर्वोक्त ध्यानों में जहाँ विशेष वर्ण का निर्देश है, वह आम्नाय-भेद के कारण है।

गायत्री का पूजा-यन्त्र

पहले 'त्रिकोण' की रचना कर उसके बाहर 'षट्-कोण' बनाए। फिर 'वृत्त' और 'अष्ट-दल-पद्म' बनाकर उनके बाहर चार द्वारों से युक्त 'चतुरस्र' की रचना करे। इसे 'सावित्री-यन्त्र' कहते हैं।

शारदातिलक—त्रिकोण से उज्ज्वल कर्णिका वाले मण्डल की रचना करे। यहाँ 'मण्डल' से आशय है 'सर्वतोभद्र मण्डल' का, जिसकी कर्णिका में 'त्रिकोण' की रचना करे।

गायत्री के न्यासादिक

शारदातिलक, एक-विंशति पटल—प्रणव (ॐ) के पाँच ऋषि हैं। १ जमदग्नि, २ भरद्वाज, ३ भृगु, ४ गौतम, ५ कश्यप। व्याहृतियों के दो ऋषि हैं : १ विश्वामित्र, २ वशिष्ठ। इनके छन्द क्रमशः हैं—१ गायत्री, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टुप्, ४ वृहती, ५ पंक्ति और १ त्रिष्टुप्, २ जगती। देवता क्रमशः—१ सप्तार्चि, २ अनिल, ३ सूर्य, ४ वाक्पति, ५ वरुण और १ वृष, २ विश्वेदेव।

गायत्री के मुनि 'विश्वामित्र', छन्द 'गायत्री', देवता 'सविता' हैं।

गायत्री के शिर (ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्) के मुनि 'ब्रह्मा', छन्द 'देव्यादिक', देवता 'गायत्री परमात्मा' हैं।

'भूः' आदि सात व्याहृतियों का न्यास क्रमशः हृदय, मुख, अंस-युग्म, उरु-युग्म और जठर में कर शरीर में गायत्री के वर्णों का न्यास करे। यथा—दोनों पैरों की चारों सन्धियों में, ध्वज, नाभि, हृदय और कण्ठ में, दोनों भुजाओं की चारों सन्धियों में, मुख, नासिका, कपोल, नेत्र, कर्ण, भ्रू और मस्तक में। फिर पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, सम्मुख और ऊर्ध्व मुखों में। इन स्थानों में दश पदों का न्यास करे—शिर, भ्रू-मध्य, हृदय, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु-द्वय, पाद-द्वय। गायत्री के शिर का न्यास शिर में करे।

गायत्री के षडंग-न्यासादि

निर्वाण तन्त्र—ॐ ॐ हृदयाय नमः। भूः शिरसे स्वाहा। भुवः शिखायै वषट्। स्वः कवचाय हुं। भूर्भुवः स्वः नेत्र-त्रयाय वौषट्। स्वः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

शारदातिलक—ब्रह्मणे हृदयाय नमः। विष्णवे शिरसे स्वाहा। रुद्राय शिखायै वषट्। ईश्वराय कवचाय हुं। सदाशिवाय नेत्र-त्रयाय वौषट्। सर्वात्मने करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

गायत्री के ध्यान

ध्यान करके जप करना चाहिए। यथा, निर्वाण तन्त्र—

श्वेत-वर्णा समुद्दिष्टा कौशेय-वसना तथा। श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता।
आदित्य-मण्डलान्तःस्था ब्रह्म-लोक-गताथवा। अक्ष-सूत्र-धरा देवी पद्मासन-गता तथा॥

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम-नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देव-यजनमसि। गायत्र्यसि एक-पदी द्वि-पदी त्रि-पदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पराय परो रजसे।

शारदातिलक के अनुसार ध्यान—

मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील-धवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दु-निबद्ध-रत्न-मुकुटां तत्वार्थ-वर्णात्मिकां।
सावित्रीं वरदाभयांकुश-कशां शुभ्रं कपालं गुणं, शङ्खं चक्रमथाऽरविन्द-युगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

गायत्री तन्त्र, प्रथम ब्राह्मण-पटल के अनुसार ध्यान—

चतुर्भुजां शशि-कलां जटा-जूट-समन्वितां। ऋक्-साम-यजुषां नाथां प्रफुल्ल-कमलेक्षणां।
पञ्चाशद्-वर्ण-ग्रथित-माला-द्योतित हृत्-स्थलां। अनेक-रत्न-निर्माण-कण्ठ-देश - विराजितां।
दिव्य-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं शुक्ल-वस्त्र-परिष्कृतां। शुक्ल-पद्म-समासीनां शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिणीं।
ब्रह्मादि-देवता-वृन्दैः संस्तुतां नित्य-नूतनां।

गायत्री-पूजा-विधि

विनियोग—अस्याग्नि-मुखी - गायत्र्याः पर-ब्रह्म ऋषिः। ऋग्-यजुः-सामाथर्वच्छन्दः। सविता देवता। परंब्रह्म-मातुर्न्यासे विनियोगः।

पैरों से लेकर मस्तक तक न्यास करे। 'न्यास' किए बिना जो जप करता है, उसे फल नहीं मिलता। 'मुद्रा' के बिना न्यास करना निष्फल होता है। यति (संन्यासी) पाँच मुद्राओं से और गृहस्थ तत्त्व-मुद्रा से तीनों सन्ध्याओं में यत्नपूर्वक न्यास करे। पाँच मुद्राएँ ये हैं—१ कनिष्ठा + अनामा + अंगुष्ठ, २ अंगुष्ठ + तर्जनी, ३ अंगुष्ठ + मध्यमा, ४ अंगुष्ठ + अनामा और ५ कनिष्ठा + अंगुष्ठ।

पैरों से मस्तक तक 'भूर्भुवः स्वः' का न्यास करे। क्रमशः सात वार न्यास करे। पादांगुष्ठ में 'तत्', गुल्फों के मध्य में 'स', जंघाओं में 'वि', जानुओं में 'तु', उरुओं में 'र्व', गुह्य में 'रे', अण्डकोशों में 'णि',

कटि में 'यं', नाभि में 'भ', जठर में 'गों', स्तनों में 'दे', हृदय में 'व', कण्ठ में 'स्य', मुख-मण्डल में 'धी', तालु में 'म', नासाग्र में 'हि', नेत्रों में 'धि', भ्रू-मध्य में 'यो', ललाट में 'यो', मुख में 'नः', दक्षिणामुख में 'प्र', पश्चिम-मुख में 'चो', उत्तर-मुख में 'द', और मूर्ध्नि में 'यात्' का न्यास करे।

गायत्री तन्त्र, दशम ब्राह्मण पटल—गायत्री-पूजा के बिना शिव, शक्ति, विष्णु आदि की पूजा निष्फल होती है। पूजा-मण्डप में आकर गायत्री से आचमन करे। फिर पूजा-स्थान में गायत्री के बीज का न्यास करे। कुशासन पर बैठकर पूरकादि क्रम से प्राणायाम करे। तब पूर्वोक्त क्रम से सामान्यार्घ्य-स्थापन करे। एक बार गायत्री का उच्चारण कर ताम्र-पात्र में जल डाले। उसमें तीर्थों का आवाहन कर गायत्री-मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे। फिर धेनु-मुद्रा से प्रथम अष्टाक्षरों द्वारा अमृतीकरण, द्वितीय अष्टाक्षरों द्वारा प्रशान्ति हेतु वीक्षण और तृतीय अष्टाक्षरों द्वारा आत्म-विशोधन करे। इस विधि से सृष्टि-स्थिति-लयात्मक पूजन करने से ही फल मिलता है।

यन्त्र, न्यास, ध्यानादि का उल्लेख हो चुका है। अब दीप्तादि नव शक्तियों से सौर पीठ का यजन करे। चतुर्दश-पटल में सर्वतोभद्र-मण्डल में ये शक्तियाँ उल्लिखित हैं। यथा—१ दीप्ता, २ सूक्ष्मा, ३ जया, ४ भद्रा, ५ विभूति, ६ विमला, ७ अघोरा, ८ विद्युता और ९ सर्वतोमुखी।

'सौर-पीठ' का वर्णन सूर्य-प्रकरण में दिया है। मूल-मन्त्र द्वारा प्रतिमा में देवी का पूजन करे।

निर्वाण-तन्त्र—जीव-न्यासादि कर देवी की पूजा करे। हालाहल (ॐ) आदि सम्पूर्ण मन्त्र का उच्चारण कर 'पाद्यं सावित्र्यै समर्पयामि नमः' इत्यादि क्रम से यथा-शक्ति पूजा करे।

शारदातिलक—तीन कोणों में ब्राह्मी आदि शक्तियों की पूजा करे। तब क्रमशः उषादि के सहित आदित्यादि की पूजा करे (सूर्य-प्रकरण से उषादि और आदित्यादि को ज्ञात करे)। फिर केशरों में यथा-विधि षडङ्गों की पूजा करे। तब क्रमशः १ प्रह्लादिनी, २ प्रभा, ३ नित्या, ४ विश्वम्भरा, ५ विलासिनी, ६ प्रभावती, ७ जया, ८ शान्ता (शान्ति), ९ कान्ति, १० दुर्गा, ११ सरस्वती, १२ विश्व-रूपा, १३ विशाला, १४ ईशा, १५ व्यापिनी, १६ विमला, १७ तमोपहारिणी, १८ सूक्ष्मा, १९ विश्व-योनि, २० जयावहा, २१ पद्मालया, २२ परा, २३ शोभा, २४ पद्म-रूपा—इन २४ शक्तियों की ८-८ के क्रम से तीन-तीन आवरणों में पूजा करे। इनके बाहर ब्राह्मी आदि की पूजा अरुण के साथ करे। फिर ग्रहों और आयुधों सहित इन्द्रादि की पूजा करे। इस प्रकार १० आवरणों में देवी की पूजा करने से धर्मार्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है।

निर्वाण तन्त्र—द्रव्य के अभाव में जलात्मक पाद्यादि उपचारों से देवी गायत्री की पूजा कर जप करे।

गायत्री-जप का फल

गायत्री का १० बार जप करने से इस जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। ११० बार जपने से पूर्व-जन्म के और १००० जप से तीन जन्मों के पाप नष्ट होते हैं।

गायत्री-तन्त्र—गायत्री से पुटित 'इष्ट-मन्त्र' का १०० बार और 'इष्ट-मन्त्र' से पुटित गायत्री का १०० बार जप करे, तो यह उत्तम 'आधाराधेय' जप होता है। बिना आधार के आधेय की सिद्धि नहीं होती और आधेय के बिना आधार की सिद्धि नहीं होती। अतः 'आधाराधेय'-क्रम से विष्णु, सूर्य, गणपति आदि सभी मन्त्रों के जप का विधान है। इस प्रकार एक लक्ष जप करने से अंकुर उत्पन्न होता है।

ब्रह्म-रूपिणी गायत्री जीवात्मा से भिन्न नहीं है। दोनों उसी प्रकार सम्बद्ध हैं जैसे नारिकेल के भीतर जल। देव-भाव होने से ही ब्राह्मण होता है। जैसे स्पर्श-मणि के छू जाने से ताँबा सोना बन जाता है, वैसे ही गायत्री के सम्पर्क से 'द्विजात्मा' कहलाती है।

विप्र को सूर्य की ओर मुख करके जप करना चाहिये। दिशा के सम्बन्ध में अन्य कोई नियम नहीं है। तीनों सन्ध्याओं में नित्य गायत्री का जप करे। अशौच हो, तो गायत्री का मन द्वारा स्मरण करे। देवी के वाँएँ हाथ में जप-फल समर्पित कर निम्न मन्त्र से उन्हें विदा करे —

ॐ महेश्वर-वदनोत्पन्ना विष्णोर्हृदय-संस्थिता। ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि ! यथेच्छया।

इसके बाद स्तोत्रादि का पाठ करे।

गायत्री कवच

अथ गायत्री-कवचं, आगम-सन्दर्भे ज्ञान-दर्पणे गायत्री-ब्राह्मण-सर्वस्वे। श्रीदेव्युवाच—

देव-देव ! महा-देव ! संसारार्णव-तारक ! गायत्री-कवचं देव ! कृपया कथय प्रभो !

श्री देव-देव उवाच—

मूलाधारेषु या नित्या कुण्डली तत्व-रूपिणी। सूक्ष्माति-सूक्ष्मा परमा विस-तन्तु-स्वरूपिणी।
विद्युत्-पुञ्ज-प्रतीकाशा कुण्डलाकृति-रूपिणी। परम-ब्रह्म-गृहिणी पञ्चाशद् - वर्ण - रूपिणी।
परम-ब्रह्म-गृहिणी पञ्चाशद् - वर्ण - रूपिणी। शिवस्य नर्त्तकी नित्या परं - ब्रह्म - प्रपूजिता।
ब्रह्मणः सैव गायत्री सच्चिदानन्द-रूपिणी। तद्-भ्रमावर्त्त-वातोऽयं प्राणात्मा नित्य-नूतनः।
नित्यं तिष्ठतु सानन्दा कुण्डली भव-विग्रहे। अति-गोप्यं महत् - पुण्यं त्रि-कोटी - तीर्थ-संयुतं।
सर्व-यज्ञ-मयं देवि ! सर्व-दान-मयं सदा। सर्व - ज्ञान - मयं देवि ! परं - ब्रह्म-मयं सदा।
कवचं कथयाम्यद्य पार्वति ! प्राण-वल्लभे।

ॐ ॐ भूः ॐ ॐ ॐ ॐ भुवः ॐ ॐ ॐ ॐ स्वः ॐ ॐ ॐ ॐ त ॐ ॐ त्स ॐ ॐ वि ॐ ॐ तु ॐ ॐ र्व ॐ ॐ रे ॐ ॐ णि ॐ ॐ यं ॐ ॐ भ ॐ ॐ र्गो ॐ ॐ दे ॐ ॐ व ॐ ॐ स्य ॐ ॐ धी ॐ ॐ म ॐ ॐ हि ॐ ॐ धि ॐ ॐ यो ॐ ॐ यो ॐ ॐ नः ॐ ॐ प्र ॐ ॐ चो ॐ ॐ द ॐ ॐ यात् ॐ ॐ ॐ ॐ।

ॐ भूः ॐ पातु मे मूलं चतुर्दल-समन्वितं। ॐ भुवः ॐ पातु मे लिङ्गे षड्-दल-समन्वितं।
ॐ स्वः ॐ पातु मे कण्ठं साकाशं दल-षोडशं। ॐ त ॐ पातु मे रूपं ब्रह्मण्य - कारणं परं।
ॐ त्स ॐ वदनं पातु रसना-संयुतं मम। ॐ वि ॐ पातु मे गन्धं सदा शरीर-संयुतं।
ॐ तु ॐ पातु मे स्पर्शं शरीरस्य च कारणं। ॐ र्व ॐ पातु मे शब्दं शब्द-विग्रह-कारणं।
ॐ रे ॐ पातु मे नित्यं त्वचं शरीर-रक्षकं। ॐ णि ॐ पातु मे अक्षं सर्व - तत्त्वैक - कारणं।
ॐ यं ॐ पातु मे श्रोत्रं श्रवणस्य च कारणं। ॐ भ ॐ पातु मे घ्राणं गन्धोपादान-कारणं।
ॐ र्गो ॐ पातु मे वाक्यं सभायां शब्द-रूपिणी। ॐ दे ॐ पातु मे बाहु-युगलं ब्रह्म-कारणं।
ॐ व ॐ पातु मे पाद-युगलं ब्रह्म-कारणं। ॐ स्य ॐ पातु मे लिङ्गं सजलं षड्-दलैर्युतं।
ॐ धी ॐ पातु मे नित्यं प्रकृतिं शब्द-कारणं। ॐ म ॐ पातु मे नित्यं मनो-ब्रह्म-स्वरूपिणीं।
ॐ हि ॐ पातु मे बुद्धिं परं-ब्रह्म-मयं सदा। ॐ धि ॐ पातु मे नित्यमहङ्कारं यथा तथा।

ॐ यो ॐ पातु मे नित्यं पृथिवीं पार्थिवं वपुः । ॐ यो ॐ पातु मे नित्यं जलं सर्वत्र सर्वदा ।
ॐ नं ॐ पातु मे नित्यं तेजः पुञ्जं यथा तथा । ॐ प्र ॐ पातु मे नित्यमनिलं शरीर-कारणं ।
ॐ चो ॐ पातु मे नित्यमाकाशं शशि-सन्निभं । ॐ द ॐ पातु मे जिह्वां जप-यज्ञस्य कारणं ।
ॐ यात् ॐ पातु मे चित्तं शिव-ज्ञान-मयं सदा । ॐ तत्त्वानि पातु मे नित्यं गायत्री पर-देवता ।
ॐ भूर्भुवः स्वः पातु मे नित्यं ब्रह्माणी जठरं क्षुधा । त्वष्टा मे सततं पातु ब्रह्माणी भूर्भुवः स्वरः ।

अस्याः श्रीगायत्र्याः परं-ब्रह्म ऋषिः, ऋग्-यजुः-सामाथर्वाश्छन्दांसि, श्रीगायत्री-ब्रह्मणो देवता, धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

अब गायत्री मन्त्र का एक बार जप कर 'कवच' की 'फल-स्तुति' पढ़े । यथा--

काम-क्रोधादिकं सर्वं स्मरणाद् याति साम्यतां । इदं कवचमज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेद् यदि ।
शत-कोटि-जपेनैव न सिद्धिर्जायते प्रिये ! गायत्री-वाचनात् सर्वं स्मरणं सिध्यति ध्रुवं ।
पठित्वा कवचं विप्रो गायत्रीं सकृदुच्चरेत् । सर्व-पाप-विनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् द्विजः ।
इदं कवचमज्ञात्वा कवचान्यं पठेत् तु यः । सर्वं तस्य वृथा देवि ! त्रैलोक्य-मङ्गलादिकं ।
गायत्री-कवचं यस्य जिह्वायां विद्यते सदा । तदामृत - मयी जिह्वा पवित्रा जप - पूजने ।
इदं कवचमज्ञात्वा ब्रह्म-विद्यां जपेद् यदि । व्यर्थं भवति चार्वङ्गि ! तज्जपं वन-रोदनं ।

ब्रह्म-हत्या सुरा-पानं स्तेयं गुर्वङ्गना-गमः । महान्ति पातकान्येव स्मरणान्नाशमाप्नुयुः ।
त्वगसृङ्-मांस-मेदोऽस्थि-मज्जा-शुक्र-विनिर्मितं । वात - पित्त - कफैर्युक्तं स्थूल-देहं तदुच्यते ।
सूक्ष्मं ज्योतिर्मयं देहं पञ्च-भूतात्मकं विदुः । महा - पद्म - वनान्तःस्थं सर्वावयव - संयुतं ।
आधाराधेय-सम्बन्धाद् गायत्री ब्राह्मणः स्वयं । अतएव परं ब्रह्म कथ्यते चोभयात्मकं ।
ब्राह्मणस्यैव जीवात्मा गायत्री-सहितं वपुः । आत्मनो हृदयाम्भोजे प्रदीप-कलिकोपमं ।
निर्धूमं च यथा ज्योतिस्तैलाग्नि-वर्ति-योगतः । तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म स एव परमः शिवः ।

गायत्री-कवच-न्यासं मातृका-स्थान-सन्धिषु । यः कृत्वा ब्राह्मणः श्रेष्ठो ह्यन्य-न्यासं समाचरेत् ।
अन्य-न्यासस्तदा सिद्धो ह्यन्यथारण्य-रोदनं । गायत्री-न्यास - मात्रेण परं - ब्रह्म - मयो द्विजः ।
इदं कवचमज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं करोति यः । ब्रह्मचर्यं भवेद् व्यर्थं गायत्री - कवचं विना ।
कवचस्य प्रसादेन ब्राह्मणो ज्वलदग्नि - वत् । कवचं परमेशानि ! सृष्टि-स्थिति-लयात्मकं ।
कवचस्य प्रसादेन ब्रह्मा सृष्टिं करोति हि । स्थितिं च कुरुते विष्णू रुद्रोऽहं लय - कारणः ।
अन्यद्धि कवचं देवि ! सृष्टि-स्थिति-लयं विना । इदमेव ब्रह्म-मयं सृष्टि-स्थिति- लयात्मकं ।

कवचं ब्राह्मणो नाम प्रातरुत्थाय यः पठेत् । गायत्रीं च सकृत् स्मृत्वा जप-लक्ष-फलं लभेत् ।
गायत्रीं दशधा जप्त्वा शत-लक्ष-फलं लभेत् । एवं क्रमेण गायत्रीं शतधा प्रजपेद् यदि ।
शत-लक्ष-फलं प्राप्य विहरेद् देव-वद् भुवि । ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य पठित्वा कवचं द्विजः ।
सकृद् यदि जपेद् विद्वान् गायत्रीं परमाक्षरीं । तत्क्षणात् स भवेत् सिद्धो ब्रह्म-सायुज्यमाप्नुयात् ।
इदं कवचमज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेत् तु यः । जप एव स एव स्यान्निस्तेजा न च सिद्धिदः ।
यः पठेत् कवचं देवि ! सततं शिव-सन्निधौ । सन्निधौ विष्णु-देवस्य कवचं शक्ति-सन्निधौ ।

तेजः-पुञ्ज-मयो विप्रस्तत्-क्षणाज्जायते ध्रुवं ।

गायत्री का पुरश्चरण

शारदातिलक—जितेन्द्रिय होकर 'तत्व' (चौबीस) लक्ष जप कर दुग्ध, चावल, तिल, दूर्वा इन चार वस्तुओं के हवि द्वारा क्षीर-वृक्ष (अश्वत्थ, उडुम्बर, प्लक्ष, वट) की समिधा में चौबीस सहस्र होम करे, तो गायत्री का पुरश्चरण सम्पन्न होकर मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है।

निर्वाणतन्त्र—विधिपूर्वक एक लक्ष जप करने से पुरश्चरण होता है। उसका दशांश होम करने से पुरश्चरण की सिद्धि होती है। होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक कर अभिषेक के दशांश-संख्यक ब्राह्मणों को सविधि भोजन कराये, तब पूर्ण सिद्धि की प्राप्ति होती है।

गायत्री द्वारा काम्य कर्म

शारदातिलक—तिलों द्वारा २४ हजार होम करने से सब पाप नष्ट होकर दीर्घायु मिलती है। घृत-युक्त तिलों या घृताक्त पायस (खीर) से होम करने से आयु बढ़ती है।

दूर्वा-युक्त तिलों से तीन सहस्र होम कर फिर अरुण कमल पुष्पों को त्रि-मधु से युक्त कर दस सहस्र (अयुत) होम करे, तो छः मास के भीतर महा-लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।

ब्रह्म-श्री की प्राप्ति लिए ब्रह्म-वृक्ष के पुष्पों से होम करे।

तान्त्रिक गायत्री और उसका पुरश्चरण

अन्नदा-कल्प, पञ्चम पटल—सभी पापों से छुड़ानेवाली, समस्त आपत्तियों को नष्ट करनेवाली, दरिद्रता को दूर करनेवाली, नित्य सुख एवं मोक्ष देनेवाली, एक बार उच्चारण करने से जन्म-जन्मान्तर के ब्रह्म-हत्यादि सभी पापों का नाश करनेवाली, दस बार उच्चारण करने से दस जन्मों के और सौ बार उच्चारण करने से सौ जन्मों के, हजार बार उच्चारण करने से हजार जन्मों के पापों का विनाश करनेवाली, अङ्ग-सहित सभी आगमों की सार-भूता, सनातनी, चित्कला यह गायत्री है। एक सहस्र जप से पुरश्चरण होता है।

तान्त्रिक गायत्री के ऋष्यादि

ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्रीच्छन्दो देवी प्रकीर्तितं। देवतान्न-प्रदा देवी चतुर्वर्ग-प्रदायिनी।

इसमें 'अन्न-प्रदा' अपने इष्ट-देवता का उपलक्षण है अर्थात् 'अन्न-प्रदा' के स्थान पर अपने इष्ट-देवता का नाम लेना चाहिये।

माया (ह्रीं) वीजं, नमः शक्तिः, प्रचोदयात् कीलकं

तान्त्रिक गायत्री के त्रिकाल ध्यान

गुण-भेद से तीन कालों के देवी के तीन ध्यान हैं। यथा—

१—प्रातः ब्राह्मी रक्त-वर्णा द्वि-भुजा च कुमारिका।
कमण्डलुं तीर्थ - पूर्णमक्ष - मालां च विभ्रती।
कृष्णाजिनाम्बर - धरा हंसारूढ़ा शुचि - स्मिता॥
२—मध्याह्ने सा श्याम-वर्णा वैष्णवी च चतुर्भुजा।
शङ्ख - चक्र - गदा - पद्म - धारिणी गरुड़ासना।
पीनोन्नत - कुच-द्वन्द्वा वन - माला - विभूषिता।
युवती च सदा ध्येया मध्ये मार्तण्ड-मण्डले॥
३—सायं सरस्वती - रूपा चन्द्रार्द्ध - कृत - शेखरा।
अर्द्धास्तामित - मार्तण्डे ध्येया सतत - यौवना॥

तान्त्रिक गायत्री का पूजा-क्रम

तन्त्रसार में प्रायः सभी देवताओं की 'गायत्री' दी है। देखें हिन्दी तन्त्रसार, पृष्ठ ७०-७२।

अन्नदा-कल्प—पूजा के लिये जल लाकर तीर्थों को यथाविधि-नमस्कार करे। फिर देवी का ध्यान कर, स्तोत्र पढ़ता हुआ याग-मण्डप में प्रवेश करे।

मत्स्य-सूक्त, पञ्चदश पटल—देशिक (साधक, उपासक) पूर्वाह्णिक कर्म कर विधि-पूर्वक स्नान कर अलंकृत हो याग करने के लिए याग-मण्डप को जाये।

रुद्र-यामल, पूर्व खण्ड, द्वितीय पटल—पूजा-मण्डप के समीप आकर, हाथ-पैरों को धोये। फिर अस्त्र (फट्) से द्वार की बांई और दांई शाखाओं में 'गङ्गायै नमः, यमुनायै नमः' से पूजन कर द्वार के ऊर्ध्वभाग में तथा नीचे देहली में 'श्रियै नमः' से पूजा करे। तब दाएँ पैर से मण्डप में प्रवेश करे।

मत्स्य-सूक्त—सविधि आचमन कर सूर्य को अर्घ्य दे। फिर पश्चिम द्वार से दाएँ पैर द्वारा प्रवेश करे। 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र का उच्चारण कर जल द्वारा द्वारों का प्रोक्षण कर द्वार-पूजा करे। ऊर्ध्व-अधः-क्रम से पुष्प-जल द्वारा गणेश, विघ्न-नाशन, महा-लक्ष्मी, महा-माया, सरस्वती, क्षेत्रेश, गङ्गा और यमुना की पूजा करे।

शारदातिलक—ऊर्ध्व उडुम्बरक में विघ्न (गणेश), महा-लक्ष्मी, सरस्वती की पूजा कर दाईं शाखा में गणेश और बाँईं शाखा में क्षेत्रेश की पूजा करे। ऊर्ध्व उडुम्बरक अर्थात् देहली में, दाएँ द्वार में। देहली के दोनों कोनों में गणेश और सरस्वती की पूजा कर मध्य में महा-लक्ष्मी की पूजा करे, यह तात्पर्य है। द्वार की दाईं शाखा में गणेश की और बाँईं में क्षेत्रेश की पूजा करे। इन दोनों अर्थात् गणेश और क्षेत्रेश के बगल में क्रमशः गङ्गा और यमुना की पूजा अर्घ्य-जल से पुष्प द्वारा करे।

राघव भट्ट ने दुर्गा-पूजा करने का भी निर्देश किया है। यथा—कोनों में गणेश, दुर्गा, सरस्वती और क्षेत्रेश की पूजा करे।

इनके मन्त्र—तार (ॐ), नाम का आदि अक्षर (बिन्दु-युक्त), चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में 'नमः' अर्थात् 'ॐ गं गणेशाय नमः' इत्यादि। उड्डामरेश्वर तन्त्र में भी ऐसे ही बताया है।

वैष्णव-मत की द्वार-पूजा राघव भट्ट ने बताई है कि प्रति द्वार में और दोनों पार्श्वों में दो-दो के क्रम से आठ द्वारपालों —१ नन्द, २ सुनन्द, ३ चण्ड, ४ प्रचण्ड, ५ चण्ड-नायक, ६ प्रबल, ७ भद्र और ८ सुभद्र का पूजन करे।

शैवों के आठ द्वारपाल ये हैं—१ नन्दी, २ महाकाल, ३ गणेश, ४ वृषभ, ५ भृङ्गरिटि, ५ स्कन्द, ७ पार्वतीश और ८ चण्डेश्वर।

गाणपत्यों के लिए आठ द्वार-पाल—१ वक्रतुण्ड, २ एक-दंष्ट्र, ३ महोदर, ४ गजानन, ५ लम्बोदर, ६ कठ, ७ विघ्न-राज और ८ धूम्रराज।

शाक्तों के आठ द्वार-पाल ब्राह्मी आदि अष्ट-मातायें कही गई हैं।

शारदातिलक—इसके बाद साधक दिव्य दृष्टि से देखकर अन्तरिक्ष में स्थित दैवी विघ्नों का जल द्वारा अस्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुये निवारण करे। फिर एड़ी से तीन बार ठोकर मारकर भूमि के विघ्नों को दूर करे। तब द्वार की बाँईं शाखा को कुछ छूते हुए, शरीर को सिकोड़ कर, दाएँ पैर से देहली को लाँघकर भीतर प्रवेश करे।

मत्स्य-सूक्त—दिव्य दृष्टि से देखकर विघ्नों को दूर करे। तीन बार पैर से ठोकर देकर तीन बार ताली बजाए। शरीर को सिकोड़कर साधक भीतर प्रवेश करे।

विविध आसन और उनके फल

शाक्तानन्द-तरङ्गिणी में उद्धृत गौरी-यामल—जल में ही यदि देवता की पूजा करनी पड़े तो भी आसन ग्रहण करके ही उपासना करे। खड़े-खड़े पूजा न करे। अतः मानसिक आसन की कल्पना कर ले, और उसी पर बैठकर मन्त्र के अर्थ को समझते हुये एकाग्र मन से जप करे।

सम्मोहन तन्त्र—मन को एकाग्र कर लाक्षा के समान लाल मिट्टी से पुते घर में लाल रंग के आसन पर अथवा मन में कल्पित लाल आसन पर बैठे। कुशासन, कम्बल, वस्त्र या सिंह, व्याघ्र, मृग के चर्म के आसन की कल्पना करे। ये आसन सौभाग्य और ज्ञान की वृद्धि करते हैं। कौषेय, चर्म, चैल, शर या ताल-पत्र, कपास और ऊन का भी आसन ग्राह्य है। कृष्ण मृग-चर्म के आसन से ज्ञान और व्याघ्र चर्मासन से मुक्ति की प्राप्ति होती है किन्तु गृहस्थों और अदीक्षितों को कृष्ण मृगचर्म के आसन पर बैठने का अधिकार नहीं है। उस पर केवल यति, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और भिक्षुकही बैठ सकते हैं। वस्त्रासन से रोग-नाश, कम्बल से दुःख-निवारण और उत्तम सिद्धि, कुशासन से दीर्घायु, व्याघ्र-चर्म से मोक्ष तथा कृष्ण-मृगचर्म से पुत्र की प्राप्ति होती है। शान्ति-कर्म में श्वेत, पौष्टिककर्म में कौशेय और सभी कामनाओं की साधना में बहुरंगे आसनकी विधिहै। त्रिपुरा के पूजन में रक्त-कम्बल का आसन प्रशस्त है। आसन दो हाथ से अधिक लम्बा न हो और डेढ़ हाथ से अधिक चौड़ा तथा तीन अंगुल से अधिक मोटा न हो। आसन न अधिक ऊँचाई पर हो और न अधिक निचाई पर।

गन्धर्व तन्त्र—पृथ्वी पर बैठकर पूजादि करने से दुःख, काष्ठासन पर बैठने से दुर्भाग्य, आम, नीम, कदम्ब-काष्ठ के आसन से वंश-नाश, वकुल, किंशुक, पनस के आसन से श्री का नाश होता है। अथवा पृथ्वी और तृण, पल्लवादि के आसन को ग्रहण न करे क्योंकि ये दारिद्रच, व्याधि और दुःख-दायक हैं।

बाँस के आसन से दरिद्रता, पत्थर से व्याधि, तृणासन से यशोहानि, पल्लवों से चित्त-भ्रान्ति, वस्त्रासन से जप-ध्यान-तप की हानि होती है।

गन्धर्व तन्त्र—विविध काष्ठों से बना चौबीस अंगुल लम्बा और सोलह अंगुल चौड़ा तथा चार अंगुल मोटा काष्ठासन शुभ होता है। कम्बल, चर्मासन और शिलासन महामाया के पूजन में प्रशस्त हैं।

मुण्ड-माला तन्त्र, तृतीय पटल—व्याघ्र-चर्म से सर्व-सिद्धि, मृग-चर्म से ज्ञान-सिद्धि, वस्त्रासन से रोग-निवारण, वेत्रासन से प्रीति-वृद्धि, कौशेय आसन से पुष्टि और कम्बलासन से सर्व-सिद्धि मिलती है। आसन श्वेत या कृष्ण होना चाहिये। रक्त-कम्बल का आसन विशेष रूप से प्रशस्त है।

वहीं उत्तराम्नाय के आसन—संग्राम में गिरे मृदु, कोमल आसन। पशु द्वारा मारे गए या मृत वानर का आसन। गर्भ-च्युत त्वचा या नारी-योनि से उत्पन्न त्वचा का आसन। ये सर्व-सिद्धि-प्रद और अत्यन्त समृद्धि-दायक हैं। युवाओं की त्वचा के वीरासन होते हैं। श्मशान के काष्ठ से बना आसन शुभ होता है। कुश एवं कृष्ण मृगचर्म का आसन वस्त्र से आवृत करे और उसका आकार चारों ओर से एक या दो हाथ का चतुरस्र होना चाहिये।

समयाचार तन्त्र, द्वितीय पटल—वश्य कर्म में मेषासन; वश्य आकर्षण और मोक्ष में व्याघ्रचर्म; शान्ति में मृगचर्म; स्तम्भन में वृष-चर्म; स्तम्भन में अश्व-चर्म; उच्चाटन में उष्ट्र-चर्म; विद्वेषण में श्वान-चर्म और मारण में महिष-चर्म का आसन निर्दिष्ट है। सभी कामनाओं की पूर्ति में पट्ट-वस्त्र, ऊन या कम्बल का आसन विहित है। काष्ठ व पत्थर के आसन दुःख-दारिद्रच-दायक होते हैं। स्वर्णादि रत्नों के

आसन महा-सौभाग्य की वृद्धि-कारक हैं। उत्तराम्नाय में शीघ्र पुण्य फल देनेवाले शवासन, मृत-मुण्डासन, श्मशानासन, भग-दर्शासन और मैथुनासन बताये गये हैं। इन आसनों से सभी वांछाओं की पूर्ति होती है।

मात्स्य, पञ्चदश—रुरु-चर्म सत्कामना में, व्याघ्र-चर्म श्री और मोक्ष-कर्म में, काले बाघ का कृष्ण-चर्म शक्ति-उपासना में प्रशस्त है। लाल, पीले वस्त्र, कम्बल और शुभ दारु के आसन से शीघ्र सिद्धि मिलती है। कूर्म-योगासन पर बैठे।

योग-सार, द्वितीय परिच्छेद—कम्बल, कोमल, कोश व दारु-निर्मित तथा चर्म के आसन होते हैं। लोम (रोएँ) पर बैठने से सर्वनाश होता है। लोम के देखने मात्र से सिद्धि की हानि होती है। काम्य के लिए कम्बल कहा है, रक्त कम्बल श्रेष्ठ होता है। कृष्णाजिन पर ज्ञान की और व्याघ्र-चर्म पर श्री व मोक्ष की प्राप्ति होती है। कुशासन से मन्त्र-सिद्धि होती है।

समयाचार-तन्त्र—पृथ्वी मन्त्र के ऋषि मेरु-पृष्ठ, छन्द सुतलं, देवता कूर्म और विनियोग आसनार्थ है। पद्मासन बाँधकर बैठे। 'पद्मासन' संकेत मात्र है; पद्म, स्वस्तिक, वीर आदि में से किसी एक आसन से बैठकर जपार्चन आदि करे, अन्यथा फल नहीं मिलता। ऐसा राघव भट्ट का वचन है।

यतियों के लिए आसन कूर्माकार होना चाहिए और अन्य लोगों का चतुष्कोण (चौकोर)। राघव भट्ट के अनुसार दान, आचमन, होम, भोज, देवार्चन, स्वाध्याय, तर्पण आदि 'प्रौढ़-पाद' होकर न करे। आसन पर पैर रखकर जानु या जाँघों से कोष को सटाकर बैठना 'प्रौढ़-पाद' है।

सिद्धासन

गोरक्ष-संहिता—जितने जीव-जन्तु हैं, उतने ही आसन होते हैं। समस्त भेदों को महेश्वर ही जानते हैं। चौरासी लाख में एक-एक का उल्लेख है। सोलह पीठों को शिव द्वारा सैकड़ों कर दिया गया है। सभी आसनों में से दो विशेष कहे हैं—१ सिद्धासन, २ कमलासन। योनि-स्थान को अंघ्रि-मूल से लगाकर मेढ़ पर जमाकर बैठे और हृदय से सभी इन्द्रियों को संयमित कर किसी को न देखते हुए भ्रू-मध्य में ही दृष्टि रखे, तो मोक्ष-द्वार को खोलनेवाला 'सिद्धासन' होता है।

पद्मासन

बाँएँ उरु पर दाँएँ पैर को और दाँएँ उरु पर बाँएँ पैर को रखकर पश्चिम-विधि से दोनों हाथों से अंगूठे को पकड़े। चिबुक को हृदय से लगाकर नासाग्र को देखे, तो व्याधि-विकार का नाशक 'पद्मासन' होता है। ये आसन योग-साधना के ही उपयोगी हैं। पूजा में इनका उपयोग नहीं है।

पूजा-द्रव्यों की स्थापना

मत्स्य-सूक्त—मण्डप और याग-भूमि का पञ्च-गव्य से संशोधन कर, शर से प्रोक्षण और मूल-मंत्र से वीक्षण करे। विकिरों को सात वार शराणु से अभिमन्त्रित कर वहाँ बिखेर दे। फिर चन्दन, अगरु आदि से पूजा-स्थान को धूपित करे।

अपनी दाईं ओर पूजा-द्रव्य रखे। दाईं ओर तीर्थ-जल से पूर्ण सुगन्धित कुम्भ रखे। पवित्र वस्त्र पहन कर पूजा करे। रात्रि के जल का उपयोग न करे।

शारदा—हाथों के धोने के लिए पीछे पात्र रखे। चारों ओर घी के जलते हुए शुभ दीपक रखे। अब पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन-पात्रों को रखे।

देवी पुराण—स्वर्ण, रजत, ताम्र, मिट्टी, शिला या पत्थर के पात्र जिनमें शुभ रेखाएँ अङ्कित हों, अर्घ्य, नैवेद्य, पूजा, बलि-दान आदि में ग्रहण करने चाहिए।

अर्घ्यादि पात्रों का निर्णय

शिव-रहस्य—स्वर्ण के सभी पात्र विहित हैं। चाँदी के पात्र में अर्घ्य देने से आयु, वैभव, पुत्र मिलते हैं। ताम्र-पात्र से सौभाग्य मिलता है। अभाव में अपने हाथ से मिट्टी के पात्र बनाकर उनसे धर्म-कर्म करे।

३६ अंगुल का पात्र उत्तम, २४ अंगुल का मध्यम और १२ अंगुल का कनिष्ठ माना गया है। ८ अंगुल से छोटा पात्र न बनाए। अभाव होने पर ऐसे पात्र से काम चलाए, जिससे जल न गिरे। शङ्ख, शुक्ति और काष्ठ के पात्र पद्माकार और नाभि-विवर से युक्त बनाए।

पाद्य-पात्र

वैखानस—लौह, स्वर्ण, रजत या ताम्र का पात्र पैर धोने के लिए जल रखने हेतु बनाए।

सिद्धान्त-शेखर—६ अंगुल चौड़ा, ४ अंगुल ऊँचा, ओठ एक अंगुल और नासिका ४ अंगुल। पीठ में ४ अंगुल का पैर। इस प्रकार का 'पाद्य'-पात्र सभी देव-पूजा में प्रशस्त है।

पाद्य-प्रक्षेपणीय पात्र

८ अंगुल ऊँचा, १६ अंगुल चौड़ा, ओठ एक अंगुल—इस प्रकार शराव की आकृति का प्रक्षेपणीय पात्र बनाए। पीठ में ६ अंगुल चौड़ा पैर। पाद्याधार की ऊँचाई ४ अंगुल।

अर्घ्य-पात्र

सिद्धान्त-शेखर—पल और द्रव्य के भेद से अर्घ्य के लक्षण बताते हैं। सामान्यार्घ्य तिरोधाप्य है और विशेषार्घ्य पराङ्मुख। अर्घ्य-पात्र चार होते हैं। स्वर्ण का दूर्वाक्षत से युक्त उत्तम होता है। रजत का मध्यम और अन्य अर्थात् ताम्र, शुक्ति, शिला, दारु, मृत्तिकादि के अधम होते हैं। बीस पल का उत्तम, दस पल का मध्यम और अधम पात्र पाँच पल का कहा है। अर्घ्य पात्र में—१ कर्पूर, कुंकुम, दूर्वा, सिद्धार्थ, विल्व-पत्र; २ यवांकुर, कुश; ३ तिल, पुष्प; सिद्धार्थ, दर्भ, दूर्वा, यव, अक्षत; ४ तिल, तण्डुल, सिद्धार्थ, दूर्वा, यव—ये वस्तुएँ डाली जाती हैं।

आचमनीय-पात्र

वैखानस—कमल की कर्णिका के आकार का स्वर्ण, रजत या ताम्र का आचमनीय पात्र बनाए।

सिद्धान्त-शेखर—१२ अंगुल चौड़ो कुक्षि का मध्य गोलाकार भाग। ६ अंगुल का दल और उसके अन्त में एक अंगुल का ओष्ठ। पार्श्व में नासा ४ अंगुल की। रन्ध्र कनिष्ठिका-वत्, निचला भाग उसका दूना। पृष्ठ में २ अंगुल ऊँचा, ४ अंगुल चौड़ा आधार रहे। आचमन-पात्र का यही स्वरूप है।

गन्ध-पात्र

सिद्धान्त-शेखर—अर्घ्य-पात्र के समान ही गन्ध-पात्र होना चाहिए।

धूप-पात्र

वैखानस—स्वर्णादि का धूप-पात्र बनाए। ४ अंगुल ऊँचा हो, उसका ढँकना अनेक छिद्रों से युक्त हो।

सिद्धान्त-शेखर—४, ५, ६ या ७ अंगुल ऊँचा धूप-पात्र हो। ओष्ठ भाग ऊँचाई का आधा हो। २ अंगुल का गला हो। फिर एक अंगुल ऊँचा, २ अंगुल चौड़ा चक्र या चाप के समान आच्छादन (ढक्कन) हो, जिसमें अनेक छिद्र हों। एक छिद्र बनाना हो, तो कलशाकार बनाकर उसके ऊपर बनाए।

दीप-पात्र

वैखानस—बीच में नाल रखकर उज्ज्वल कुमुद के समान १०० या ८ दल बत्तियों के रखने के लिए बनाए। तीन, सात काष्ठों या दो, दस काष्टों या पाँच काष्ठों से उन्हें विभूषित करे।

सिद्धान्त-शेखर—१, ४, ६ या ८ दल का दीप-पात्र बनाए। एक दल में अश्वत्थ के पत्ते के समान आकृति रखे। चार दल हों, जो चारों दिशाओं को निकले हों, और उनकी कर्णिका नीचे की ओर हो। छः दल का पात्र उप-दलों से बनता है।

दीप-माला

सिद्धान्त-शेखर—काष्ठ, ताम्र की दीप-माला अधम, मध्यम रजत की और उत्तम स्वर्ण की होती है। द्वार के समान यष्टि बनाये, लिङ्ग-पृष्ठ पर प्रभाकृति हो। ४ अंगुल दीर्घ और स्कन्ध एक अंगुल चौड़ा हो। एक स्कन्ध से दूसरा स्कन्ध समान रहे। ऐसी दीप-माला सभी देव-पूजन में प्रशस्त है।

दीपाधार

सिद्धान्त-शेखर—स्वर्ण, ताम्रादि का उत्तमादि आधार बनाए। १२ अंगुल से आरम्भ कर २-२ अंगुल बढ़ाकर १८ अंगुल दीपाधार की ऊँचाई निर्दिष्ट है। उसके ऊपर मुकुल बनाए, जिसमें अनेक परी (वत्ती-आधार) युक्त हों। ये दीपाधार दो, तीन या चार हाथ ऊँचे, रजत-ताम्र या लौह के बनाए।

नीराजन-पात्र

वैखानस—नीराजन के लिए स्वर्णादि की तीन तालोपेत ऊँची पात्री (थाली) बनाए, जिसके मध्य में घृत रह सके।

सिद्धान्त-शेखर—स्वर्ण, रजत, ताम्र में से किसी धातु की यथा-शक्ति बनाए। ३६ अंगुल की श्रेष्ठ, ३० अंगुल की मध्यम और २४ अंगुल की अधम कही है। आग्नेय भाग के एक भाग के मध्य में कर्णिका बनाए। उत्तर की ओर कर्णिका के मान के अनुसार ऊँचाई रखे। चारों ओर दो यव विस्तृत पीठिका बनाए। उसी के बराबर उठे हुए चारों ओर अष्ट-दल रखे। ओष्ठ-भाग एक अंगुल का बनाए। पूर्ण चन्द्र के समान गोलाकार कुम्भ-वत् दीपाधार बनाए।

घण्टा

वैखानस—शब्द-ब्रह्म-मय घण्टा एक हाथ ऊँचा, गोलाकार हो; चक्र या पङ्कज से विभूषित हो।

सिद्धान्त-शेखर—५ अंगुल ऊँचा और उतना ही चौड़ा घण्टा हो। उसके दण्ड के अग्र-भाग में वृषभ, शूल या कमल बनाए। शुद्ध कांस्य का घण्टा बनाना चाहिए।

नैवेद्य-पात्र

वीर-मित्रोदय—स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, मृण्मय, पलाश या प्लक्ष के पात्र विष्णु को प्रिय हैं। हवि-द्रव्य जितना हो, उसी के अनुसार नैवेद्य-पात्र बड़ा या छोटा बनाए।

सिद्धान्त-शेखर—स्वर्ण, रजत, ताम्र या शुद्ध कांस्य की थाली में देवता को नैवेद्य दे। सौ पल का पात्र श्रेष्ठ, ५० पल का मध्यम और २५ पल का अधम कहा है।

पानीय-पात्र

वैश्वानर-संहिता—स्वर्ण, रजत या ताम्र का बनाए। चौकोर या सुन्दर गोलाकार हो।

ताम्बूल-पात्र

वैखानस—अरत्नि के बराबर या जैसी शक्ति हो, दल-पत्र से सुशोभित ताम्बूल-पात्र बनाए।

पाँचवाँ परिच्छेद

भूत-शुद्धि से भक्ष्याभक्ष्य तक

भूत-शुद्धि

शारदा—हाथ-जोड़कर बाँएँ और दाँएँ पार्श्व में क्रमशः गुरुदेव और गणेश को नमस्कार कर भूत-शुद्धि करे। कर-शुद्धि कर तीन बार ऊपर की ओर ताली बजाए और अस्त्र-मन्त्र 'फट्' से दिग्-बन्धन करे। इससे प्रज्वलित तेज चारों ओर से रक्षा करता है।

चतुर्थ पटल—योग-विधि से सुषुम्ना-मार्ग से कुण्डलिनी के साथ हृदय-कमल में स्थित आत्मा को चिन्मन्त्र 'हंस' द्वारा ले जाकर परमात्मा में संयोजित करे। राघव-भट्ट के अनुसार गुरूपदिष्ट मार्ग से 'हं' का उच्चारण कर कुण्डलिनी को जाग्रत् कर उसे हृदय-कमल तक पहुंचाये और यह भावना करे कि कुण्डलिनी अपने मुख से जीव को पकड़कर सहस्रार में ले जाती है। सृष्टि-क्रम की अपेक्षा से सब भूतों के कारण परमात्मा में बीज-भाव से सभी तत्त्व और वर्ण लीन हैं, ऐसा चिन्तन करना चाहिए।

पिङ्गला-मत—इस प्रकार सङ्कल्प कर न्यास-स्थान से वर्णों का संहार करे। प्रतिलोम-क्रम से 'क्षल' के 'ल' का 'ह' में, 'ह' का 'स' में और 'स' का 'ष' में—इस प्रकार क्रमशः 'अ' तक संहार (लय) कर ब्रह्म-रन्ध्र के सहस्रार में नियोजित करे।

शारदा—तब वायु-वीज 'यं' से उत्पन्न वायु से देह को सुखा कर वह्नि-वीज 'रं' से उत्पन्न अग्नि द्वारा पाप-पुरुष-सहित सारी देह को जला दे। इस विधि में 'पाप-पुरुष-सहित' के संकेत से स्पष्ट है कि प्रकृत देह का नाश नहीं होता, केवल 'पाप-पुरुष' और उससे प्रभावित देहावरण के जलने की भावना की जाती है।

भर्तृहरि—'नील पट' से लोग दो तत्त्वों का ही अलग-अलग बोध करते हैं। नीले गुण की अलग ही पहचान होती है। इसी से कहा है कि—

गुप्त-साधन तन्त्र, षष्ठ पटल—भूत-शुद्धि में यदि देह का नाश करे, तो सृष्टि कहाँ होगी, अमृत कहाँ रहेगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि बाँईं कोख में काजल के समान पाप-पुरुष है, जिसके संहार के लिए उसकी लिङ्ग-देह प्रकट होती है। यही पाप-देह भस्म होती है, साधक की अपनी देह नहीं।

राघव भट्ट द्वारा उद्धृत पाप-पुरुष का ध्यान इस प्रकार है—

ब्रह्म - हत्या - शिरस्कं तु स्वर्ण - स्तेय - भुज - द्वयं। सुरा-पान-हृदा युक्तं गुरु-तल्प-कटि-द्वयं।
तत् - संसर्गि - पद-द्वन्द्वमङ्ग - प्रत्यङ्ग - पातकं। उप-पातक-रोमाणं रक्त - श्मश्रु - विलोचनं।
खड्ग - चर्म - धरं पापमंगुष्ठ - परिमाणकं। अधोमुखं कृष्ण-वर्णं वाम-कुक्षौ विचिन्तयेत्॥

शारदा—दोष-स्वरूप पाप-पुरुष की भस्म को वायु-वीज से उड़ाकर अमृत-जल द्वारा पैरों के तलवे से लेकर मस्तक तक सारी देह को आप्लावित करे।

गणेश-विमर्षिणी—उस सारी भस्म-राशि को वायु-वीज से उत्पन्न वायु द्वारा उड़ाकर अमृत-वीज 'वं' से उत्पन्न अमृत-जल द्वारा पैरों के तलवे से मस्तक तक सारी देह को आप्लावित करे।

शारदा—तब आत्म-लीन तत्त्वों को अपने-अपने स्थान में पहुंचाये। परमात्मा के पास से 'हंस-देव' मन्त्र अर्थात् 'हंस-वीज' के उपास्य 'परमात्मा' के मन्त्र 'सोऽहं' द्वारा आत्मा को हृदय-कमल में लाये।

वशिष्ठ-संहिता—'सोऽहं' मन्त्र द्वारा ब्रह्म-रन्ध्र से जीव को लाकर हृदय में स्थापित करे। गुरूपदिष्ट पूरी विधि इस प्रकार है—

'ॐ अद्येत्यादि श्रीदेव-पूजाद्यधिकार-सिद्धये भूत-शुद्धचाद्यहं करिष्ये ।'

इस प्रकार सङ्कल्प कर मूलाधार से उठी हुई, सहस्र-विद्युत्-प्रभा वाली, विस-तन्तु-रूपा कुण्डलिनी को सुषुम्णा-मार्ग से हृदय-कमल में पहुँची हुई ध्यान करे। हृदय-कमल से प्रदीप-कलिकाकार जीव को मुख में लेकर १२ वर्णों से विभूषित सहस्र-दल-कमल में उसके पहुंचने की भावना करे। वहाँ 'हंस'-मन्त्र द्वारा जीवात्मा को परमात्मा से संयुक्त करे। फिर पैरों से जानु (घुटनों) तक चतुरस्र पृथ्वी-मण्डल की भावना कर उसमें पैरों की जाने की क्रिया, गन्तव्य, गन्ध, घ्राण, ब्रह्मा, निवृत्ति और समान वायु का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

'ॐ ह्लीं ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा ।'

इस प्रकार उक्त सभी को कुण्डलिनी द्वारा 'अप्सु प्रविलापयामि' यह कहकर जल-स्थान में लय करे। जानु से नाभि तक श्वेत-वर्ण के अर्ध-चन्द्राकार जल-मण्डल की भावना कर उसमें हाथों की लेने-देने की क्रिया, दातव्य, रस, जिह्वा, जल, विष्णु, प्रतिष्ठा और उदान वायु का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

'ॐ ह्लीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा ।'

इस प्रकार उक्त सभी को कुण्डलिनी द्वारा 'अग्नौ प्रविलापयामि' यह कहकर अग्नि-स्थान में लय करे। नाभि से हृदय तक रक्त-वर्ण के त्रिकोण अग्नि-मण्डल की भावना कर उसमें पायु (गुदा-लिङ्गादि), विसर्जनीय, रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्या और व्यान वायु का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

'ॐ हुँ रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्या-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा ।'

इस प्रकार उक्त सभी को कुण्डलिनी द्वारा 'वायौ प्रविलापयामि' यह कहकर वायु-स्थान में लय करे। हृदय से भ्रू (भौहों) तक कृष्ण-वर्ण के वर्तुल (गोलाकार) षड्-विन्दु-विभूषित वायु-मण्डल की भावना कर उसमें त्वचा, उसके विषय, स्पर्श, स्पृष्टव्य, ईशान, शान्ति और अपान वायु का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

'ॐ हौं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्ति-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा ।'

इस प्रकार उक्त सभी को कुण्डलिनी द्वारा 'आकाशे प्रविलापयामि' यह कहकर आकाश-स्थान में लय करे। भ्रू-मध्य से ब्रह्म-रन्ध्र तक शुक्ल-वर्ण वर्तुल (गोलाकार) आकाश-मण्डल की भावना कर उसमें वाक्, मुख, वक्तव्य, शब्द, श्रोत्र, आकाश, सदा-शिव, शान्त्यतीत और प्राण-वायु का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

'ॐ हौं सदा-शिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीत-कलात्मने हुं फट् स्वाहा ।'

इस प्रकार उक्त सभी को कुण्डलिनी द्वारा 'अहङ्कारे प्रविलापयामि' यह कहकर अहङ्कार में लय करे। तब निम्न मन्त्र से 'महत्'-तत्त्व को 'प्रकृति' में लय करे—

'महत्-तत्वं मातृका-संज्ञक-शब्द-ब्रह्म-स्वरूपायां हृल्लेखानुभूतायां प्रकृतौ प्रविलापयामि ।'

अन्त में निम्न मन्त्र से 'प्रकृति' को 'पर-ब्रह्म' में लय करे—

'प्रकृतिं नित्य-शुद्ध-स्वभावे पर-ब्रह्मणि' प्रविलापयामि ।'

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश—गन्धादि घ्राण से संयुक्त पृथ्वी को जल में, रसादि जिह्वा के साथ जल को अग्नि में, रूपादि चक्षु के साथ अग्नि को वायु में, स्पर्शादि त्वक् से युक्त वायु को आकाश में, शब्द-सहित आकाश को अहङ्कार में, अहङ्कार को महत् में और महत् को सब शक्तियों के अव्यक्त चरम कारण, सच्चिदानन्द-रूप परम वैष्णव पद में लय करे। इस पद में पृथ्वी से लेकर क्रमशः सभी को लीन समझे। तब निम्न विनियोग पढ़े—

'ॐ शरीरस्य अन्तर्यामी ऋषिः, सत्यं देवता, प्रकृति-पुरुषं छन्दः, शोधने विनियोगः।'

अब बाँईं कोख में पाप-पुरुष का ध्यान कर वायु-वीज का विनियोग पढ़े। यथा—

'ॐ यमिति वायु-वीजस्य किष्किन्ध ऋषिः, वायुः देवता, जगती छन्दः, शरीर-पाप-पुरुष-शोधने विनियोगः।'

नाभि के मूल में विन्दु-द्वय से शोभित मण्डल में 'यं' का ध्यान करे। यथा—

'धूम्रं चञ्चल-ध्वज-संयुक्तं धूँ-धूं-शब्द-युतं सर्व-शोषणं हंस-दैवतम्।'

पूरक-प्राणायाम करते हुए १६ बार 'यं' वीज का उच्चारण कर वीज से उत्पन्न वायु द्वारा अपने शरीर में स्थित 'पाप-पुरुष' का शोधन होने की भावना करे। तब अग्नि-वीज का विनियोग पढ़े—

'ॐ रमिति अग्नि-वीजस्य कश्यप ऋषिः, अग्निः देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, शरीर-पाप-पुरुष-दाहे विनियोगः।'

हृदय में रक्त त्रिकोण के वह्नि-मण्डल को विद्या-कला से युक्त रुद्र-दैवत वाला ध्यान कर कुम्भक प्राणायाम करते हुए ६४ बार 'रं' वीज का जप कर वीज से उत्पन्न अग्नि द्वारा 'पाप-पुरुष' के भस्म होने की भावना करे। तब रेचक-प्राणायाम करते हुए पूर्वोक्त रूप वायु-वीज 'यं' का ३२ बार जपकर 'पाप-पुरुष' की भस्म को बाहर निकाल दे। अब वरुण-वीज का विनियोग पढ़े। यथा—

'ॐ वमिति वरुण-वीजस्य हिरण्य-गर्भ ऋषिः, हंसः देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, प्लावने विनियोगः।'

मूर्ध्नि में श्वेत-वर्ण के अर्द्ध-चन्द्राकार वरुण-मण्डल में दो श्वेत कमल अपने दोनों हाथों में लिए वरुण देव का ध्यान कर 'वं' बीज से निकलते हुए अमृत द्वारा उक्त शरीर-भस्म का पिण्ड बनने की भावना करे। तब पृथिवी-वीज का विनियोग पढ़े। यथा—

'ॐ लमिति पृथिवी-वीजस्य ब्रह्म ऋषिः, इन्द्रः देवता, गायत्री छन्दः, कठिनी-करणे विनियोगः।'

मूलाधार में वज्र-शोभित चतुष्कोण पृथ्वी-मण्डल में पीत-वर्ण इन्द्र-देव का ध्यान कर 'लं' वीज से उत्पन्न काठिन्य से शरीर के दृढ़ बनने की भावना करे। अब आकाश-वीज का विनियोग पढ़े—

'ॐ हमिति आकाश-वीजस्य ब्रह्म ऋषिः, आकाश देवता, पंक्तिः छन्दः, व्यूहने विनियोगः।'

द्वादशान्त में उज्ज्वल वृत्त आकाश-मण्डल में शान्त्यतीत कला से युक्त आकाश दैवत का ध्यान कर 'हं' वीज से उत्पन्न आकाश से शरीर के अवाप्वीकरण की भावना करे।

इस प्रकार अपने शरीर का चिन्तन कर परमात्मा से सृष्टि-क्रम द्वारा तत्त्वों को अपने-अपने स्थान में पहुंचाये। अन्त में 'सोऽहं' मन्त्र द्वारा जीव को परमात्मा के पास से लाकर हृदय-कमल में प्रतिष्ठित करे।

भूत-शुद्धि न करने में दोष

शैवागम—यह 'भूत-शुद्धि' आवश्यकी है। पञ्च-शुद्धि के विना पूजा भक्ति-रहित पूजा और अभिचार के समान उल्टा फल देती है। विधि-हीन क्रिया का फल निऋति नष्ट कर देते हैं और राक्षसों का अधिकार हो जाता है।

अन्यत्र और मत्स्य-सूक्त, पञ्चदश पटल—देह के कारण-भूत भूतों का ब्रह्म-संयोग द्वारा जो शोधन होता है, उसे 'भूत-शुद्धि' कहते हैं। 'भूत-शुद्धि' के बिना जप, होम, अर्चन आदि सभी कर्म निष्फल होते हैं।

महा-निर्वाण तन्त्र, पञ्चम उल्लास—कृपया देखें 'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र', पृष्ठ २५-२६।

नील तन्त्र, चतुर्थ पटल—अपान वायु को ऊर्ध्व गति देकर दिव्य तत्त्वों से भरकर 'हंस' मन्त्र द्वारा मूलाधार से परा कुण्डलिनी शक्ति को उठाये और क्रमशः चक्रों का भेदन कर जीवात्मा को सहस्रार कमल में ले जाकर पर-ब्रह्म से मिलाये। दस इन्द्रियों, महत् तत्त्व और उनके गुणों को, चित् तत्त्वों और प्रकृति के शरीर को शुद्ध कर २४ तत्त्वों को बीज-भाव से युक्त करे। तब शून्य शरीर के बाँएँ भाग में निर्लेप, निर्गुण, शुद्ध आत्मा को तारिणी-मय ध्यान करे। 'आः' से रक्त पङ्कज, उसके ऊपर 'टां' से श्वेत-पङ्कज और उसके ऊपर नील-वर्ण 'हूँ' का ध्यान करे। तब 'हूँ' बीज में कर्तृका-बीज से विभूषित अपने को तारिणी-मय हुआ भावना करे। वश्य में रक्त-वर्ण, स्तम्भ-आकर्षण में पीत-रूप, मारणोच्चाटन में क्रमशः धूम्र और कृष्ण-वर्ण अपने को ध्यान करे।

विश्वसार तन्त्र, द्वितीय पटल—१६ वायु-बीज से पूरक कर कुम्भक में ६४ वायु-बीज से पाप-देह को शुद्ध करे। उसी बीज को ३२ बार जपते हुए रेचक द्वारा पिङ्गला में श्वास-मार्ग से उसकी भस्म को निकाल दे। इस प्रकार तीन बार करने से भूतों का 'शोधन' होता है। फिर प्रतिलोम-क्रम से १६ वह्नि-बीज से पूरक, ६४ से कुम्भक और ३२ से रेचक करे, तो 'दाहन' होता है। पुनः १६ वरुण-बीज से पूरक, ६४ से कुम्भक और ३२ से रेचक करे, तो 'प्लावन' होता है। इन तीनों बीजों के ऋषि क्रमशः किष्किन्ध, कश्यप और हिरण्य-गर्भ हैं। इसके बाद महा-पद्म सहस्रार में गुरूपदिष्ट-देवता का ध्यान कर मूलाधार से सहस्रार तक षट्-चक्रों के क्रम से क्रमशः सभी भूतों को कला, शक्ति, गुण आदि सहित लय करे। सहस्रार में ऐक्य की भावना कर 'सोऽहं' मन्त्र का उच्चारण कर सूक्ष्म ब्रह्म का चिन्तन करे। इस विधि से देह निर्मल, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह होती है। 'अ' से 'क्ष' तक की वर्ण-माला में वह्नि-बीज जोड़कर पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायाम करे, सभी वर्णों को अनुस्वार-युक्त स्मरण करे। फिर वायु-बीज जोड़कर चार बार मन्त्र-जप करे। तब वरुण-बीज जोड़कर जप करते हुए सुधा-धारा से आप्लावित पञ्च-भूतात्मक देह का चिन्तन करे। इस पञ्चाशद्-वर्ण-प्राणायाम के ऋषि 'अन्तर्यामी देवता' हैं। वक्षःस्थल पर दायाँ हाथ रखकर 'हंस' मन्त्र से प्राण का आवाहन निम्न मन्त्र से करे—

'ॐ स-धातूनि स तत्वानि हंसः इहागत्य चिरं सुखं तिष्ठन्तु स्वाहा।'

तब 'अ' से 'क्ष' तक पचास वर्णों से युक्त देह का चिन्तन करे। इस प्रकार साधक देव-स्वरूप होता है। पुनः प्राणों का आवाहन करते हुए तीन बार ५० मातृकाओं से पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायाम प्रतिलोम-क्रम से करे, और नृसिंह मन्त्र (हौं) से देह में बीज छोड़े, तो साधक साक्षात् सदा-शिव होता है। फिर मूलाधार में पहुँचकर जीवात्मा का ध्यान करते हुए विद्युदग्नि के समान प्रभावाली, सर्व-सिद्धि-समन्विता, निर्मला, निर्विकारा कुण्डलिनी का चिन्तन करे। अन्त में देह में वर्ण-रूपिणी मातृका का न्यास करे।

प्राणायाम

दक्षिणामूर्ति तन्त्र, सप्तम पटल—मूल-मन्त्र से बाँईं नासिका से उदर को पूर्ण कर कुम्भक द्वारा तीन बार आवृत्ति कर दाईं नासिका से रेचन करे। कनिष्ठा-अनामिका और अँगूठे से नासा-पुट को

धारण करे। तर्जनी और मध्यमा को अलग रखे। यही प्राणायाम की विधि है। विशेष बाद में बताया जायगा। तब दीक्षा-पद्धति में कथित, तन्त्रसार में उद्धृत तत्तत्-कल्पोक्त न्यासादि करे। देखिए 'हिन्दी-तन्त्रसार', पृष्ठ ४५ से ६२।

पूजा के आधार

मातृका-भेद तन्त्र, द्वादश पटल—शालग्राम, मणि, यन्त्र, प्रतिमा, घट, जल, पुस्तिका, गंगा, शिव-लिङ्ग और पुष्प में देव-पूजा की जाती है। शालग्राम और मणि में सौगुना, यन्त्र और पवित्र मूर्ति में लाख-गुना, घट और जल में एक गुना, पुस्तिका और गङ्गा में हजार-गुना, शिव-लिङ्ग (पार्थिव लिङ्ग को छोड़कर) में अनन्त फल मिलता है और पुष्प-यन्त्र में पूजा करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। शालग्राम या मणि में पूजा करे, तो पूजा-यन्त्र न लिखे। प्रतिमा के सम्मुख घट स्थापित कर घट में परिवारों की और घट के मुख में यन्त्र के अधिष्ठातृ देवता की पूजा करे। घट को समस्त-देवता-रूप समझे। यह घट कल्प-वृक्ष-स्वरूप होता है।

प्रतिमा के पास यन्त्र-करण निषिद्ध

पूजन हेतु यदि यन्त्र स्थापित करे, तो वहाँ मूर्ति न रखे और यदि रखे, तो दो बार पूजन करे। ऐसी दशा में पूजन, बलिदान, जप, होम—सभी को दो-दो बार करना चाहिये अथवा कोई फल नहीं मिलता।

पार्थिव शिव-लिंग में शक्ति-पूजा का निषेध

गुप्त-साधन तन्त्र, अष्टम पटल—पार्थिव लिङ्ग में देवी की पूजादि न करे अन्यथा सिद्धि की हानि होती है।

स्फटिक के लिंग में शक्ति-पूजा का फल

स्फटिक का लिङ्ग बनाकर उसमें शक्ति-पूजा करने से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं।

तन्त्रान्तर—पार्थिव लिङ्ग में काली, तारा, त्रिपुरा और भुवनेश्वरी का जो पूजन करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है।

गुप्त-साधन तन्त्र में भी ऐसा ही वचन है।

शक्ति की साकारता का कारण

निराकार देवता का ध्यानादिक सम्भव नहीं है। साकार होने से ही ध्यानादि का सामञ्जस्य होता है। मुण्ड-माला तन्त्र, सप्तम पटल में शिव कहते हैं कि 'प्रकृति और शिव निर्गुण हैं। जब प्रकृति सगुणा होती है, तब मैं सदाशिव सगुण होता हूँ। उपासकों की सिद्धि के लिये सगुणा और सगुण की विधि है।'

महा-निर्वाण तन्त्र, पञ्चम उल्लास में दो प्रकार के ध्यान की व्याख्या करते हुये इस विषय को स्पष्ट किया गया है (देखिये, 'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र' पृष्ठ २८)। पुनः त्रयोदश उल्लास में साकार रूप की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है (देखिये, हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र, पृष्ठ १०१)।

कुलार्णव, पञ्चम खण्ड, षष्ठ उल्लास देखिये 'हिन्दी कुलार्णव', पृष्ठ ३४-३५।

नारद-पञ्चरात्र, द्वितीय रात्र—भक्तों के लिए भक्ति का और योगियों के लिए योग का ज्ञान-मार्ग है। सभी योगी सनातन ज्योति-रूप का ध्यान करते हैं। वे निर्गुण का शरीर नहीं मानते। गुण से देह होती है, अतः निर्गुण के वह कहाँ से हो सकती है? योग-ज्ञाताओं ने ऐसा ही कहा है। किन्तु वैष्णवों का कथन है कि तेजस्वी के बिना तेज कहाँ? कृष्ण नित्य-शरीरी हैं और तेजवान् हैं। तेज के भीतर ही कृष्ण

को सनातनी मूर्ति है। सभी योगी उसी तेज का भक्ति-पूर्वक ध्यान करते हैं। दासों को देह के बिना दास्य-भाव की उपलब्धि कहाँ से होगी ? अतः वैष्णवों का मत सभी के द्वारा मान्य है। ब्रह्माण्ड में वैष्णव से अधिक ब्रह्म-ज्ञानी कोई नहीं है। इस प्रकार देवता की साकारता प्रमाणित है। अतः 'तन्त्रसार' आदि ग्रन्थों में कथित ध्यान कर देवता की मानस-पूजा करे और शङ्ख-स्थापना से लेकर आवरण-पूजा तक के सभी कर्म करे। मानस-पूजा आगे बताई जाएगी। अब 'प्राण-प्रतिष्ठा' के विषय में विशेष लिखते हैं—

प्राण-प्रतिष्ठा

शारदा-तिलक, त्रयो-विंशति-पटल—प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र से मन्त्र प्राणवान् होता है। यद्यपि मन्त्रों की प्राण-प्रतिष्ठा की विधि नहीं है क्योंकि वे स्वतः समर्थ होते हैं, तथापि मन्त्रों में विहित यन्त्रादि में प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा सभी यन्त्र और पुत्तली आदि प्रयोगों में प्राण को प्रतिष्ठित किया जाता है। ६६ अक्षरों का प्राण-मन्त्र निम्न प्रकार है—

आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः अमुष्य प्राणा इह प्राणाः आं ह्रीं क्रों अमुष्य जीव इह स्थितः आं ह्रीं क्रों अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि आं ह्रीं क्रों अमुष्य वाङ्-मनश्चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-पाद-प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

जप को छोड़कर साधना के लिए अन्यत्र प्राण-प्रतिष्ठा के समय आत्मा में और पुत्तली आदि में इस मन्त्र का प्रयोग किया जाता है। 'अमुष्य' के स्थान में साध्य का षष्ठ्यन्त नाम जोड़ कर उच्चारण करने की विधि है।

इस प्राण-मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं; छन्द हैं ऋग्, यजुः और साम; देवता है चैतन्य रूपा प्राणात्मा। षडङ्ग-न्यास निम्न प्रकार करे—

ङं कं खं घं गं आकाश-वायु-वह्नि-सलिल-भूम्यात्मने हृदयाय नमः। ञं चं छं झं जं शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मने शिरसे स्वाहा। णं टं ठं ढं डं श्रोत्र-त्वक्-चक्षुर्जिह्वा-घ्राणात्मने शिखायै वषट्। नं तं थं धं दं वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थात्मने कवचाय हुं। मं पं फं भं बं वचनादान-विहरण-विसर्गानन्दात्मने नेत्र-त्रयाय वौषट्। शं यं रं वं लं हं षं क्षं सं लं बुद्धि-मनोऽहङ्कार-चित्त-ज्ञानात्मने अस्त्राय फट्।

तब नाभि से चरण तक पाश-बीज 'आं' का, हृदय से नाभि तक शक्ति-बीज 'ह्रीं' का, मूर्द्धा से हृदय तक अंकुश-बीज 'क्रों' का न्यास करे। हृदय और धातुओं में 'यं' आदि सात बीजों का न्यास करे। हृदयस्थ प्राण और जीव में अलग-अलग अर्थात् प्रत्येक में 'हंस' पद के दोनों वर्णों का न्यास करे। तब जीव-भूता देवी का ध्यान करे। यथा—

रक्ताब्धि-पोतारुण-पद्म-संस्थां पाशांकुशाविक्षु-शरास-वाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराब्जै रक्तां त्रि-नेत्रां प्रणमामि देवीम्॥

इस प्रकार जगद्धात्री का ध्यान कर मन्त्र का लक्ष जप करे। उसका दशांश घृत-युक्त चरु से होम करे। षट्कोणात्मक पीठ के छः कोणों में निम्न क्रम से सुगन्धित पुष्पादि द्वारा पूजा करे—

१ आग्नेयकोण में—ब्रह्मा, २ वारुण में—विष्णु, ३ ईशान में—ईश्वर, ४ ऐन्द्र में—त्राणी, ५ नैर्ऋत में—लक्ष्मी, ६ वायव्य में उमा।

फिर दलों में माताओं की और उनके बाहर लोक-पालों की पूजा करे। इस प्रकार पूजा करने से मन्त्र षट्-कर्म-फल को देता है। पुत्तली आदि कर्मों में प्राण-प्रतिष्ठा के उक्त मन्त्र में 'अमुष्य' शब्द अर्थात् साध्य-नाम के आदि में और 'पाशादि-हंस-मन्त्र' के बाद दूती का नाम जोड़ लेना चाहिए।

राघव भट्ट–पाश-वीज (आं) से साध्य को बाँधकर, शक्ति (ह्रीं) से उसे पकड़ कर, अंकुश(क्रों) से प्राणों का आकर्षण कर, 'यं' आदि और दूती का उल्लेख कर, साध्य नाम का उच्चारण करे। नौ दूतियों के नाम हैं–१ मृत-वैवस्वता, २ जीवहा, ३ प्राणहा, ४ आकृष्या, ५ आग्रहणा, ६ प्रमदा, ७ विस्फुलिङ्गिनी, ८ क्षेत्रज्ञा और ९ प्रतिहा। पाश-वीज से साध्य की चेष्टा बँधती है, शक्ति-वीज से उसकी चेतना पकड़ी जाती है और अंकुश से जल द्वारा उसका शीघ्र ही आहरण हो जाता है। १२ अंगुल की साध्य-प्रतिमा बनाकर उसके हृदय में प्राणात्मक मन्त्र का न्यास करे। रात्रि में साध्य की सुप्तावस्था में उसके हृदय-कमल के वायु, अग्नि, इन्द्र, वरुण कोणों के दलों में और ईशान, नैऋत, शीतांशु, यम कोणों की कर्णिकाओं में हंस-युक्त 'यं' आदि को भृङ्गाकार-रूपों में और अपने हृदय-कमल की उन्हीं कर्णिकाओं में भृङ्गी-रूप में स्मरण करे। 'यं' आदि वीजों के शिर पर स्थित विन्दुओं से उत्पन्न तन्तुओं से साध्य-हृदय-पद्म के भृङ्गों को बाँधकर पुत्तली में या अपने चित्त में स्थापित करे।

पहली दूती के समान अन्य दूतियों के नाम क्रमशः साध्य-नाम के पूर्व और पाशादि-हंस मन्त्र-वीजों के बाद सम्बोधन-रूप में रखकर प्रयोग करने से उक्त प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र की नौ आवृत्तियाँ होती हैं। तदनन्तर वह्नि-वीज जोड़कर पुत्तली में एवं अपने हृदय में तन्तु का छेदन करे। इस प्रकार कुल ग्यारह आवृत्तियाँ करे।

वश्य और आकर्षण में 'यं' आदि वीजों को अरुण (लाल) रंग के; मोह और विद्वेषण में धूम्र रंग के; मारण में काले रंग के तथा स्तम्भन में पीले रंग के ध्यान करे। साध्य के प्राणों को मेढक-रूप और अपने प्राणों को सर्प-रूप चिन्तन करे।

यन्त्र में वायु, अग्नि, इन्द्र, वरुण, ईश्वर, राक्षस, इन्दु, प्रेतेश –इन आठ कोणों में क्रमशः यादि वर्णों को विन्दु-युक्त क्रमशः अंकित करे और क्ष-गत हंस-सहित साध्य-नाम लिखे। बाद में वृत्त और भूपुर बनाये।

इस प्रयोग द्वारा साधक सभी देवों को वश में कर सकता है, फिर मनुष्यों की क्या बात है।

आवाहनादि मुद्राएँ 'तन्त्रसार' में हैं। देखिए, 'सचित्र मुद्राएँ एवं उपचार' पुस्तक, मूल्य १०)।

आसनादि उपचार

१ **आसन**, मातृकाभेद तन्त्र, पञ्चम पटल—४ अंगुल चौड़ा आदि।

२ **पाद्य**, प्रपञ्चसार, षष्ठ पटल–श्यामाक, दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता से रुचिकर 'पाद्य' होता है।

३ **अर्घ्य**—गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों, दूर्वा—ये ८ वस्तुएँ 'अर्घ्य' में छोड़े। शाक्त-अर्घ्य, योगिनी तन्त्र, सप्तम पटल—वक्र-धान्य और सूक्ष्म धान्य से उत्पन्न समूचा तण्डुल ७, ८ या ९ संख्या में लेकर दूर्वांकुर के साथ अष्टमी या नवमी को भगवती को 'अर्घ्य' देने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

४ **आचमनीय**—जाती, लवङ्ग, कक्कोल से 'आचमनीय' बनाए।

५ **मधुपर्क**, शारदा—घृत, दधि और मधु को मिलाने से 'मधुपर्क' बनता है।

६ **पुनराचमनीय**—शुद्ध जल द्वारा।

७ **गन्ध**, कुलार्णव, सप्तदश उल्लास में 'गन्ध' की व्याख्या दी है। देखें 'हिन्दी कुलार्णव' पृष्ठ ९३। प्रपञ्चसार––चन्दन, अगुरु, कर्पूर के मिश्रण से 'गन्ध' बनता है। इसके देने का फल, योगिनी-तन्त्र —'गन्ध' के लेपन से ज्योतिष्टोम का, कुंकुम के लेप से सहस्र-गोदान का और चन्दनागुरु, कर्पूर के साथ श्वेत पुष्पों तथा कुंकुम से दुर्गा को लिप्त करने से वह्निष्टोम का फल मिलता है।

गन्धाष्टक, मेरु-तन्त्र, चतुर्थ प्रकाश—गणेश के लिए १ चन्दन, २ अगुरु, ३ कर्पूर, ४ रोचना, ५ कुंकुम, ६ मद (कस्तूरी), ७ रक्त-चन्दन, ८ जावास। विष्णु के लिए १ ह्री-वेर, २ चन्दन, ३ कूट, ४ अगुरु, ५ गोरोचन, ६ मुरा, ७ सेव्यक, ८ जटामांसी। शक्ति के लिए १ चन्दन, २ अगुरु, ३ कर्पूर, ४ कुंकुम, ५ रोचना, ६ जटामांसी ७ कपि (शिलाजीत), ८ ह्रीवेर। सूर्य के लिए १ कस्तूरी, २ केसर, ३ कुष्ठ, ४ रक्त-चन्दन, ५ अगुरु, ६ कर्पूर, ७ ह्रीवेर, ८ उशीर। शारदा में, शैव के लिए १ चन्दन, २ अगुरु, ३ कर्पूर, ४ तमाल, ५ ह्रीवेर, ६ कुंकुम, ७ कुशीत, ८ कूट।

८ पुष्प, व्याख्या हेतु देखें 'हिन्दी कुलार्णव', पृष्ठ ६३। प्रपञ्चसार—द्विविध तुलसी, द्विविध पङ्कज, द्विविध जाती, द्विविध केतकी, द्विविध करवीर—ये दस 'पुष्प' और रक्त, नील उत्पल तथा कुमुद प्रशस्त हैं। विश्वसार तन्त्र—मालती, कुन्द, मन्दार, नन्द्यावर्ति, पलाश, पाटल, अपार्थ, परन्ती, चम्पक, अशोक, विल्व, कर्णिकार आदि बहुत से पुष्प हैं। शारदा में भी इसी प्रकार पुष्पों के नाम हैं। योगिनी-तन्त्र—ऋतु-पुष्पों से जो जनार्दन की पूजा करता है, उसे देखने से नरक का दुःख शान्त हो जाता है।

पुरश्चरण-रसोल्लास, दशम पटल—करवीर, जवा पुष्प श्वेत, कृष्ण, पीत, हरित, लोहित सभी रंग के श्रेष्ठ पुष्प हैं और काली, सुन्दरी सभी को प्रिय हैं। श्वेत चन्दन से युक्त और रक्त-चन्दन से लिप्त इन पुष्पों को जो भक्तिपूर्वक देता है, वह विश्वेश होता है, इसमें सन्देह नहीं। रक्तोत्पल से कालिका की एक बार पूजा करने से लाखों वर्ष की पूजा का फल मिलता है। गर्भ-संयुक्त दूर्वा से भी देवी सन्तुष्ट होती हैं।

नित्या तन्त्र—रक्त-पुष्पों से चक्रराज की पूजा कुलाचार-क्रम से करे, तो जन्म-जन्मान्तर के पाप मास मात्र में नष्ट होते हैं और उसके घर में लक्ष्मी स्थिर होकर रहती हैं। इसी प्रकार जवा, केतकी, चम्पक, श्वेत पद्म, बन्धूक, मालती, मल्लिका, जाती, कुन्द, श्वेत उत्पल, रक्त उत्पल, अगस्त्य, नाग-केशर, कल्हार, वकुल, सिन्धुवार, पाटल आदि पुष्पों से पूजन द्वारा पाप नष्ट होकर अतुल सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

योगिनी तन्त्र—वृक्षस्थ पुष्पों को नहीं देना चाहिए। पुष्पों को लाकर ही देवों, पितरों का अर्चन करना चाहिए। मध्याह्न स्नान कर जो पुष्प तोड़ता है, वह रौरव नरक में जाता है। प्रातः स्नान कर पुष्प तोड़ने में दोष नहीं है।

विश्वसार तन्त्र—सहस्र नीलोत्पल की माला दुर्गा को सविधि देने से साधक देवी का सेवक होकर रुद्र लोक में उत्तम स्थान पाता है।

योगिनी तन्त्र, नवम पटल—मालती की माला से कार्तिक में विष्णु की पूजा करने से सभी पाप नष्ट होते हैं। मत्स्य-सूक्त, चतुर्दश पटल के अनुसार पट्ट वस्त्र से माला को शोधित कर ले। करवीर की माला माधव को देने से इन्द्र भी हाथ जोड़ते हैं।

वृहन्नील तन्त्र, द्वितीय पटल—सभी प्रकार के पुष्प भक्ति-पूर्ण बुद्धि से प्रदान करे।

प्रपञ्चसार, षष्ठ पटल—आँगन में गिरे, माला से टूटे, जन्तुओं द्वारा दूषित, सूंघे हुए, शरीर से छुए हुए, मुरझाए हुए पुष्पों से पूजन न करे। झिण्टि पुष्प, पीले तगर, श्वेत उड़ और काले विजय पुष्प वर्जित हैं। शारदा—मैले, भूमि पर गिरे, कृमि-केशादि से दूषित, बासी पुष्पों का त्याग कर दे।

मत्स्य-सूक्त, चतुर्दश पटल—शरत्-काल में शेफालिका और कल्हार प्रशस्त हैं, अन्य काल में इनसे अर्चन न करे, नहीं तो प्रायश्चित्त होता है।

योगिनी तन्त्र—विल्व-पत्र, शमी-पत्र, तमाल और आमलकी के दल, अपाङ्ग और भृङ्ग-पत्र, कुश तथा दूर्वा से पूजा करे। पुष्पों के अभाव में फल प्रदान करे। फल का भी अभाव हो, तो उसके पत्तों से पूजन करे। गुप्त-पूजा के लिए सिंहास्य, मासूर, धुस्तूर, रुद्रजटा, पद्म, नीलोत्पल, वक, मन्दार, काञ्चन, माधवी और तमाल पुष्प निर्दिष्ट हैं। सुगन्धित कनक रात्रि में दे, दिन में अन्य पुष्प दे। मल्लिका दोनों समय दे सकते हैं। देवालय (मन्दिर) में लगे पुष्पों से जो देवता की पूजा करता है, वह दृष्टि-हीन होता है। शिव को कुन्द पुष्प, गणेश को अशोक और तगर, सूर्य को मन्दार और कनक, महा-लक्ष्मी को तुलसी, झिण्टिका और काञ्चन, सरस्वती को बन्धू-जीव और द्रोण, ग्रहों को विल्व-पत्र और शमी-पत्र, ब्रह्मा को काश, कौसुम्भ, शमी, धात्री, कुरुण्ट और जल-पुष्प, दुर्गा को सोम-पुष्प, त्रिपुरा को काञ्चन, कनक और वासक पुष्प देना वर्जित है।

विल्व-पत्र, तमाल-आमलकी के दल, कल्हार, तुलसी, पद्म और मुनि पुष्प बासी नहीं होते। कलिका-रूप में अन्य पुष्प भी बासी नहीं माने जाते। जाती पुष्प छिन्न-भिन्न होने पर भी प्रयोग में ला सकते हैं।

९ धूप—शब्द की व्याख्या हेतु देखें 'हिन्दी कुलार्णव', पृष्ठ ९३। प्रपञ्चसार—गुग्गुल, अगुरु, सिता, घृत, मधु और चन्दन को अङ्गार में छोड़कर पीठ को धूपित करना चाहिए। योगिनी तन्त्र—भगवती को कर्पूर-सहित जो अगुरु, चन्दन और सिल्लक की धूप देता है, उसकी सभी कामनाएँ पूरी होती हैं और वह दुर्गा-लोक में उत्तम स्थान प्राप्त करता है।

१० दीप—शब्द की व्याख्या हेतु देखें 'हिन्दी कुलार्णव', पृष्ठ ९३। प्रपञ्चसार—गोघृत या तैल में बत्ती भिगोकर दीपक को ऊँचा उठाकर प्रकाश दिखाए।

११-१२ वस्त्र और अलङ्कार, वरदा तन्त्र, चतुर्थ पटल—३६ अंगुल से कम विस्तृत वस्त्र अर्पित न करे। काम्य-कर्म में ऐसा अलङ्कार (आभूषण) अर्पित करे, जो कम-से-कम आठ वर्ष की कन्या के उपयोग में आ सके। हीन वस्तु के देने से हीन और उत्तम वस्तु देने से उत्तम फल होता है। अतः कंजूसी न करे।

१३ नैवेद्य, कुलार्णव में व्याख्या दी है। देखें 'हिन्दी-कुलार्णव', पृष्ठ ९३। प्रपञ्चसार—शुद्ध चीनी, शुद्ध खीर घृत-युक्त अर्पित करे। साथ में केला, दही आदि प्रदान करे।

१४ ताम्बूल, मत्स्य-सूक्त, षड्-विंशति पटल—पान के पत्ते कत्था, चूना, कर्पूर, कस्तूरी, इलायची, केसर आदि से युक्त करके उत्तम मुख-वास हेतु ताम्बूल अर्पित करे।

१५ प्रणाम (नमस्कार), तब प्राणायामादि कर या १०८ वार मूल-मन्त्र का जप कर उसका फल समर्पित कर स्तव-कवच का पाठ कर प्रणाम करे। इससे मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदि सभी महान् आत्मायें सन्तुष्ट हो जाती हैं। नमस्कार करने से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—चतुर्वर्ग का फल मिलता है। सर्वत्र सभी सिद्धियों की प्राप्ति के लिए नमन करने का विधान है। नमस्कार करने से धर्म का प्रवर्त्तन होता है, दीर्घायु मिलती है। नमस्कार महा-यज्ञ के समान है, सब ओर से सबकी प्रसन्नता होती है।

१६ प्रदक्षिणा, योगिनी तन्त्र, पूर्व-खण्ड, अष्टम पटल—तीन बार प्रदक्षिणा कर पद्माकार-क्रम से नमस्कार करे। दक्षिण से उत्तर की ओर जाए। कुमारी-पूजा के प्रसङ्ग में, रुद्र-यामल, उत्तर-खण्ड, षष्ठ पटल —आदि, मध्य और अन्त में तीन प्रदक्षिणा करे। रजत, स्वर्ण, मुक्ता आदि सहित दक्षिणा

देकर हाथ जोड़कर परिक्रमा (घूम) कर नमस्कार करे। प्रत्येक परिक्रमा (भ्रमण) में दण्डवत् प्रणाम करे। जो परिक्रमा करके नमस्कार नहीं करता, उसे दोष लगता है। हाथ जोड़े बिना जो नमस्कार करता है, वह मोहान्धकार-नरक में पड़ता है। यह भी मत है कि शिर झुकाकर प्रणाम करे, पृथ्वी का स्पर्श न करे। प्रणाम करने में शरीर में जितनी मिट्टी लगती है, उतनी ही मात्रा में दीर्घ काल तक ब्रह्म-लोक के उत्तम स्थान में रहने को मिलता है।

गन्धर्व तन्त्र— १ कायिक, २ वाग्भव और ३ मानस, तीन प्रकार के नमस्कार क्रमशः उत्त , अधम और मध्यम बताये हैं। कायिक (शरीर द्वारा) नमस्कार से देवता सदा प्रसन्न होते हैं। सभी नमस्कार में 'कायिक' को प्रथम स्थान प्राप्त है। दोनों जानु से पृथ्वी पर बैठकर पृथ्वी को शिर से छूकर जो नमस्कार किया जाता है, उसे 'कायिक' कहते हैं। दोनों हाथ जोड़कर शिर पर लगाए और दाँएँ हाथ को फैलाकर पुनः शिर झुकाए तथा भक्ति-श्रद्धा-पूर्वक दाँयाँ पार्श्व दिखाते हुए एक बार वर्तुलाकार प्रदक्षिणा करे, तो उस प्रदक्षिणा से सभी देवता सन्तुष्ट होते हैं। जो देवी की १०८ बार प्रदक्षिणा करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूरी होती हैं और वह मोक्ष प्राप्त करता है। नमस्कार के सात प्रकार हैं—१ त्रिकोण, २ षट्-कोण, ३ अर्द्ध-चन्द्र, ४ प्रदक्षिण, ५ दण्ड, ६ अष्टाङ्ग और ७ उग्र। दक्षिण से वायव्य को जाकर फिर दक्षिण को लौटकर नमस्कार करे, तो वह 'अर्द्ध-चन्द्र' होता है। अपने आसन को छोड़कर पीछे हटकर भूमि पर दण्ड-वत् गिर कर नमस्कार करना 'दण्ड' कहलाता है। दण्ड-वत् रहते हुए यदि भूमि को १ हृदय, २ चिबुक, ३ मुख, ४ नाक, ५ हनु (जाँघ), ६ आँख, ७ कान और ८ ब्रह्म-रन्ध्र से स्पर्श करे, तो वह 'अष्टाङ्ग' नमस्कार माना जाता है।

मेरु-तन्त्र—१ हाथ, २ पैर, ३ जानु, ४ वक्ष, ५ मूर्धा, ३ दृष्टि, ७ वाणी और ८ चित्त से 'अष्टाङ्ग' तथा १ हाथ, २ जानु ३ शिर, ४वाक्य और ५ बुद्धि से 'पञ्चाङ्ग' नमस्कार होता है।

गन्धर्व तन्त्र—ब्रह्म-रन्ध्र से पृथ्वी को स्पर्श करने से 'उग्र' नमस्कार होता है, जो विष्णु को प्रसन्न करता है। अपनी रची गद्य-पद्यात्मक स्तुति से भक्तिपूर्वक नमस्कार करना 'वाचिक' है, जो उत्तम माना गया है। दूसरों द्वारा रचित स्तुतियों से नमस्कार करना 'अधम वाचिक' कहा गया है। त्रिविध नमस्कारों में 'कायिक' उत्तम है।

अन्त में देवता का विसर्जन कर बचे हुये नैवेद्य से कल्पोक्त देवता की पूजा कर स्थान का मार्जनादि करे।

निर्माल्य-काल का निरूपण

मत्स्य-सूक्त, षोडश पटल—देवता को अर्पित मणि, मुक्ता, प्रवाल, स्वर्णादि बारह वर्षों तक, तूलिका छः मास तक, सूती वस्त्र एक वर्ष और मृदु वस्त्र छः मास तक निर्माल्य नहीं होते। नैवेद्य महा-पूजा की समाप्ति के बाद देखते ही निर्माल्य माना जाता है। अन्न जब तक गर्म रहता है, तब तक।

देव-पूजादि में विहित और निषिद्ध द्रव्यादि

बृहन्नील तन्त्र, षष्ठ पटल—गुड़, क्षीर, मधु, इक्षु-दण्ड, केला, बीजपूर, नारिकेल विहित हैं।

योगिनी तन्त्र, उत्तर खण्ड, अष्टम पटल—इंगुदी, विल्व, बैर, आंवला, खजूर, पनस, मातुलुङ्ग, आम, गूलर, केला, पूग, बीजपूर आदि फल; मूली, सरसों, बथुआ, पालक आदि शाक विहित हैं। तिन्तिड़ी-फल, पहाड़ी कुम्हड़ा, जंगली फल आदि निषिद्ध हैं।

मत्स्य-सूक्त, षड्-विंशति पटल—निषिद्ध वस्तु निष्काम भाव से खाये, तो द्विज प्राणायाम कर शुद्ध हो जाता है। निषिद्ध मांस खाने से चान्द्रायण द्वारा शुद्धि होती है। संस्कृत और देवता को निवेदित माँस खाने से दोष नहीं होता। मांस-भक्षण का जो त्याग करता है, वह राजसूय का फल प्राप्त करता है।

विश्वसार, द्वितीय पटल—अन्न, दुग्ध, तक्र (दही), पायस, पूप-सूप, नवनीत, फल, गुड़, पायस—ये सब हविष्याशी के लिये भक्ष्य हैं। मूली, मसूर, लसुन, जम्बीर, अम्ल, माष, शाक, पलाण्डु, आमिष, ताम्बूल, तैल, वासी पदार्थ अभक्ष्य हैं।

शारदा, द्वितीय पटल—शाक, फल, दुग्ध, मूल, जौ का सत्तू आदि हविष्य पदार्थ ब्रह्मचारी, यति के लिये भक्ष्य हैं।

राघव भट्ट द्वारा उद्धृत वचन—वैदिकाचार से युक्त सत्कुलोत्पन्न लोगों के घर से ब्राह्मणों को भिक्षा लेनी चाहिये।

मत्स्य-सूक्त—कांस्य-पात्र में रखा नारिकेल-जल, काच-पात्र रखा बकरी का दूध, पाषा-णपात्र में रखा भैंस का दूध, ये सब वर्जित हैं।

ब्रीहि (चावल) के तीन भेद उपयोगी हैं—१ सोम-धान्य, २ वृहद्-धान्य और ३ रक्त-शालि। इनमें से वृहद्-धान्य को, यव (जौ), तिल, माष (उड़द), मुद्गक (मूँग), वर्तुल (मटर), सिद्धार्थ (सरसों), जीरा आदि के साथ प्रयोग में ला सकते हैं।

वर्जित शस्य (अन्न) में कोदों, अतसी, मसूर आदि हैं। इन्हें प्रयोग में न लाए।

काली गाय का दूध, दधि, घृत आदि और पृथ्वी से उत्पन्न नमक प्रशस्त हैं। भैंस का दूध, दही, घी आदि नैवेद्य में न देना चाहिए।

पशुओं में छाग और हरिण का मांस विहित है। पक्षियों में मयूर, कुक्कुट, कपोत आदि और मत्स्यों में रोहित, पाठीन आदि प्रशस्त हैं।

खजूर, पनस, द्राक्षा (अंगूर), मातुलुङ्ग, कदली, नागरंग, जम्बू-फल, वीजपूर, कशेर, अदरक, लवण, पिप्पली, जीरा आदि देवी को प्रिय हैं।

धुएँ या कृत्रिम ढंग से पकाए गए केला आदि फलों का देना वर्जित है। सूखा नारियल दैव या पितृ-कर्म में प्रयोग नहीं करना चाहिए। महादेवी को नारियल उसके जल-सहित विशेष रूप से अर्पित करना चाहिए।

[विहित और वर्जित पदार्थों का विस्तृत विवरण जानने हेतु मूल ग्रन्थ द्रष्टव्य है।]

हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र

काम्य-काण्ड : पहला परिच्छेद

मन्त्र-चैतन्यादि एवं माला प्रकरण

मन्त्र-चैतन्य और उसका फल

कुब्जिका तन्त्र, पञ्चम पटल—चिच्छक्ति परिणाम-क्रम से ध्वनित होकर निर्मल विमलात्मक वर्ण-भाव को छोड़ती हुई षट्-चक्रों का भेदन कर सनातन शब्द-रूप को ग्रहण करती है। नाद-विन्दु से उसका समायुक्त होना 'चैतन्य' कहलाता है।

अथवा अनाहत चक्र के मध्य में ग्रथित उत्तम वर्ण सुषुम्ना-मार्ग से कण्ठ-देश को पहुँचता है। सहस्रार में परिणाम-क्रम से कर्णिका के मध्य में नाद-विन्दु से समन्वित होकर वह संस्थित होता है। इस प्रकार बारम्बार चिन्तन करने से 'चैतन्य' होता है। मन्त्र के अक्षर चिच्छक्ति में ग्रथित हैं, उन्हें सहस्रार के दल में ध्यान करे। मणिपूर में सदा चैतन्य-मन्त्र-रूपा, चैतन्यानन्द-दायिनी चैतन्य-नादशक्ति का ध्यान करे, जो चैतन्य-वर्ण-रूप मन्त्रों का प्राण-स्वरूप है।

अथवा काम-वीज **'क्लीं'**, रमा-वीज **'श्रीं'** और शक्ति-वीज **'ह्रीं'** का पहले उच्चारण करे। फिर **'अ'** से **'क्ष'** तक मातृका का उच्चारण कर मूल-मन्त्र को पुटित कर उसका १०८ बार जप करे। ऐसा करने से कोटि-कोटि गुण की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं।

अथवा सूर्य-मण्डल के मध्य में मूल-मन्त्र स्थित है, ऐसा ध्यान कर १०८ बार उसका जप करे। वहीं सनातन शिव-रूप गुरुदेव और ब्रह्म-रूपा सनातनी शक्ति का चिन्तन करे। इस प्रकार चिंतन करने-वाले को इस लोक में कुछ भी असाध्य नहीं रहता और मुक्ति उसके हाथ में रहती है।

प्रथम पटल—मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य और योनि-मुद्रा को जो नहीं जानता, उसे कल्प-कोटि-शत जप से भी सिद्धि नहीं मिलती।

सरस्वती तन्त्र—मन्त्रार्थ आदि के जाने विना शत-कोटि जप से भी विद्या सिद्ध नहीं होती।

मन्त्रार्थ

केवल भाव-बुद्धि से 'मन्त्रार्थ' का ज्ञान होता है। ज्ञान-योग से ही जीवन्मुक्ति होती है। काली, तारा, षोडशी—'महा-विद्यायें' हैं। भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, वगला, मातङ्गी और कमला—'विद्यायें' हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश और चारों वेदों द्वारा नमस्कृता हैं तथा भोग-मोक्ष की देनेवाली हैं। इनका मन्त्र ग्रहण करने मात्र से साधक जीवन्मुक्त होता है।

वरदा तन्त्र, षष्ठ पटल—'मन्त्रार्थ' के बिना कोटि साधनों द्वारा भी सिद्धि नहीं मिलती। पहले 'प्रासाद-वीज' (हौं) का अर्थ बताते हैं। यथा—

हौं—'ह' शिव-वाची, 'औ' सदा-शिव और शून्य (ं) दुःख-वाचक है। इस वीज से शिव की उपासना करे।

दुँ—'द' दुर्गा-वाचक, 'उ' रक्षा का बोधक, नाद (ँ) विश्व-माता का सूचक और विन्दु दुःख-नाश करने का द्योतक है। इस वीज से दुर्गा की आराधना करे।

क्रीँ—'क' काली का, 'र' ब्रह्म का, 'ई' महा-माया का, नाद विश्व-माता का और विन्दु दुःख-हरण का सूचक है। इस बीज से दुःख-शान्ति के लिये कालिका देवी की पूजा करे।

ह्रीँ—'ह' शिव-वाची, 'र' प्रकृति, 'ई' महा-माया, नाद विश्व-माता और विन्दु दुःख-हारक है। इस बीज से भुवनेश्वरी की पूजा करे।

श्रीँ—'श' महालक्ष्मी का बोधक, 'र' धन का सूचक, 'ई' तुष्टि का द्योतक, नाद परा-शक्ति और विन्दु दुःख-नाशक है। यह 'लक्ष्मी-बीज' है, इससे देवी की पूजा करे।

ऐं— 'ऐ' सरस्वती का बोधक है और विन्दु दुःख-हरण का सूचक है। यह 'सरस्वती-बीज' है। इससे वाणी की पूजा करे।

क्लीं—'क' काम-देव या कृष्ण का, 'ल' इन्द्र का, 'ई' तुष्टि का सूचक है और विन्दु सुख-दुःख-प्रद है। इस 'काम-बीज' का यही अर्थ है।

हूँ— 'ह' शिव, 'ऊ' भैरव, नाद परा-शक्ति और विन्दु दुःख-हारक है। यह 'वर्म-बीज है'।

गं—'ग' गणेश-वाचक और विन्दु दुःख-हरण का सूचक है।

ग्लौं—'ग' गणेश का, 'ल' व्यापक का, 'औ' तेज का और विन्दु दुःख-हरण का सूचक है। इस बीज से गणेश का पूजन करे।

क्ष्रौं—'क्ष' नृसिंह-वाची है, 'र' ब्रह्म का बोधक है, 'औ' ऊर्ध्व-दन्त का द्योतक है और विन्दु दुःख-हरण का सूचक है। इस बीज से नृसिंह की पूजा करे।

स्त्रीँ—'स' दुर्ग (सङ्कट) से पार लगाने का सूचक है, 'त' तारने का बोधक है, 'र' मुक्ति का द्योतक है, 'ई' महा-माया और नाद विश्व-माता है, विन्दु दुःख-हरण का अर्थ देता है। यह 'वधू-बीज' है।

स्वयम्भु द्वारा सबके नाम का आदि वर्ण कहा गया है। उसी से प्राप्य अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। जहाँ जैसी विभक्ति हो वहाँ वैसा ही मन्त्रार्थ में विचार करे।

मन्त्र में जहाँ दो विन्दु होते हैं, एक का अर्थ दुःख-हरण होता है और दूसरा विन्दु सुख देने का बोधक होता है। यदि मन्त्र में पुनः अन्य विन्दु-द्वय हो, तो उसे पूर्णार्थक समझना चाहिए। 'स्वाहा' का अर्थ मात्रा या पूरा होता है। 'वषट्' को शक्र-माता कहा है, जो हरि-प्रिया गिरा का सूचक है। 'फट्' सुर या देवता का बोधक है। हयग्रीव में विन्नि बीज का निदेश है।

'यं' बीज वायु-वाची है। 'लं' ऐन्द्र है। अनेक अक्षरवाले बीज में अपने-अपने नाम का स्व-बीज होता है। जहाँ एक बीज दो बार आए, वहाँ उनका अर्थ अलग-अलग समझना चाहिए।

'ईँ' बीज से पुटित कर मूल-मन्त्र का जप करने से 'मन्त्र' चैतन्य होता है, यह सुनिश्चित है।

सरस्वती तन्त्र, प्रथम पटल—मूलाधार में मूल-विद्या इष्ट-देवता का ध्यान करे कि वह शुद्ध-स्फटिक-जैसी आभावाली है और अक्षर-श्रेणी से वह सनातनी युक्त है। आधे मुहूर्त तक ऐसी भावना कर ध्यान में तत्पर हो। आधे मुहूर्त तक ध्यान कर चुकने पर मन से स्वाधिष्ठान में पहुँचकर वहाँ इष्ट-देवता का यह ध्यान करे कि वह बन्धूक पुष्प, जवा पुष्प या सिन्दूर के समान अरुण आभावाली है। साथ ही उस पद्म के मध्य में अक्षर-श्रेणी की भावना करे। तदनन्तर मणिपूर में प्रसन्नात्मा-रूप पक्षी के साथ जीव को ले जाकर इष्ट-देवता एवं अक्षर-श्रेणी का उसके मध्य में ध्यान करे। फिर शिरः-पद्म (सहस्रार) में शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशा इष्ट-देवी को विराजमाना ध्यान कर जीव-पक्षी के साथ हृत्पद्म में जाकर विशुद्ध

पद्म के ऊपर इष्ट-विद्या और अक्षर-श्रेणी का ध्यान करे कि वह महा-मरकत जैसी आभावाली है। इसके बाद आज्ञा में ब्रह्म-स्वरूपिणी इष्ट-विद्या को हरिद्-वर्ण ध्यान करे। इस प्रकार षट्-चक्रों में ध्यान करने से जो रूप उपलब्ध हो, उसी को मन्त्र का अर्थ समझना चाहिए।

कुल्लुका

सरस्वती तन्त्र, पटल ३ —तारा की कुल्लुका महा-नील-सरस्वती **'ह्रीं स्त्रीं हूं'** है। कालिका की कुल्लुका पञ्चाक्षरी है —काली, कूर्च, वधू, माया, फट् अर्थात् **'क्रीं हूँ स्त्रीं ह्रीं फट्'**। छिन्नमस्ता की कुल्लुका अष्टाक्षरी है—**'वज्र-वैरोचनीये हुं'**। सम्पत्-प्रदा की कुल्लुका भैरवी का प्रथम बीज **'ह्सैं'** है। श्रीमत्-त्रिपुर-सुन्दरी की कुल्लुका बारह अक्षर की है—पहले वाग्भव-बीज, फिर काम-बीज, तब लज्जा-बीज, उसके बाद त्रिपुरा, तब भगवती, फिर अन्त में ठ-द्वय अर्थात् **'ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरा भगवती स्वाहा'**। अथवा काम-बीज **'क्लीं'** मात्र उनकी कुल्लुका कही है। शम्भु की कुल्लुका प्रासाद-बीज **'हौं'** है। मञ्जुघोष की छः अक्षर है। भुवनेश्वरी की एकाक्षरी और विष्णु की अष्टाक्षरी अर्थात् **'ॐ नमो नारायणाय'** है। मातङ्गी का प्रथम बीज **'ॐ'**, धूमावती की माया **'ह्रीं'** कुल्लुका है। बाला की वधू-बीज **'स्त्रीं'** और लक्ष्मी की कुल्लुका निज-बीज **'श्रीं'** है। सरस्वती की वाग्भव **'ऐं'** और अन्नदा की अनङ्गका **'क्लीं'** कुल्लुका है। अन्य देवों के मन्त्र मात्र कहे हैं।

कुल्लुका न जानने में दोष

'कुल्लुका' को जाने बिना जो जप करता है, वह शीघ्र ही मृत्यु पाता है और सिद्धि की हानि होती है। जपादि सभी निष्फल होते हैं। अतः प्रयत्न करके 'कुल्लुका' को मूर्धा में धारण करे।

सेतु और उसके न जानने में दोष

विप्रों और क्षत्रियों का 'सेतु' प्रणव **'ॐ'** है, वैश्यों का **'फट्'** तथा शूद्रों का माया **'ह्रीं'** है। हृदय में 'सेतु' का जप किये बिना जो मन्त्र का उच्चारण करता है, वह किसी भी मन्त्र के जपने का अधिकारी नहीं होता।

महा-सेतु और उसका फल

सुन्दरी का महा-सेतु भुवनेश्वरी 'ह्रीं' है। कालिका का स्व-बीज 'क्रीं' और तारा का कूर्च-बीज 'हूं' है। अन्य मन्त्रों का महा-सेतु वधू-बीज 'स्त्रीं' है। पहले 'महा-सेतु' का जप कर अनन्य-चित्त से जो मन्त्र जपता है, वह धन में कुबेर-वत्, वाणी में वाणीश्वर-समान, युद्ध में यम-सदृश और स्त्रियों में कामदेव-वत् होता है। उसके लिये सभी समय जप के उपयुक्त होता है।

निर्वाण और उसके न जानने में दोष

पहले प्रणव 'ॐ' का उच्चारण कर मातृकाद्य 'अं' का उद्धार करे। फिर मूल-मन्त्र, तब वाग्भव 'ऐं' का उद्धार कर समस्त मातृका 'अ' से 'ल' तक का एवं पुनः प्रणव 'ॐ' का उद्धार करे। इस प्रकार पुटित मूल-मन्त्र का जप मणिपूर में करना ही 'निर्वाण' है। जो इसे नहीं जानता, उसे कल्प-कोटि-सहस्र जप करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती।

जप के आदि में मुख-शोधन और उसके न करने में दोष

पञ्चम पटल—मुख-शोधन न किये बिना जप-पूजा व्यर्थ होती है। अशुद्ध जिह्वा से जो जप करता है, वह पापी होता है। अतः प्रयत्न करके जिह्वा का शोधन करे। महा-त्रिपुर-सुन्दरी के मुख-शोधन का मन्त्र षडक्षर है—श्री-बीज, प्रणव, लक्ष्मी, तार, श्री और प्रणव अर्थात् 'श्रीं ॐ श्रीं

ॐ'। श्यामा के मुख-शोधन में नवाक्षरी विद्या है—३ निज-वीज, ३ प्रणव, ३ काम अर्थात् 'क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्लीं क्लीं क्लीं'। तारा की मुख-शोधन करनेवाली अमृत-वर्षिणी विद्या—त्र्यक्षरी है—'ह्रीं हूं ह्रीं'। दुर्गा का मुख-शोधन मन्त्र है— 'ऐं ऐं ऐं'। बगला का — 'ऐं ह्रीं ऐं'। मातङ्गी का —'ॐ ऐं ॐ'। लक्ष्मी का—'श्रीं'। धनदा और धूमावती का—'ॐ धूं ॐ'। अन्य मन्त्रों का मुख-शोधन प्रणव 'ॐ' के जप से हो जाता है।

अशुद्ध खान-पान, झूठ बोलने, झगड़ा करने आदि से जिह्वा दूषित हो जाती है। उसे शुद्ध किये बिना कभी जप न करे। शैव, शाक्त, वैष्णवादि सभी को इस नियम का अवश्य पालन करना चाहिये। जो मुख-शोधन न करके जप करता है, उसे मन्त्र-सिद्धि नहीं मिलती और अन्त में नरक की प्राप्ति होती है। देवता भी यदि मुख-शोधन किये बिना जप करे, तो उसका पतन होगा, फिर मनुष्य की क्या बात!

प्राण-योग

षष्ठ-पटल—प्राण बिना जैसे देह सभी कर्मों में असमर्थ रहती है, उसी प्रकार 'प्राण' के बिना सैकड़ों पुरश्चरण करने पर भी मन्त्र व्यर्थ होता है। माया 'ह्रीं' से पुटित कर मन्त्र को सात बार जपने से वह प्राणवान् होता है। सभी मन्त्रों के सम्बन्ध में यही विधि है।

दीपन और उसका फल

अन्धेरे गृह में जिस प्रकार कुछ भी दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार 'दीपनी' क्रिया के बिना मन्त्र रहता है। वेदादि 'ॐ' से पुटित कर मन्त्र को सात बार जप करने से मन्त्र का दीपन होता है। दोनों सूतकों से मुक्ति पाने के लिये प्रणव-पुटित मन्त्र का दस बार जप करे।

जप का क्रम और उसका फल

जप के क्रम का पालन करने से मनुष्य सिद्धों का अधिप होता है। आदि में गुरु आदि को नमस्कार, फिर क्रमशः मन्त्र-शिखा, मन्त्र-चैतन्य, मन्त्रार्थ-भावना, शिरःपद्म में गुरु का ध्यान, हृदय में इष्ट-देवता का ध्यान, कुल्लुका, सेतु, महा-सेतु, निर्वाण, योनि-मुद्रा की भावना, अङ्ग-न्यास, प्राणायाम, जिह्वा-शोधन, प्राण-योग, दीपनी, अशौच-भङ्ग, भ्रू-मध्य या नासिका के अग्र भाग में दृष्टि रखकर तब मूल-मन्त्र का जप करे। यही जप का क्रम है।

चतुर्थ पटल—मूर्ध्नि में कुल्लुका, हृदय में सेतु, विशुद्ध (कण्ठ-देश) में महा-सेतु, मणिपुर में निर्वाण का चिन्तन कर स्वाधिष्ठान में राकिणी के मूर्ध्नि में संस्थित काम-वीज 'क्लीं' का विधिवत् ध्यान कर मूलाधार से विशुद्ध तक विस्तृत बिस-तन्तु जैसी वेदी को जीव-सहित बारम्बार मूल-मन्त्र से आवृत ध्यान करे।

पुरश्चरण-सम्बन्धी विशेष विवरण

तन्त्रसार में विवरण दिया है। देखें 'हिन्दी तन्त्रसार' पृ० २८ से ४१।

कङ्काल-मालिनी तन्त्र—अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी के दिन सूर्योदय से आरम्भ कर अगले सूर्योदय तक जप करने से साधक निर्भय सर्व-सिद्धीश्वर होता है। अथवा दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्यास्त से आरम्भ कर अगले सूर्यास्त तक जप करे।

अथवा एकान्त स्थान में बैठकर सूर्योदय से आरम्भ कर सूर्यास्त तक दिन भर जप करे। अथवा उसी आसन पर सूर्यास्त से आरम्भ कर सूर्योदय तक जप करे।

अथवा सूर्योदय से आरम्भ कर दस-दस घटी तक वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर—ये छहों ऋतुएँ दिन-रात के समय क्रमशः रहती हैं। पूर्वाह्न को 'वसन्त', मध्याह्न को 'ग्रीष्म', अपराह्न को 'वर्षा', प्रदोष को 'शरद', अर्द्ध-रात्रि को 'हेमन्त' और शेष काल को 'शिशिर' माना गया है। सूर्योदय से आरम्भ कर वसन्त-काल के अन्त तक जप करने से पुरश्चरण सिद्ध होता है। तब शक्ति-युक्त होकर पूजादि कर गुरु को दक्षिणा प्रदान करे तो साधक सभी सिद्धियों का स्वामी होता है।

अथवा ग्रीष्मादि छहों ऋतुओं में अलग-अलग जप करे। पूर्वोक्त विधि से सभी कर्म करे। ऋतु-काल में जप कर ऋतु के अन्त में पूजन करे। इससे साधक सभी सम्पत्तियों का स्वामी होता है।

वार-पुरश्चरण

स्वतन्त्र तन्त्र—रविवार आदि सभी दिनों में उस वार की जो क्रम-संख्या हो, उतने ही (वार-संख्यक) सहस्र वार मन्त्र का सदैव जप करे। यह पुरश्चरण है, अतः इस विधि से जप कर दशांश-क्रम को पूर्ण कर गुरु को दक्षिणा प्रदान करे। इससे साधक की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

तिथि-पुरश्चरण

प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ कर कुहु (अमावास्या) तक तिथि-संख्या के अनुसार सहस्र-वृद्धि-क्रम से जप-संख्या बढ़ाता जाय। इस प्रकार जप करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी प्रकार प्रति-पदा से प्रारम्भ कर राका (पूर्णिमा) तक तिथि-संख्या-क्रम से जप करने से पुरश्चरण होता है, जिससे साधक सर्व-भाव से सम्पन्न होकर समृद्धि को प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं।

मास-नियत-कार्यों में पुरश्चरण का सङ्कल्प और दक्षिणा का वाक्य

एक मास तक हविष्यान्न खाकर प्रतिदिन एक सहस्र जप के पुरश्चरण के लिए सङ्कल्प करे—

अद्येत्यादि-वैशाखे कार्तिके माघे वा मासि अमुक-राशिस्थे भास्करे अमुक-पक्षेऽमुक-तिथावारभ्य अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देव-शर्मा अमुक-देवताया अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामोऽमुक-संक्रान्त्यामारभ्य मेष-तुला-मकरस्थ-र्रवि यावत् प्रत्यहममुक-देवताया अमुक-मन्त्र-सहस्र-संख्यक-जप-मेषादावनन्तर-तद्-दशांश-होम-तद्-दशांश-तर्पण-तद्-दशांश-अभिषेक-तद्-दशांश-ब्राह्मण-भोजन-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये।

पुरश्चरण पूर्ण होने पर सौर ज्येष्ठ, सौर मार्गशीर्ष या सौर फाल्गुन के प्रथम दिनों में होमादि कर दक्षिणा प्रदान करे।

पुरश्चरण की सम्पूर्णता हेतु निम्न प्रकार सङ्कल्प-पूर्वक गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान करे—

अद्येत्यादि कृतैतत् अमुके मासि अमुके-राशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुक-तिथौ अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देव-शर्मा अमुक-राशिस्थ-रवि-कालीनामुक-देवताया अमुक-मन्त्र इयत्-संख्यक-जप-तद्दशांश-होम-तद्दशांश-तर्पण-तद्दशांशाभिषेक-तद्दशांश-ब्राह्मण-भोजन-रूप - पुरश्चरण - कर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं वह्नि-दैवतं अमुक-गोत्राय श्रीअमुक-देव-शर्मणे गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे।

इसके बाद अच्छिद्रावधारण करे।

वारादि-पुरश्चरण के सङ्कल्प और दक्षिणा-वाक्य

वार-व्यापी पुरश्चरण हेतु निम्न प्रकार से सङ्कल्प करे—

अद्येत्यादि अमुके मासि अमुक-राशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुक-तिथावारभ्य अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देव-शर्मा अमुक-देवताया अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामः रविवारादि-सर्व-वारेषु अमुक-देवताया अमुक-मन्त्रस्य वार-संख्यक-सहस्र-जप-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये।

सङ्कल्प के अङ्ग-भूत दशांश होमादि के लिये पुरश्चरण के अन्तिम या अगले दिन निम्न प्रकार सङ्कल्प करे —

अद्येत्यादि कृतैतत् अमुक-देवताया अमुक-मन्त्रस्य रविवाराद्यधिकरणक-वार-संख्यक-सहस्र-जप-तद्दशांश-होम-तद्दशांश-तर्पण-तद्दशांशाभिषेक-तद्दशांश-ब्राह्मण-भोजन-कर्माण्यहं करिष्ये ।

वार-पुरश्चरण की सम्पूर्णता हेतु गुरुदेव को दक्षिणा देने का वाक्य—

अद्येत्यादि कृतैतत् रविवाराद्यधिकरणक-वार-संख्यक-सहस्र-जप-तद्दशांश-होम-तद्दशांश-तर्पण-तद्दशांशाभिषेक-तद्दशांश-ब्राह्मण-भोजन-रूप-पुरश्चरण-कर्मणः सांगतार्थं दक्षिणामिदमित्यादि ।

तिथि-पुरश्चरण में उक्त सङ्कल्पादि वाक्यों में जहाँ-जहाँ 'वार'-शब्द है, वहाँ 'तिथि' शब्द का प्रयोग करे ।

ऋतु-पुरश्चरण का सङ्कल्प

अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देव-शर्मा अमुक-देवताया अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामः सूर्योदयं समारभ्य वसन्तान्तं यावत् अमुक-देवताया अमुक-मन्त्रस्य जप-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये ।

केवल ग्रीष्म-ऋतु-व्यापी पुरश्चरण करना हो, तो निम्न वाक्य पढ़े—

ग्रीष्म-ऋतु-व्यापक-जप-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये ।

इसी प्रकार अन्य ऋतु के सम्बन्ध में समझे । जप पूर्ण होने पर दक्षिणा-वाक्य की योजना यथा ऋतु निम्न प्रकार कर ले—

अद्येत्यादि अमुक-देवताया अमुक-मन्त्रस्य वसन्त-ऋतु-व्यापक-जप-रूप-पुरश्चरण-कर्मणः सांगतार्थं दक्षिणामिदमित्यादि ।

तर्पण और अभिषेकादि

आचमन कर, सामान्यार्घ्य स्थापित कर, आसन-शुद्धि करे । फिर प्राणायाम, ऋष्यादि न्यास, कर और अङ्ग-न्यास कर ध्यान करे । तब मानसोपचारों से पूजा कर पुनः ध्यान कर जल में देवता का आवाहन कर उससे पाद्यादि अर्पित करे । यथा—

इदमुदकात्मकं पाद्यं अमुक-देवतायै नमः । इदमुदकात्मकमर्घ्यं इत्यादि ।

इस प्रकार उदकात्मक (जल-रूप) उपचारों से पूजा कर सन्ध्योक्त विधि से परिवार-देवताओं का तर्पण करे । यथा—

मूलं अमुक-देवतां तर्पयामि नमः ।

तर्पण कर चुकने पर अपनी आत्मा को देवता-रूप ध्यान कर निम्न मन्त्र से कुम्भ-मुद्रा द्वारा अपने सिर का अभिषिञ्चन करे—

मूलं नमः अमुक-देवतामहमभिषिञ्चामि ।

अन्त में संहार-मुद्रा से देवता का विसर्जन करे ।

श्रीदुर्गा का रहस्य-पुरश्चरण

स्वतन्त्र तन्त्र—मेष राशि में मन्त्र का दस सहस्र जप करने से पुरश्चरण होता है । वृष राशि में दस सहस्र जप करने से सिद्धि मिलती है । मिथुन में भी दस सहस्र जप करने से पुरश्चरण होता है । कर्क-राशि में प्रतिदिन सहस्र जप करने से सर्वार्थ-सिद्धि मिलती है । सिंह में सब मन्त्रों का दो अयुत जप करे, तो धर्मार्थ-काम-मोक्ष का फल निश्चय मिलता है । कन्या में बारह सहस्र जप करने से सब कामनाओं

को सिद्ध करनेवाला पुरश्चरण होता है। तुला में प्रतिदिन सहस्र वार जप करे। वृश्चिक में शय्या पर बैठकर अयुत जप करे, तो सर्वार्थ-सिद्धि होती है। धनु में अयुत जप से साधक कामदेव के समान धनी, बली और सुखी हीता है। मकर में प्रतिदिन चार अयुत जप करने से पुरश्चरण होता है। कुम्भ में अयुत जप से सर्वार्थ-सिद्धि होती है। मीन में दो अयुत जप से पुरश्चरण होता है।

जप सदा रात्रि में या युग्मावस्था में करे। पर-योषित के समागम में विशेष कर शय्या में जप करे। उस समय हविष्याशी रहे और एकाग्र मन से जप करे। जप पूर्ण कर दशांश कर्म करे और गुरुदेव को दक्षिणा देकर सिद्धि का अधिकारी बने।

नक्षत्र-पुरश्चरण और उसका फल

अश्विनी में सहस्र जप से सिद्धि मिलती है। भरणी में दो सहस्र जप करने से मृत्यु-भय दूर होकर अतुल धन प्राप्त होता है। कृत्तिका में दो सहस्र और रोहिणी में सहस्र या शत बार जप करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मृगशिरा में पाँच सहस्र जप करने से साधक वृहस्पति के समान होता है। आर्द्रा में छः सहस्र जप करने से सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। पुनर्वसु में नित्य सहस्र जप करने से देवत्व प्राप्त होता है। पुष्य में सात सहस्र जप करने से सुसिद्धि मिलती है। अश्लेषा में छः सहस्र जप से सर्वार्थ-सिद्धि होती है। मघा में दश सहस्र जप करने से साधक इन्द्र के समान पृथ्वी पर रहता है। तीनों पूर्वा में ग्यारह सहस्र जप करने से कुबेर के समान धनी होता है। तीनों उत्तरा में बारह सहस्र जप करने से सर्व-कामार्थ-सिद्धि होती है। हस्ता में तेरह सहस्र जप करने से साधक सूर्य के समान तेजस्वी होता है। चित्रा में दो सहस्र जप करने से साधक इन्द्र के समान पृथ्वी में विविध भोगों से सम्पन्न होता है। स्वाती में दो सहस्र जप से सर्वार्थ-सिद्धि मिलती है। विशाखा में चार सहस्र जप कर सोम-वत् प्रिय-दर्शन होता है। अनुराधा में सदा मन्त्र जप करने से पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर खेचर होता है। ज्येष्ठा में दो सहस्र जप से सिद्धि मिलती है। मूला में पाँच सहस्र जप से विविध सिद्धियाँ मिलती हैं। श्रवण में दो सहस्र जप से अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। धनिष्ठा में दो सहस्र जप से साधक वरुण के समान यशस्वी होता है। शतभिषा में दो सहस्र जप से सभी पापों से मुक्ति मिलती है। रेवती में चार सहस्र जप कर स्तुति करने से सोम-लोक की प्राप्ति होती है।

रात्रि में, या मिथुनावस्था में, शय्या पर व्यवस्थित होकर साधक नित्य जप कर अपना हित-साधन करे। दिवा-काल में सदा पवित्र और हविष्याशी रहे। गुरुदेव को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा प्रदान करे।

करण और योग में पुरश्चरण और उसका फल

'बव' आदि करणों और 'विष्कुम्भ' आदि योगों में उनकी संख्या के अनुसार सहस्र-संख्यक जप करने से साधक सर्व-सिद्धियाँ प्राप्त करता है। तन्त्र में इसे पुरश्चरण बताया है।

संक्रान्ति-पुरश्चरण और उसका फल

विषुव आदि सभी संक्रान्तियों में संक्रान्ति के अनुसार सहस्र-वृद्धि-पूर्वक जप करे। धनार्थी सदा पूर्व-मुख होकर, शत्रु-नाश के लिये पश्चिम या दक्षिण-मुख, लोक-वशीकरण हेतु या मुक्ति के लिये उत्तराभिमुख होकर निरन्तर जप करे।

ग्रहण-पुरश्चरण और उसका फल

राहु का दर्शन आँखों से हो, तो 'ग्रहण' का समय माना जाता है। राहु चण्डाल-स्वरूप है, ऐसी किंवदन्ती है। फिर भी उसका दर्शन पुण्य काल प्रस्तुत करता है।

मातृकाभेद तन्त्र, षष्ठ पटल—चन्द्र, सूर्य और अग्नि के संयोग से ग्रहण तीन प्रकार के होते हैं। शक्ति के ललाट के नेत्र में सदा वह्नि (अग्नि) का निवास है। उसके बाँएँ नेत्र में चन्द्र और दाँएँ नेत्र में सूर्य प्रतिष्ठित है। शम्भु के रमण-काल में वाम-नेत्र के चुम्बित होने पर चन्द्र-ग्रहण, दक्ष-नेत्र के चुम्बित होने पर सूर्य-ग्रहण और ललाट के चुम्बित होने पर अग्नि-ग्रहण होता है। शिव-शक्ति के समायोग का समय ब्रह्म-मय होता है। उस समय राशि आदि का विचार नहीं किया जाता। तिथि-नक्षत्र-संयोग से जो योग बनता है, उसी में राशि आदि की गणना की जाती है। शिव-शक्ति के समायोग से सारा जगत् ब्रह्म-मय हो जाता है। अतः उस समय मास, पक्ष, तिथि आदि का उच्चारण न करे। दर्शन मात्र जप से करे, तो निश्चय ही सिद्धि मिलती है। ग्रहण का यह काल श्रेष्ठ काल होता है, इसमें किये गये जप का फल अनन्त होता है। जप के दशांश होमादि करने की भी आवश्यकता नहीं होती।

गायत्री तन्त्र, प्रथम ब्राह्मण-परिच्छेद—चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में जप कर साधक ब्रह्म-मय हो जाता है, मन्त्र का होमादि न करे। होमादि के करने से ग्रहण-कालीन जप निष्फल होता है। जप मात्र से वह मन्त्र अनन्त-स्वरूप होता है। अनन्त का दशांश कैसे सम्भव है!

शाक्तानन्द-तरङ्गिणी, द्वादशोल्लास में उद्धृत बीजार्णव तन्त्र, षोडश पटल—ग्रहण-काल को देखकर स्नान, सन्ध्या, प्राणायाम, भूत-शुद्धि, पूजादि सबको छोड़ दे अन्यथा वह पुण्य काल हाथ से निकल जायगा। मानस सङ्कल्प कर जप करे। पञ्चाङ्ग से विहीन होने पर भी वह जप सिद्ध होता है, इसमें संदेह नहीं। मन्त्र, विद्या, कवच, स्तव, ध्यान और न्यास ग्रहण-काल में एक बार उच्चारण करने पर ही दश-कोटि हो जाते हैं। चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में किया गया जप असंख्य होता है। अतः उस काल में संख्या के अनुसार जप न करे। होम, अभिषेक, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन ग्रहण-कालीन पुरश्चरण के सम्बन्ध में नहीं किए जाते। संकल्प भी मानस ही कर्त्तव्य है। मानस सङ्कल्प चतुर्वर्ग के फल का देनेवाला है। ग्रहण-काल में स्थूल सङ्कल्प व्यर्थ है। सङ्कल्प के बिना जो कुछ किया जाता है, वह व्यर्थ होता है, अतः मानस सङ्कल्प ही श्रेष्ठ है।

बीजार्णव तन्त्र—प्रथम प्रहर में जब चन्द्र-ग्रहण हो, तब उस दिन भोजन करने से नरक की प्राप्ति होती है। अतः निशीथ (रात्रि) काल में जब चन्द्रमा को अन्धकार ढँक ले, तब उस समय खा-पीकर आनन्द-मय हो। चन्द्रग्रहण-काल में जप-यज्ञादि करे। रात्रि में खा-पीकर जप-यज्ञादि करना चाहिए। सभी विष्णु-मन्त्रों में तथा सूर्य, गणपति, शक्ति मन्त्र के सम्बन्ध में सतत—निरन्तर जप ही प्रशस्त है। यह विधान ज्ञानियों और अज्ञानियों दोनों के लिए विहित है।

गन्धर्व तन्त्र—अथवा पुरश्चरण की अन्य विधि यह है कि सूर्य या चन्द्र-ग्रहण-काल के पूर्व उपवास रखकर समुद्र-गामी नदी में नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर ग्रहण के आदि से लेकर मोक्ष तक एकाग्र होकर मन्त्र का जप करे। देखकर, स्नान कर, सङ्कल्प कर विमोक्ष के अन्त तक जप करे। जप के दशांश से यथा-विधि होम करे। होम न कर सके, तो दशांश का दुगुना जप करे। होम का दशांश तर्पण करे। अभिषेक का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराये। अन्त में महा-पूजा कर गुरुदेव को दक्षिणा देकर विप्रों को तर्पण कराये।

काली-तन्त्र—चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में ग्रास से लेकर मुक्ति तक जितनी जप-संख्या हो, उतनी ही संख्या में होमादिक करे।

यामल—शुद्ध जल में स्नान कर, पवित्र स्नान कर, पवित्र स्थान में बैठकर, ग्रास से मुक्ति तक अनन्य मन से जप करे। इस जप का फल निश्चित रूप से प्राप्त होता है।

ग्रहण के पूर्व दिन में उपवास करने में असमर्थ व्यक्ति के लिए फल, दुग्धादि भोजन का कोई प्रमाण न होने से उचित यह है कि हविष्याशी रहे। इस प्रकार उपवास किए बिना भी पुरश्चरण कर सकता है, ऐसा गुरुओं का मत है।

सनत्कुमारीय—श्राद्ध आदि के कारण यदि कोई जप का त्याग करता है, तो वह देवता का द्रोही बनता है और सात पितरों तक को अधः पतित करता है; यह पुरश्चरण आरम्भ कर चुकनेवाले व्यक्ति के लिए निर्देश है।

माला और उसका फल

नित्या तन्त्र, नवम पटल—मातृका-वर्ण-रूपिणी अक्ष-माला भोग और मोक्ष देनेवाली, राज-वश्य-कारिणी और सर्व-सिद्धि-दायिनी है। मुक्ता (मोती), स्फटिक और रुद्राक्ष की माला से मोक्ष और समृद्धि मिलती है। प्रवाल (मूँगे) की माला वश्यदा और कर्म-साधिनी है। माणिक्य की माला साम्राज्य-दायिनी है। पुत्र-जीवक की माला विद्या और लक्ष्मी देनेवाली है। पद्म-बीज की माला से महती लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, रक्त-चन्दन की माला वश्य-फल-दायिनी है।

मुण्ड-माला तन्त्र, द्वितीय पटल—स्फटिक से मोक्ष, रुद्राक्षों से बहु पुत्र, जीव-पुत्र से धन, पाषाण से मोक्ष लाभ होता है। शुद्ध स्फटिक-माला सम्पत्ति-प्रदायिनी है। श्मशान-धुस्तुर की माला धूमावती के मन्त्र में उपयोगी है। मणि, रत्न, प्रवाल, स्वर्ण, रजत और कुश-ग्रन्थि की माला सर्व-भोग-फल देती है।

समयाचार तन्त्र, द्वितीय पटल—पूर्वाम्नाय आदि सभी आम्नायों में उपयोगी माला बताते हैं, जिनसे जप करने से शीघ्र ही देव-दुर्लभ फल मिलता है। पहली है मातृकाक्षर-स्वरूपा अक्ष-माला। मुक्ता (मोती) की माला रति और मोक्ष-फल को देती है, सर्व-सिद्धि-दायिनी एवं सर्व-राज-वशङ्करी है। प्रवाल (मूँगे) की माला वश्य के लिए सब कार्यों का फल देनेवाली है। माणिक्य से बनी माला साम्राज्य-फल देती है। पुत्र-जीवक माला लक्ष्मी और विद्या-दायिनी है। पद्माक्ष की माला सदा यश और लक्ष्मी देती है। स्वर्ण और स्फटिक की माला सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। रक्त-चन्दन की मात्रा भोग और मोक्ष-दायिनी है। रुद्राक्ष की माला से सभी कामनाएँ पूरी होती हैं।

चन्दन से लिप्त कर सभी प्रकार की माला का पूजन कर जप हेतु ग्रहण करे, तो कथित फल प्राप्त होता है। ये मालायें पाँचों आम्नायों में मान्य हैं।

मुण्ड-माला तन्त्र—अक्ष-माला काम्य-भेद से अनेक प्रकार की है। अनुलोम-विलोम के क्रम से वर्णों द्वारा बनी माला में 'अ' से प्रारम्भ कर 'ळ' तक, फिर 'ळ' से प्रारम्भ कर 'अ' तक जप करते हैं। 'क्ष' सुमेरु रूप में रहता है, उसका लङ्घन कभी न करे।

मेरु से रहित माला अशुद्ध होती है। उसमें जप करना निष्फल होता है। चित्रिणी विस-तन्तु की आभावाली ब्रह्म-नाड़ी के अन्तर्गता है, उससे गुथी हुई माला सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। १०८ जप में आदि-क्लीव अर्थात् 'ऋ ॠ ऌ ॡ' को दो बार प्रयोग में लाए। अथवा आठ वर्गों के प्रथम आठ वर्णों—'अ क च ट त प य श' का प्रयोग करे।

नित्या-तन्त्र—चन्दन से अक्ष-माला की पूजा कर उसमें एकाग्र बुद्धि से लक्ष बार जप करे, तो सात द्वीपों की सभी स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। फिर दो लक्ष जप करे, तो पाताल-तल की कन्यायें वश में आती

हैं। तव तीन लक्ष जपने से देवाङ्गनायें वशीभूत होती हैं और कोटि महा-पापों का नाश होकर सुख, सौभाग्य और सौन्दर्य प्राप्त होता है। चार लक्ष जप करने से साधक महा-योगीश्वर होता है। पाँच लक्ष जप से कुबेर का पद मिलता है। छः लक्ष जप से सब विद्याओं में दक्ष होता है। आठ लक्ष जप से मनुष्य अणिमा आदि आठ सिद्धियों का नायक बनकर देव-पूज्य होता है और राजा लोग एवं विशेष कर स्त्रियाँ उसके वशीभूत होती हैं। जो साधक नौ लक्ष जप करता है, वह साक्षात् रुद्र-स्वरूप बन जाता है।

समयाचार तन्त्र—उत्तराम्नाय में वर्ण-मयी माला श्रेष्ठ मानी है। महा-शङ्ख की माला अभीष्ट फल-दायिनी है।

योगिनी तन्त्र, पूर्व-खण्ड, द्वितीय पटल—वर्ण-माला सब मन्त्रों को दीप्त करनेवाली शुभ माला है। उसकी प्रतिनिधि महा-शङ्ख-मयी माला है। जिसके हाथ में महा-शङ्ख है, उसे शीघ्र सिद्धि मिलती है। उसके अभाव में स्फटिक की माला सर्व-सिद्धिदा है।

मुण्ड-माला तन्त्र—३० मणि की माला से ऐश्वर्य, २५ मणि से मोक्ष, १४ से मोक्ष और योग-वृद्धि, १५ से मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, वश्य, बोधन और अञ्जन की सिद्धि मिलती है। पादुका-सिद्धि-समूह में १०० संख्यक मणि प्रशस्त हैं। अथवा सर्व-काम-दायक १०८ मणियों की माला का प्रयोग करे।

योगिनी तन्त्र—मोक्ष के लिए २५, पुष्टि के लिए २७, धन-सिद्धि के लिए ३०, मन्त्र-सिद्धि के लिए ५०, सर्व-सिद्धि के लिए १०८ मणियों की माला निर्दिष्ट है। जप में दन्त-माला का प्रयोग करे। गले में भी वह धारण करने से शुभदा है। राज-दन्त का उसमें मेरु बनाए।

माला के अभाव में काम्य कर्म का भी जप कर-माला में कर सकते हैं। इस माला में अँगूठे सहित अँगुलियों में जप करे। अँगूठे के बिना किया गया जप निष्फल होता है।

उत्पत्ति तन्त्र, प्रथम पटल—नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीनों जप कर-माला में करे क्योंकि वह सब दोषों से रहित है। कर-माला में कभी छिन्न, भिन्न आदि दोष नहीं होते। कर (हाथ) अक्षय है, अतः कर-माला भी वैसी ही अक्षय फल-दायिनी है।

योगिनी-तन्त्र—पहले व्रत (उपवास) रखकर पवित्र हो एकान्त-स्थान में भक्तिपूर्वक पूजा कर मौन रहते हुए माला को साधक स्वयं गूँथे। माला की मणियों का कामनानुसार संग्रह करने में भी ध्यान रखे कि नित्य-क्रिया से शुद्ध होकर शुभ समय में मणियों को लाये। मणियाँ समान रूपवाली हों, न बहुत बड़ी और न बहुत छोटी। कीड़ों द्वारा खाई हुई या पुरानी न हों। फिर एक-एक मणि को अलग-अलग पञ्च-गव्य से धोये। ब्राह्मण या धर्म-निष्ठा स्त्री द्वारा पट्ट-वस्त्र (रेशमी) का त्रिगुणात्मक सूत्र (डोरा) प्रस्तुत कराये। शान्ति और वश्य कर्म के लिए श्वेत, रक्त और पीत वर्ण के सूत्रों को त्रिगुणित करे। इस प्रकार के सूत्र को पूर्वोक्त विधि से धोकर एक-एक माला को प्रस्तुत करे। मणियों के मुख को मुख से और उसके पुच्छ (पिछले भाग) को पुच्छ से मिलाकर गो-पुच्छ अर्थात् गाय की पूँछ के आकार की या सर्पाकार माला बनानी चाहिए। जो मणि हो, उसी जाति की एक मणि को मेरु-रूप में सबसे आगे गूँथ लेना चाहिए। एक-एक मणि के मध्य में ब्रह्म-ग्रन्थि की कल्पना करे।

उत्पत्ति तन्त्र, षष्टि पटल—क्रमोत्क्रम अर्थात् अनुलोम-विलोम से पचास वर्णों की माला द्वारा सौ-संख्यक जो जप किया जाता है, वह उत्तम कहा गया है।

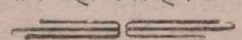

दूसरा परिच्छेद

साधना-उपयोगी स्थान से प्रायश्चित्त तक

साधना के उपयोगी स्थान

शारदा, द्वितीय पटल—नदी का तट, गुफा, पर्वत की चोटी, तीर्थ-स्थान, नदियों का सङ्गम, एकान्त उद्यान (उपवन), बिल्व का मूल-स्थान, पर्वत की तलहटी, देव-मन्दिर, समुद्र का तट और अपना घर—ये सब मन्त्र-साधना के लिए प्रशस्त स्थान हैं। नदी का तट किसी पवित्र नदी का होना चाहिये क्योंकि सामान्य नदी का तट निषिद्ध है।

राघव भट्ट—पश्चिमाभिमुखी शिव का स्थान, जहाँ वृषभादि न हों, अश्वत्थ, बिल्व, तुलसी का वन, जहाँ अन्य पुष्प भी हों, गोशाला और अश्वत्थ का मूल स्थान—ये सब जपादि कर्म के लिए उत्तम है। गोशाला से तात्पर्य है कि गाय से सम्बन्धित स्थान अर्थात् गाय के निकट बैठकर जप करना प्रशस्त है।

वायवीय संहिता—सूर्य के आगे तथा गुरु, चन्द्र, दीपक, जल, ब्राह्मणों और गायों के समीप जप करना उत्तम है। अथवा जहाँ चित्त को प्रसन्नता हो, वहीं रहकर जप करे।

मुण्ड-माला तन्त्र, तृतीय पटल—नदी-तट, बिल्व-मूल, श्मशान, शून्य गृह, एक-लिङ्ग मन्दिर देवालय, चतुष्पथ (चौराहा), शव के ऊपर, गले तक गहरे जल में, युद्धभूमि, योनि-स्थान, एकान्त वन या किसी भी रमणीय स्थान में जहाँ मन तल्लीन हो जाय।

वृहन्नील तन्त्र, द्वितीय पटल—एक-लिङ्ग, श्मशान, शून्य-गृह, चतुष्पथ या हर्म्य (महल या भवन) में सर्वाभीष्ट-दायिनी देवी की साधना करे।

श्यमा-रहस्य—'एक-लिङ्ग' का लक्षण यह है कि पाँच कोश (दस मील) के भीतर जहाँ दूसरा शिव-लिङ्ग न हो। ऐसे स्थान में उत्तम सिद्धि मिलती है।

नित्या तन्त्र, प्रथम पटल—पाताल-भवन अर्थात् भूमि का मध्य स्थान, शक्ति-क्षेत्र, महा-पीठ, शिव-मन्दिर, धात्री (आँवला) वृक्ष के नीचे का स्थान।

समयाचार तन्त्र, द्वितीय पटल— सिद्ध पीठ, सिद्ध पीठ में विशेष कर खाट की शय्या, चतुष्पथ, सिद्ध-शिवलिङ्ग, गुरु-गृह और देवालय, वट-अश्वत्थ-विल्व के मूल-थान, रम्भा (केले) का वन, नदी का किनारा, शिवालय, गुफा, पर्वत-शिखर—ये जप के स्थान कहे हैं। उत्तराम्नाय के लिए विशेषकर कहा है कि वेश्यालय या श्मशान में जाकर मैथुनोपरान्त जपादि करने से फल मिलता है अथवा अपने घर में रात्रि में भक्ति-पूर्वक सविधि जप करे तो निश्चित ही सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं।

पुरश्चरण-रसोल्लास तन्त्र, चतुर्थ पटल—गोष्ठ (गोशाला), चतुष्पथ, त्रि-पथ (तिराहा), निर्जन अरण्य (जंगल), शून्य गृह, पर्वत, नदी या झील का तट, अश्वत्थ-वट-धात्री या वकुल वृक्ष के नीचे, श्वेत या रक्त पद्म अथवा अरुण रंग के द्रोण-पुष्प का वन।

अन्नदा कल्प, द्वितीय पटल—गो-शाला, गुरु-गृह, बिल्व-मूल, नदी-तट, पर्वत, शिवलिङ्ग के समीप, अपना घर, पवित्र भवन, साधक-मन्दिर, श्रीदुर्गा-प्रतिमा के समीप, युवतियों के निकट। इन स्थानों में दीक्षा-कर्म प्रशस्त है।

राघव भट्ट—अपने घर में जप करना सामान्य है, गोशाला में जप शत-गुणा, आराम (उद्यान) या अरण्य में सहस्र-गुणा, पर्वत पर अयुत-गुणा, नदी में लक्ष-गुणा, देवालय में कोटि-गुणा और शिव-समीप जपअनन्त-गुणा फल-दायक होता है।

सिद्ध-पीठ

कुब्जिका तन्त्र, सप्तम पटल—सिद्ध-पीठ में साधना करने मात्र से मनुष्य सब सिद्धियों का स्वामी होता है। ये हैं—१ मायावती, २ मधुपुरी, ३ काशी, ४ गोरक्ष-कारिणी, ५ हिंगुला, ६ जालन्धर, ७ ज्वालामुखी, ८ नगर, ९ रामगिरि, १० गोदावरी, ११ नेपाल, १२ कर्ण-सूत्र, १३ महा-कर्ण, १४ अयोध्या, १५ सिंहनाद, १६ मणिपुर, १७ हृषिकेश, १८ प्रयाग, १९ तपोवन, २० बदरी, २१ अम्बिका, २२ अर्द्ध-नाल, २३ त्रिवेणी, २४ गङ्गासागर-सङ्गम, २५ नारिकेल, २६ विरजा, २७ उड्डीयान, २८ कमला, २९ विमला, ३० माहिष्मती, ३१ वाराही, ३२ त्रिपुरा, ३३ वाग्मती, ३४ नील-वाहिनी, ३५ गोवर्द्धन, ३६ विन्ध्य-गिरि, ३७ काम-रूप, ३८ घण्टा-कर्ण, ३९ हय-ग्रीव, ४० माधव, ४१ क्षीर-ग्राम, ४२ वैद्यनाथ।

कामरूप की महिमा

'कामरूप' सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाला महा-पीठ है। कलियुग में वहाँ जप करने से शीघ्र फल मिलता है। कामाख्या के वस्त्र को लेकर जप-पूजा करने से साधक पूर्ण-काम होता है, यह निस्सन्देह सर्वथा सत्य है।

पीठ-निरूपण और उसका फल

तन्त्र-चूड़ामणि—५१ पीठ हैं, जो विष्णु के चक्र द्वारा काटे गए सती के अङ्ग प्रत्यङ्गों के गिरने से संस्थापित हुए हैं। इन पीठों से संबन्धित अंग, स्थान-भैरव और शक्ति का विवरण इस प्रकार है—

अंग	स्थान	भैरव	शक्ति
१ ब्रह्म-रन्ध्र	हिंगुला	भीम-लोचन	कोट्टरी
२ त्रि-नेत्र	करवीर	क्रोधीश	महिष-मर्दिनी
३ नासिका	सुगन्धा	त्र्यम्बक	सुनन्दा
४ कण्ठ	काश्मीर	त्रि-सन्ध्येश्वर	महा-माया (गुणातीता)
५ जिह्वा	ज्वाला-मुखी	उन्मत्त	अम्बिका (सिद्धिदा)
६ स्तन	जालन्धर	भीषण	त्रिपुर-मालिनी
७ हृदय	वैद्यनाथ	वैद्यनाथ	जय-दुर्गा
८ जानु	नेपाल	कपाली	महा-माया
९ दक्ष-हस्त	मानस	अमर	दाक्षायणी
१० नाभि	उत्कल (विरजा क्षेत्र)	जगन्नाथ	विमला
११ गण्ड	गण्डकी	चक्रपाणि	गण्डकी चण्डी
१२ वाम-बाहु	बहुला	भीरुक	बहुला
१३ कूर्पर	उज्जयिनी	कपिलाम्बर	मङ्गल-चण्डिका
१४ दक्ष-बाहु	चट्टल	चन्द्र-शेखर	भवानी (व्यक्त-रूपा)
१५ दक्ष-पाद	त्रिपुरा	त्रिपुरेश	त्रिपुर-सुन्दरी
१६ वाम-पाद	त्रि-स्रोता	ईश्वर	भ्रामरी

१७ योनि	काम-गिरि	उमानन्द	कामाख्या
१८ हस्तांगुली-वृन्द	प्रयाग	भव	ललिता
१९ वाम-जङ्घा	जयन्ती	कुमुदीश्वर	जयन्ती
२० दक्ष-पादांगुष्ठ	युगाद्या काली-पीठ	क्षीर-कण्ठ	भूत-धात्री(महा-माया)
२१ किरीट	किरीट	सम्वर्त्त	विमला (भुवनेशी)
२२ कुण्डल	वाराणसी(मणिकर्णिका)	काल	विशालाक्षी
२३ पृष्ठ	कन्याश्रम	निमिष	शर्वाणी
२४ गुल्फ (दक्षिण)	कुरुक्षेत्र	अश्व-नाथ स्थाणु	सावित्री
२५ मणि-बन्ध	मणिवेद	सर्वानन्द	गायत्री
२६ ग्रीवा	श्री शैल	संवरानन्द	महा-लक्ष्मी
२७ कङ्काल	काञ्ची	रुरु	देव-गर्भा
२८ नितम्ब (दक्ष)	काल-माधव	काली	काली
२९ नितम्ब (वाम)	शोण	भद्रसेन	नर्मदा
३० नाला	राम-गिरि	चण्ड	शिवानी
३१ केश-जाल	वृन्दावन	भूतेश	उमा
३२ ऊर्ध्व-दन्त	शुचि	संहार	नारायणी
३३ अधो-दन्त	पञ्च-सागर	महा-रुद्र	वाराही
३४ वाम कर्ण	कर-तोया-तट	वामन	अपर्णा
३५ दक्ष-गुल्फ	श्री-पर्वत	सुनन्दानन्द	श्रीसुन्दरी परा
३६ वाम-गुल्फ	विभाषक	सर्वानन्द (महादेव)	कपालिनी (भीम-रूपा)
३७ उदर	प्रभास	वक्रतुण्ड	चन्द्रभागा (यशस्विनी)
३८ ऊर्ध्व ओष्ठ	भैरव-पर्वत	लम्ब-कर्ण	अवन्ती
३९ चिबुक	किकुभ (जल-स्थल)	सर्व-सिद्धीश	भ्रामरी
४० गण्ड (दक्ष)	गोदावरी-तट	(दण्ड-पाणि) विश्वेश	विश्व-मातृका
४१ वाम-गण्ड	गोदावरी-तट	वत्स	राकिणी
४२ दक्ष-स्कन्ध	रत्नावली	शिव	कुमारी
४३ वाम-स्कन्ध	मिथिला	महोदर	महा-देवी
४४ नला	नलाहाटी	योगीश	कालिका
४५ मुण्ड	काली-घाट	क्रोधीश	जय-दुर्गा
४६ मन	वक्रेश्वर	वक्र-नाथ	महिष-मर्दिनी
४७ पाणि	यशोहर	चण्ड	यशोहरेश्वरी
४८ ओष्ठ	अट्टहास	विश्वेश	फुल्लरा
४९ हार	नन्दि-पुर	नन्दिकेश्वर	नन्दिनी
५० नूपुर	लङ्का	राक्षसेश्वर	इन्द्राक्षी
५१ पादांगुलि	विराट	अमृत	अम्बिका

[पीठों का सार-सर्भित विवेचन 'ललिता पीठ प्रयाग' नामक पुस्तिका में देखें।]

पीठ के भैरव और शक्ति को जानकर ही वहाँ जप-पूजन करने से सिद्धि प्राप्त होती है। उन्हें जाने विना जपादि करने से भैरव सारी साधना का हरण कर लेते हैं और कोटि जप से भी कोई फल नहीं मिलता।

महा-नील तन्त्र, पञ्चम पटल—पीठ का अर्चन करने से उत्तम सिद्धि मिलती है। सब पीठों में श्रेष्ठ पीठ 'काम-रूप' है। वहाँ एक बार भी पूजा करनेवाले साधक की देह में देवी निवास करती हैं। 'काम-रूप' से शत-गुणा फल-दायक 'कामाख्या-योनि-मण्डल' है। उसमें कोटि गुणों के साथ तारिणी का वास है। ब्रह्मा द्वारा यह पीठ गुप्त रखा गया है क्योंकि यहाँ देव, वेद, मुनि सभी का आविर्भाव होता है। यह द्वि-विध पीठ महान् पुण्य का देनेवाला है।

पीठ-देवता और उनके स्थान

पीठ-प्रसङ्ग में निम्न श्रेष्ठ स्थान बताए हैं, जो सिद्धि-प्रद हैं और जहाँ महान् साधुओं ने साधना की है। यथा—१ पुष्कर, २ गया, ३ अक्षय वट, ४ वराह पर्वत, ५ अमर-कण्टक, ६ नर्मदा, ७ यमुना, ८ पिङ्गा, ९ गङ्गा-द्वार, १० गङ्गा-सागर-सङ्गम, ११ कुशावर्त, १२ विल्वक, १३ श्री-नील-पर्वत, १४ कलम्ब, १५ कुब्जक, १६ भृगु-तुङ्ग, १७ केदार १८ महालय, १९ ललिता, २० सुगन्धा, २१ शाकम्भरी-पुर, २२ कर्ण-तीर्थ, २३ महा-गङ्गा, २४ लग्निकाश्रम, २५ कुमार, २६ प्रभास, २७ धन्या, २८ सरस्वती, २९ अगस्त्याश्रम, ३० कण्वाश्रम, ३१ कौशिकी, ३२ सरयू, ३३ शोण, ३४ ज्योतिःसर, ३५ कालोदक, ३६ उत्तर-मानस, ३७ मातङ्ग-वापी, ३८ सप्तार्चि, ३९ महा-विष्णु-पद, ४० वैद्यनाथ, ४१ कालञ्जर गिरि, ४२ रामोच्छेद, ४३ गर्गोच्छेद, ४४ हरोच्छेद, ४५ महानल, ४६ भद्रेश्वर, ४७ लक्ष्मणच्छेद, ४८ कावेरी, ४९ कपिलोदका, ५० सोमेश्वर, ५१ कृष्ण-वेण्या-प्रभेदक, ५२ शुक्ल-तीर्थ, ५३ पाटला, ५४ महा-बोधि, ५५ नाग-तीर्थ, ५६ मदन्तिका, ५७ रामेश्वर, ५८ मेघ-वन, ५९ ऐलेयक वन, ६० गोवर्धन, ६१ अज-प्रिय, ६२ हरिश्चन्द्र, ६३ पुरश्चन्द्र, ६४ पृथूदक, ६५ इन्द्र-नील, ६६ महा-नाद, ६७ मैनाक, ६८ पञ्चासर, ६९ पञ्च-वटी, ७० पर्वतिका, ७१ वटी, ७२ गङ्गा-विल्व, ७३ नाद-वट, ७४ गङ्गाराम पर्वत, ७५ ऋण-मोचन, ७६ गौतमेश्वर, ७७ वशिष्ठ-तीर्थ, ७८ हारीत, ७९ ब्रह्मावर्त, ८० कुशावर्त, ८१ हंस-तीर्थ, ८२ पिण्डारक वन, ८३ हरि-द्वार, ८४ वदरी-तीर्थ, ८५ राम-तीर्थ, ८६ जयन्त, ८७ विजयन्त, ८८ विजया, ८९ शारदा-तीर्थ, ९० भद्र-कालेश्वर, ९१ अश्व-तीर्थ, ९२ ओघवती नदी, ९३ अश्व-प्रद तीर्थ, ९४ छाग-लिङ्ग, ९५ मातृ-गण, ९६ करवीर-पुर, ९७ सप्त-गोदावर तीर्थ, ९८ लिङ्ग-तीर्थ, ९९ सर्व-मोहन, १०० उत्तर में किरीट तीर्थ, १०१ दक्षिण में उत्तम तीर्थ, १०२ विशाल तीर्थ, १०३ काली-वन १०४ वृन्दावन, १०५ ज्वालामुखी, १०६ हिंगुला, १०७ गणेश्वर तीर्थ, १०८ महा-तीर्थ।

इन तीर्थों में सिद्धि-परायण सभी देवों, महर्षियों, पितरों और योगियों का वास है। श्रद्धा-वान् लोगों के सभी कर्म यहाँ शीघ्र ही सिद्ध होते हैं। पुण्य-काल में पाठ और हव करने से पितृ-गण परम सुखी होते हैं।

अब जहाँ जो देवता हैं, उनके नाम बताते हैं। यथा—पुष्कर में कमलाक्षी, गया में गयेश्वरी, अक्षय-वट में अक्षया, अमर-कण्टक में अमरेश, वराह पर्वत में वाराही, नर्मदा में नर्मदा, यमुना में कालिन्दी, गङ्गा में शिवामृता, देहलिकाश्रम में अश्वा, सरयू-तीर में शारदा, शोण में कनकेश्वरी, सागर-सङ्गम में ज्योतिर्मयी, श्रीगिरि में श्री, कालोदक में काली, महा-तीर्थ में महोदरी, उत्तर-मानस में नीला,

मातङ्गिनी में मातङ्गी, विष्णु-पाद में गुप्तार्चि, स्वर्ग-मार्ग में स्वर्गदा, गोदावरी में गवेश्वरी, गोमती में विमुक्ति, विपाशा में महा-वला, शतद्रु में शत-रूपा और चन्द्र-भागा, ऐरावती में ईर्नामा, सिद्धि-तीर में सिद्धिदा, दक्ष पञ्च-नद में दक्षिणा, औजस में वीर्यदा, तीर्थ-सङ्गम में सङ्गमा, बाहुदा में अनन्ता, कुरुक्षेत्र में रणेक्षणा, भारताश्रम में तपस्विनी भारती, नैमिषारण्य में सुकथा, पाण्डु में पाण्डरानना, विशाला में विशालाक्षी, मुण्ड-पृष्ठ में शिवात्मिका, कनखल में श्रद्धा, मानस सरोवर में गौरी, नन्दा-पुर में महानन्दा, ललिता-पुर में ललिता, ब्रह्म-शिर में ब्रह्माणी, इन्दुमती में पूर्णिमा, काञ्ची में अति-प्रिया, जाह्नवी-सङ्गम में स्वधा, बहु-सिती में पाप-नाशिनी, स्वर्गोच्छेद में महा-वारि, महा-वन में भद्रकाली, भद्रेश्वर में रमा, विष्णु-पद में विष्णु-प्रिया, नर्मदाच्छेद में दारुणा, कावेरी में कपिलेश्वरी, कृष्ण-वेत्ता में भेदिनी, सम्भेद में शुभ-वासिनी, शुक्र-तीर्थ में श्रद्धा, प्रभास में ईश्वरी, महा-बोधि में महा-बुद्धि, पटल में पाटलेश्वरी, नाग-तीर्थ में नागेशी, मदन्ती में मदान्तिका, मेघवास में मेघ-स्वना, रामेश्वर में वीरा, चेलापुर में सती, मार्गक में दुर्गा, गोवर्धन में कात्यायनी, हरिश्चन्द्र में शुभेश्वरी, पुरचन्द्र में पुरेश्वरी, पृथूदक में महा-वेगा, मैनाक में अखिल-वर्द्धिनी, इन्द्रनील में महा-कान्ता, महा-नाद में माहेश्वरी, महा-वल में महा-तेजा, षत्यपा-सर में सारङ्गा, पञ्च-वटी में तपस्विनी, वटिका में वटीशा, विन्ध्य-गङ्गा-सङ्गम में सुरङ्गिणी, विन्ध्याचल में विन्ध्य-वासिनी, नन्द-तट में महानन्दा, गङ्गा-वालाचल में शिवा, आर्यावर्त में महार्या, ऋण-मोचन में विमुक्ति, अट्टहास में चामुण्डा, तन्त्र में श्रीगौतमेश्वरी, वेद-मय में ब्रह्म-विद्या, वशिष्ठ में अरुन्धती, हरित में हरिणाक्षी, ब्रह्मावर्त में ब्रजेश्वरी, कुशावर्त में कुश-प्रिया गायत्री-सावित्री, महा-तीर्थ में हंसेश्वरी, पर-हंसेश्वर में ईश्वरी, पिण्डारक-वन में सुरसा, गङ्गाद्वार में वैष्णवी, वदरी-तीर्थ में श्रीविद्या, राम-तीर्थ में महा-धृति, जयन्त में जयन्ती, विजयन्त में अपराजिता, विजया में महा-शुद्धि, शारदा में शारदा, सुभद्रा में भद्रदा, भद्र-कालेश्वर में भव्या, महा-भद्रा में महा-काली, हय-तीर्थ में गवीश्वरी, वेद-मस्तक में वेद-माता, युवती में महा-विद्या, महा-नदी में महोदया, त्रिपद में चण्डा, छागलिङ्ग में वलि-प्रिया, मातर्दृश में जगन्माता, करवीर-पुर में सती, सप्त-गोदावरी-तीर्थ में अखिलेश्वरी, अयोध्या में भवानी जय-मङ्गला, मथुरा में माधवी, वृन्दावन में गोपीश्वरी राधा, व्रज में यशोदा, काञ्ची में कनक-काञ्ची, अवन्ती में अति-पावनी, विद्या-पुर में विद्या, नील-पर्वत में विमला, सेतु-वन्ध में रामेश्वरी, पुरुषोत्तम में विमला, याग-पुरी में विरजा, भद्र में भद्र-कर्णिका, तमोलिप्त में तमोघ्नी, सागर-सङ्गम में स्वाहा, मङ्गल में मङ्गला, राढ़कोट में मङ्गल-चण्डिका, शिवा-पीठ में ज्वाला-मुखी, मन्दर में भुवनेश्वरी, कालीघाट में गुह्य-काली, किरीट में महेश्वरी, लिङ्ग में लिङ्ग-वाहिनी।

सब पापों के विनाश के लिए अन्य सिद्ध स्थान कहे हैं, जो लोगों को सर्व-सिद्धि-दायक हैं। शिव द्वारा ये स्थान निर्मित हुए हैं। यथा—अमरेश महा-पीठ में कुश और तुङ्गार स्थानों में दुर्गा के दो नाम चण्डिका और महेश्वरी हैं। प्रभास में सोमनाथ और देवी पुष्करेक्षणा हैं। नैमिष में महेश्वर शम्भु और प्रज्ञा देवी शिवानी लिंग-धारिणो हैं। पुष्कर में महेश्वरी पुरुहूता है। श्री पर्वत में श्री के शङ्कर त्रिपुरान्तक वहाँ हैं। मायावी शङ्करी भक्तों को अखिलार्थ देती हैं। जप्येश्वर महा-स्थान में त्रिशूलिनी शङ्करी और त्रिशूली शङ्कर हैं, जो सब पापों से छुड़ाते हैं। आम्रतकेश्वर में सूक्ष्मा परमेश्वरी हैं। गण-क्षेत्र में मङ्गला और पितामह शिव हैं। कुरुक्षेत्र में शिव-स्थाणु और शिवा-स्थाणु हैं। इष्ट-लाभ में स्वयम्भू और देवी स्वयम्भुवा हैं। कनखल में उग्र शिव और शिव-वल्लभ हैं। विमलेश्वर में विश्व-शम्भु और विश्व-प्रिया विश्वा हैं। अट्टहास में महानन्द और महेश्वरी महानन्दा हैं। महान्तक में महेन्द्र और

महान्तका पार्वती हैं। भीम-पीठ में भीमेश्वर और भीमेश्वरी शिवा हैं। वस्त्र-पाद में भव और भवानी भुवनेश्वरी हैं। अद्रि-कूट में महा-योगी और परमेश्वरी रुद्राणी हैं। अविमुक्त में महादेवी विशालाक्षी हैं। महा-माय में रुद्र और महा-माया शिवा हैं। गोकर्ण में महा-बल और शिव-भद्रा चण्डिका हैं। भद्र-कर्ण में महादेव और भद्रा कर्णिका हैं। सुपर्ण में सहस्र और परमेश्वरी उत्पला हैं। स्थाणु में शिव और श्रीधरा हैं। कनकालय में महेश्वर कमल और कमलाक्षी हैं, जो सकलार्थ-दायिनी हैं। छागला में कपर्दी और प्रसभा महेश्वरी हैं। वरेण्य में ऊर्ध्वरता और साध्या परमेश्वरी हैं। साकोट में महा-कोट और मुण्ड-केश्वरी हैं। मातुलेश्वर-पीठ में करवीर और शेखरा हैं। व्याघ्रपुर में आत्मानन्द के महानन्द के पूर्णानन्द-महासागर में सभापति नामक शिव नृत्य करते हैं और देवेश्वरी उन्हें देखती हैं। वहाँ भक्तों के लिए महा-देवी शीघ्र ही वरदा होती हैं। नृत्य करते हुए सर्वेश को देखकर लोग मुक्त हो जाते हैं। सभी पुण्य स्थानों में यह स्थान महान् उत्तम है। यहाँ सभी कर्म अक्षय होते हैं। यहीं शिव-गङ्गा नामक अद्-भुत तड़ाग है, जिसके दक्षिण तट पर ईश्वर नृत्य करते हैं। इस तड़ाग के पास निवास कर और उसमें स्नान कर सभानाथ का दर्शन कर १००८ जप सानन्द करे। देवता, पितृ-गण, सिद्ध गन्धर्व और सिद्धियों का यहाँ वास रहता है। यहाँ का दान, होम, जप, स्नान अक्षय पुण्य-दायक होता है। भैरव के जो-जो नाम कहे हैं, उनके पूर्व में प्रणव और अन्त में हृद् (नमः) लगाकर उनसे पूजन करे, तो अभीष्ट की प्राप्ति होती है। यहाँ ब्राह्मणों को भोजन कराने से अक्षय फल मिलता है। इस लोक में विविध सुख भोगकर अन्त में देवी-लोक को जाता है। शोक-दुःख का यहाँ नाश हो जाता है। अतः प्रयत्न करके यहाँ उत्तम साधना करना चाहिए।

पूजा का काल

समयाचार तन्त्र, प्रथम पटल—देव-पूजन के लिए 'काल' का निर्देश अलग-अलग किया गया है। 'काल' को ही 'समय' कहते हैं, जिसे जानने से अमृत की प्राप्ति होती है। १ प्रातः, २ मध्याह्न, ३ प्रदोष, ४ रात्रि का प्रथम याम, ५ अर्द्ध-रात्रि—ये पाँच 'काल' निर्दिष्ट हैं। दिन का आदि काल पहला 'प्रातः' है। दिन के मध्य में जो काल होता है वही दूसरा 'मध्याह्न' है। सूर्यास्त का काल, जो रजनी के पहले होता है, वह तीसरा 'प्रदोष' है।

अर्द्ध-रात्रि से लेकर ब्राह्म-मूहूर्त्त तक का 'काल' छठा माना गया है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

शांति, वश्यादि कर्मों का काल

शान्ति-कर्म और वश्य, स्तम्भन, द्वेषण, मोहन, उच्चाटन तथा मारण के काल अलग-अलग निर्दिष्ट हैं। 'शान्ति' के लिए प्रथम काल प्रशस्त है, फिर मध्याह्न और उसके बाद सूर्यास्त का सायंकाल है। इस प्रकार तीनों काल का क्रम है।

मत्स्य-सूक्त, पञ्चम पटल—जिस साधना में 'काल' का उल्लेख न हो, वहाँ सर्वत्र दिन का आदि-काल शुभ होता है। 'वार' का उल्लेख न हो, तो गुरुवार समझना चाहिए। तिथि का कथन न हो, तो 'अष्टमी' को ग्रहण करे। इसी प्रकार उल्लेख न होने की दशा में नक्षत्रों में 'रोहिणी', योगों में 'ध्रुव' योग ग्रहण करना चाहिए। सर्वत्र यही विधि है।

योगिनी तन्त्र, पूर्व खण्ड, द्वितीय पटल—रात्रि का प्रथम भाग बीतने पर दूसरे प्रहर तक जप-काल निर्दिष्ट है। रात्रि के डेढ़ याम व्यतीत हो जाने पर जब डेढ़ याम शेष रहे, तो वह चतुर्वर्ग का फल

देनेवाला पूजा-काल होता है। रात्रि के मध्य में दो भागों के मध्य में संश्लिष्ट दो घटिका का समय 'महा-रात्रि' कही है। उस समय किए गए कर्म का फल अक्षय होता है। जो भी जप, होम, पूजा उस समय की जाती है, वह मोक्ष-दायक होती है। उसका अनन्त फल होता है।

महा-निशा आदि का निरूपण

गुप्त-साधना तन्त्र, षष्ठ पटल—सूर्य के अस्त होने पर 'निशा' होती है। रात्रि का एक प्रहर बीतने पर जो दो घटिका होती हैं, उस समय 'महा-निशा' होती है। तदनन्तर 'अति-महा-निशा' का काल आता है। उस काल में अर्थात् रात्रि के प्रथमार्ध के बीतने पर पशु-भाव से देवी का पूजन कदापि न करे। १० दण्ड के काल में जो पूजा की जाती है, वह अक्षय फल देती है। छठे क्रोश में अर्थात् १२ दण्ड के काल में पूजा करके जो कुछ देवता को अर्पित किया जाता है, वह अमृत-तुल्य होता है। सातवें क्रोश अर्थात् १४ दण्ड रात्रि-काल में पूजा कर जो द्रव्य दिया जाता है, वह क्षीर के समान तृप्ति-दायक होता है। आठवें क्रोश अर्थात् १६ दण्ड के समय पूजा में जो कुछ दिया जाता है, वह सामान्य द्रव्य के समान होता है—सामान्य फल ही उससे मिलता है। तदनन्तर अर्थात् रात्रि के १६ दण्ड के बाद पूजा कर जो कुछ दिया जाता है, वह विष जैसा ही विपरीत फल देता है।

यह सब विधान पशु-भाव के उपासकों के लिए है। दिव्य और वीर-मत में तत्व के अनुसार पूजा करनी चाहिये। पञ्च-तत्व लेकर पूजा करने में काल-अकाल (समय-असमय) का विचार नहीं करना चाहिए। कौलिकाचार के अनुसार अर्द्ध-रात्रि के बीतने पर ही 'कुल-पूजा' होती है।

आगम-प्रकाश में उद्धृत वृहन्मुण्ड-माला-तन्त्र—शरत्-काल में या चैत्र में सूर्य-चन्द्र-सङ्गम (अमावास्या) में असिता (कालिका, श्यामा) आदि का अर्चन अर्द्ध-रात्रि में करने से देवी भोग-स्वर्ग और मोक्ष देती है।

आगम-सार—तुला, मकर और मेष में कुहु (अमावास्या) को प्राप्त कर चतुर्वर्ग-फल की उपलब्धि हेतु कालिका देवी की पूजा करे।

नन्दिकेश्वर तन्त्र—कार्तिक में कुहु (अमावास्या) के निशीथ काल में दीपान्विता-दिवस (दीपावली के दिन) में कालिका की पूजा करने से वे सभी अभीष्टों को देती हैं। प्रत्येक वर्ष कालिका का यह महोत्सव मनाना चाहिए। कार्तिक में विशेष कर अमावास्या की अर्द्ध-रात्रि में भोग-मोक्ष-प्रदायिनी देवी की पूजा करे। तुला राशि में कुज-वार (मंगल) में जब कुहू (अमावास्या) हो, तब मङ्गल-गीत आदि द्वारा जगद्धात्री का पूजन करे।

मुण्ड-माला तन्त्र—तुलादित्य की पञ्चदशी की अर्द्ध-निशा में मुण्ड-मालिनी प्रचण्डा कालिका की पूजा करे।

षष्ठ-पटल—दिवा-पूजा करे, सन्ध्या-पूजा करे, निशा-पूजा करे, तब सिद्धि मिलती है। १ न दिन में, न निशा में, न सन्ध्या में—जगद्धात्री की कभी पूजा न करे। २ देवी की पूजा दिन में न करे, रात्रि में कभी पूजा न करे। ३ देवी की पूजा सदा दिन में करे, रात्रि में न करे। इन तीन वचनों का समाधान दिव्य और वीर-भाव के विषय से ध्यान देने से हो जाता है। यथा—

निरुत्तर तन्त्र, प्रथम पटल—वीर दिन में पूजा न करे, पशु रात्रि में पूजा न करे। गुप्त-साधना तन्त्र के पूर्वोक्त वचन में षोडश-दण्डात्मक रात्रि के मध्य में पूजा का जो निर्देश है, वह दीपावली में करणीय श्यामादि-पूजा-विषयक है। निरुत्तर तन्त्र का वचन नित्य-पूजा-विषयक है। दिन में वीर-पूजा

करने का जो निषेध है, वह भी पञ्च-तत्व-हीन पूजा के विषय में नहीं है, अन्यथा पहले बताए काल-अकाल (समय-असमय) का विवरण निरर्थक हो जायगा। अति-निशा में पूजा-निषेध अप्रशस्त काल के लिए है अन्यथा द्रव्य के अमृतत्व की बात व्यर्थ हो जायगी। डेढ़ याम आदि का निर्देश कुल-पूजा के सम्बन्ध में है।

देव-पूजा में अकस्मात् बाधादि के लिए प्रायश्चित्त

महा-निर्वाण तन्त्र, चतुर्दश उल्लास में उस दशा के लिए प्रायश्चित्त करने की विधि बताई है, जब अकस्मात् किसी बाधा के कारण किसी दिन देव-पूजा नहीं हो पाती। देखिए 'हिन्दी महानिर्वाण तन्त्र', पृष्ठ १२०।

गुरु-त्याग का प्रायश्चित्त

श्यामा-रहस्य में उद्धृत लिङ्गागम—दिव्य या वीर-भाववाले गुरु का त्याग करनेवाले शिष्य को श्रीपादुका का एक लक्ष जप कर दशांश-क्रम से होम, तर्पण आदि करना चाहिए। इससे गुरु-त्याग का उसका पाप दूर होकर वह विशुद्ध होता है।

कुल-मार्ग में प्रवेश करनेवाले शिष्य को पशु-भाववाले गुरु का त्याग करना आवश्यक होता है। इसमें उसे कोई दोष नहीं लगता। फलतः उसे कोई प्रायश्चित्त भी नहीं करना पड़ता।

श्यामा-रहस्योक्त वचन कौलिकों के लिये नहीं है क्योंकि कौलों के प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। कुलार्णव, पञ्चम खण्ड में निर्देश है कि कौलों को ५ बातें नहीं करनी चाहिये—१ प्रायश्चित्त, २ वीर्य-पात, ३ संन्यास, ४ व्रत और ५ तीर्थ-यात्रा। इस प्रकार प्रायश्चित्त का विधान पशु-शिष्य के लिये है। पशु-गुरु के त्याग के लिये प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं है, इस सम्बन्ध में रुद्रयामल और कुलार्णव की उक्ति है कि मधु-लोभी भौंरा जैसे एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाता है, वैसे ही ज्ञानेच्छु शिष्य एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाता है। या एक मन्त्र छोड़कर दूसरा मन्त्र ग्रहण करता है। इस मत के अनुसार रिपु मन्त्र या जीव-हीन साध्य मन्त्र सिद्धि देने में सन्दिग्ध होने से उन्हें छोड़कर 'महा-विद्या' ग्रहण करनी चाहिये। जीव-हीन और निद्रित मन्त्र सिद्ध नहीं होते। सहसा यह ज्ञात होने पर कि गुरु ब्रह्म-घाती (दुराचारी) है, उसे त्याग देना चाहिये। बहुत जानकार गुरु की अपेक्षा कुलाकुल का ज्ञाता गुरु ही पूज्य है, भले ही वह कम जानकार हो।

विविध त्रुटियों के लिये प्रायश्चित्त

गुरु के बराबर सोने या बैठनेवाला नरक में जाता है। गुरु की बात की उपेक्षा कर अपनी बात को महत्व देनेवाला वह शिष्य घोर नरक का भागी होता है।

जो कौल पशु का अन्न-खाता है, या पशु-सङ्ग करता है, उससे देवी रुष्ट हो जाती हैं।

वीर भी यदि एक ही पात्र में पान करता है, तो उसे प्रायश्चित्त-रूप एक सहस्र गायत्री जप और घृत से होम करना पड़ता है, तब वह दोष-मुक्त होता है। चक्र का आयोजन कर जो बिना तर्पण के पूजन करता है, उसकी आयु, विद्या, यश, और बल—इन चारों की हानि होती है। बिना 'अभिषेक' हुये जो आचार्य बनता है, वह रौरव नरक को जाता है। जो 'शक्ति' को मातृ-रूपा न मानकर स्त्री-रूपा समझता है, उसे शत-कोटि जन्मों तक नरक भोगना पड़ता है।

तीन लाख मूल-मन्त्र का जपकर एक लाख अजपा-जप करने के बाद पाँच लाख कूर्च-बीज (हूँ) जपने से शुद्धि होती है।

गुरु-पत्नी, गुरु-पुत्री, गुरु-भगिनी और कुल-धर्मावलम्बिनी स्त्री के प्रति सदा माता-भाव रखे। साधक इनकी सदा विधिपूर्वक पूजा करे। ऐसा न करनेवाला कौलिक भी प्रायश्चित्ती होता है।

पर्व में यदि पूजा न कर पाये, तो उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप मूल-मन्त्र का १०८ बार जप करे। पत्र, पुष्प, फल, मूल, अन्न, पेय पदार्थ, औषधि आदि का सेवन बिना देवता को अर्पित किये कभी न करे। यदि इसमें कभी भूल हो जाय, तो १०८ बार मन्त्र-जप करने से मनुष्य दोष से छूटकर पवित्र होता है।

अस्थि-हीन-जीवादि की हत्या का प्रायश्चित्त

बिना हड्डीवाले जीव की हत्या हो जाय, तो मूल-मन्त्र का १० बार जप करे। किसी भी पक्षी की हत्या हो जाय, तो ११ बार जप करे। सर्प, मार्जार (बिल्ली), नकुल (नेवला), श्वान (कुत्ता), ऊँट, गधा, अश्व, गज आदि पशु या किसी मृग की हत्या होने पर १०८ बार जप से प्रायश्चित्त होता है।

क्षत्रिय, वैश्यादि की हत्या का प्रायश्चित्त

अज्ञान में क्षत्रिय या वैश्य का बध हो जाय, तो ८ सहस्र जप से; पशु स्त्री-बालक का बध हो, तो ५ सौ जप से; शूद्र-बध में ८ सहस्र जप से दिव्य-वीर के बध, वीर-स्त्री-गमन और वृथा पान में १३ सहस्र जप से प्रायश्चित्त होता है। ये ही दुष्कर्म जान-बूझ कर किये गये हों, तो एक लक्ष जप से शुद्धि होती है। ब्रह्म-यामल—वीर-बध, वृथा-पान, अगम्या-गमन के पाप से छूटने के लिये दस अयुत जप करे।

महा-पातक का प्रायश्चित्त

काली-तन्त्र – महा-पातक के प्रायश्चित्त के लिये लता (शक्ति) के साथ जप करना चाहिये।

पशुओं के व्रत-भंगादि का प्रायश्चित्त

पशु-भाव से उपासना करनेवाले व्यक्ति व्रत-भङ्ग या नित्य-पूजादि के क्रम के टूटने के पाप से शुद्ध होने के लिये एक सहस्र जप करें।

शालग्रामादि के सम्पर्क में दिव्य-करण का प्रायश्चित्त

गायत्री-तन्त्र, पञ्चम ब्राह्मण पटल—शालग्राम, गङ्गा-जल, ताम्र, गोबर, तुलसी, सुवर्ण, गोरज, वेदादि, अन्य पवित्र द्रव्य, तीर्थ, पीठ आदि को स्पर्श कर या इनके सम्पर्क में आने पर जो 'दिव्य' भाव अर्थात् दार्शनिक विचार से चिन्तन करता है, कर्म-काण्ड की विधि के अनुसार सविधि पूजन नहीं करता है, वह स्वयं तथा वैसा 'दिव्य' (दार्शनिक) आचरण करानेवाले दोनों ब्रह्म-हत्या के पाप के भागी होते हैं तथा तदनुरूप प्रायश्चित्त करने पर वे शुद्ध होते हैं।

गङ्गा में सविधि स्नान से महा-पाप और सामान्य पाप सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रायश्चित्त हेतु गंगा-स्नान का सङ्कल्प-वाक्य

सामूहिक पापों के नाश के उद्देश्य से निम्न प्रकार सङ्कल्प कर गङ्गा-स्नान करना चाहिए—

अद्येत्यादि शालग्राम-सन्निधि-दिव्य-करण-शालग्राम-गंगा-जल-ताम्र-गोमय-गोरजस्तुलसी-सुवर्ण-रजत-तीर्थ-महापीठ-वेदादि-शास्त्र-स्पर्श-पूर्वक - दिव्य-करण-देवादि - नामोच्चारण-पूर्वक - दिव्य-करण-कारणाज्ञान-कृत-ब्रह्म-हत्यादि-जनित-पाप-क्षय-कामो नन्दायां गंगा-स्नानमहं करिष्ये।

केवल गङ्गा-जल के सम्पर्क में किये गए अविधि आचरण के प्रायश्चित्त के लिये सङ्कल्प—

अद्येत्यादि गंगा-जल-स्पर्श-पूर्वक-दिव्य-करण-दिव्य-कारण-जनित-पाप-क्षय-कामो गंगायां स्नान-महं करिष्ये।

ब्रह्म-हत्यादि पापों के क्षय के लिए निम्न प्रकार सङ्कल्प कर गङ्गा-स्नान करना चाहिये—

अद्येत्यादि ज्ञानाज्ञान-कृत-ब्रह्म-हत्यादि-पाप-क्षय-कामो गंगायां स्नानमहं करिष्ये।

तीसरा परिच्छेद

विशेष साधनादि से ज्वालामुखी प्रयोग तक

विशेष साधन

इस शीर्षक के अन्तर्गत १ कृकलास (गिरगिट), २ वल्ली, गोधिका (छिपकली), ३ मूषिका (चुहिया), ४ मार्जार (बिल्ली), ५ शृगाल (सियार), ६ श्व (कुत्ता), ७ भेक (मेढक), ८ गाय, ९ मृग, १० मेष, ११ छाग, १२ कपि, १३ रीछ, १४ बाघ, १५ हाथी, १६ सिंह, १७ शूकर, १८ कङ्काल, १९ कौआ, २० खञ्जन, २१ जल-पक्षी, २२ मोर, २३ विद्याधर-पक्षी, २४ कङ्क, २५ वक, २६ चटक, २७ शुक (तोता), २८ सारस, २९ कपोत, ३० कुक्कुट, ३१ हंस, ३२ क्षेमङ्करी (शिवा), ३३ टिट्टिभ, ३४ कोक, ३५ चकोर और ३६ कीट—इन जीवों के शब्द को समझने की शक्ति प्राप्त करने की मन्त्र-साधना दी गई है। जिस जीव के मन्त्र को निर्दिष्ट विधि से पूजा कर जप किया जाता है, उस जीव की बोली को समझने की योग्यता साधक में आ जाती है, जिससे वह भूत, वर्तमान, भविष्य की बातों को जानकर सर्वज्ञ हो जाता है और सब प्रकार से सम्पन्न होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए कुछ साधनाएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

गो-शब्द का ज्ञान—गाय के मूत्र में जौ पकाए। तीन दिनों तक शुद्ध वस्त्र पहनकर दो धरा-बीज **'लं लं'** का एक लाख जप करे। सुन्दरी द्विभुजा सती देवी की पूजा करे, जो नील-वर्णा हैं और सभी आभूषणों एवं सुन्दर लक्षणों से सुशोभिता हैं। इस प्रकार ध्यान और जप करने से सती देवी का दर्शन मिलता है और गाय उसे सभी बातें बताती है। उसके घर में गो-धन की वृद्धि होती है और लक्ष्मी स्थिर होकर रहती है।

श्व-शब्द का साधन और फल—निम्ब-वृक्ष के मूल-स्थान में बैठकर धूप, दीप, नैवेद्य और उत्तम बलि-पदार्थों से पूजन कर निशा-काल में ८ अयुत जप करे—**'स्फिं स्फिं कालि स्वाहा'**। ऐसा करने से कुत्ते के द्वारा कही सारी बातें ठीक-ठीक समझ में आने लगती हैं।

मयूर-सिद्धि और फल—वट-वृक्ष के मूल स्थान में निशीथ-काल में भगवती शिवा का ध्यान करे। यथा—

परां चण्डीं सहास्यां विपुल-कुच-युगां मुक्त-केशीं विवस्त्रां,
नानालङ्कार-पूरां शशधर-शकलं बिभ्रतीं भीम-कान्ताम्।
जप्यन्तीमद्रि-कर्णं वर-जघन-भरात् क्षौणि-चक्रं समग्रम्,
न्यक्कुर्वन्तीं समन्तादवनि-रिपु-गणं चर्वयन्तीं भजामि।

फिर मनोहर गन्ध-पुष्पों से पूजन कर मद्य, मांस का महा-भोग लगाए। तब **'क्रीं क्रीं मयूरः'** इस मन्त्र का ८ अयुत जप कर ८ सहस्र हवन निम्ब काष्ठ में हल्दी-सने सुन्दर बिल्व-पत्रों से करे। इससे मयूरों से घिरी हुई देवी आकर साधक को वर देती है। मयूर की बोली का ज्ञाता होकर साधक सर्वज्ञ होता है और सभी प्रकार के घावों और विषों को शान्त करने में समर्थ होता है। वह शत्रुओं पर विजय पाता है। इसी विधि से दक्षिणा कालिका की मद्य-मांस से पूजा करने से उसे कुल-सिद्धि मिलती है।

कृकलास-दीपिका, प्रथम पटल से उद्धृत अन्य पशु-पक्षियों से सम्बन्धित विधियाँ मूल पुस्तक में द्रष्टव्य हैं।

प्रकृत साधन

मुण्ड-माला तन्त्र, चतुर्थ पटल, १—चतुर्दशी और अमावास्या के निशा-काल में अयुत (दस सहस्र) मन्त्र-जप करने से साधक सब कर्मों में सिद्ध होता है।

२—चतुर्दशी के प्रातःकाल अश्वत्थ के मूल-भाग में बैठकर परम भक्ति के साथ बिल्व, बिल्व-पत्र और बिल्व-पुष्पों से आमिष (मांस) सहित विधिपूर्वक पञ्च-तत्त्वों से देवी का पूजन कर चार लाख जप दिन-रात में करे तो वाक्-सिद्धि मिलती है।

३—अपनी बाईं ओर मनोहर, शुद्ध स्त्री को बैठाकर धूप, दीप, सुगन्धि, ताम्बूल, चर्वणादि के द्वारा भवानी, तारिणी, ब्रह्म-विद्या आदि दिव्य रूपों में उसका पूजन करे, तो तत्काल सिद्धि मिलती है। निम्न मन्त्र से उसकी वन्दना करे—

विश्व - मातर्जयाधारे ! विश्वेश्वरि ! नमोऽस्तु ते।
कराल - वदने ! घोरे ! चन्द्र - शेखर - वल्लभे !
मां तारय महा - भागे ! देहि सिद्धिमनुत्तमां।
काम - कल्प - लता - रूपे ! कामेश्वरि ! कला - मते !
काम - रूपे ! च विजये ! निस्तारे ! शव - वाहिनि !

४—शव-चाण्डाल को ग्रहण कर उसके भाल, मुख, शिर, नासा, दोनों कान, हृदय, नाभि, लिङ्ग, गुदा, बाहु, पृष्ठ और जठर को क्रमशः स्पर्श करते हुए सभी अंगों में निम्न मन्त्र की स्थापना करे—

'ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्त्रीं ह्रीं।'

उक्त मन्त्र का १०८ बार जप कर शव-बन्धन करे। फिर अपने मन्त्र के बीज और हर-बीज से सत्व, रज, तम-गुणात्मक नील-द्रव द्वारा मार्जन करे, तो साधक सिद्धेश्वर होता है। उसे वायु-जल और अग्नि को स्तम्भित करने की शक्ति मिल जाती है।

५—शून्य गृह में धनद अर्थात् कुबेर-दिशा (उत्तर) की ओर मुख करके बैठे। शङ्ख, स्फटिक, रजत, स्वर्ण या प्रवाल की माला ले। मूर्धा में १०० बार कुल्लुका का जप कर इष्ट-मन्त्र का जप करे। ऐसा करनेवाला शिव-भक्त शाक्त निश्चय ही सदाशिव भैरव के समान होता है।

६—अश्वत्थ या बिल्व के मूल-भाग में अथवा अपनी पत्नी के 'मन्दिर' में सुन्दरी परम देवता का ध्यान ज्योतिर्मयी, अभय-दायिनी आद्या शिवा-रूप में करें और सब दोषों को काटनेवाली चण्डी देवी को स्तुतियों द्वारा प्रणाम करे। श्मशान में बैठकर या शव पर आसीन होकर उत्तम कवच का पाठ करे और यह भावना करे कि लाल-नेत्रोंवाले वसु-संख्यक (आठ) भैरव—१ उन्मत्त, २ क्रोधन, ३ वटुक, ४ संहार, ५ भीषण, ६ काल, ७ रुरु और ८ महाकाल—श्मशान-भूमि एवं शव-साधन को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं, नृत्य कर रहे हैं, गरज रहे हैं तथा 'मत डरो' कहकर अभय-दान कर रहे हैं। इस प्रकार साधन करने से सर्व-सिद्धि मिलती है।

७—पञ्चम पटल—कृष्णाष्टमी या नवमी की निशा में ध्यानपूर्वक मन्त्र का अयुत जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

८—महा-पीठाश्रम में पहुँचकर महा-पीठ का दर्शन करे। महा-पीठ में परम भक्ति के साथ रक्त-पुष्पों, रक्त-गन्धानुलेपनों, महिष-मेष-छागादि बलियों से देवी की पूजा करे, तो सिद्धेश्वर होकर साधक देवी का गण होता है। कहा भी है कि स्तुति-पाठ, दृढ़ ज्ञान और जप से महा-विद्या प्रसन्न होती है और तब सिद्धि प्राप्त होती है।

९—षष्ठ पटल—कुल-वार में अयुत-सहस्र (११ सहस्र) जप करे। शनिवार, चतुर्दशी, अमावास्या, कुज-वार (मंगल) में कुशासन पर बैठकर भक्ति-भाव के साथ अयुत और एक सहस्र अर्थात् ११ सहस्र जप करे। फिर अन्तर्याग करे। ऐसा करने से साधक सर्व-सिद्धीश्वर होता है।

१०—अश्वत्थ, वट या विल्व के मूल-भाग में परम भक्ति से पूजन करने से मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है।

११—सुषुम्ना के अन्दर पद्म-केसर में विराजमाना देवी का ध्यान नाड़ी-शोधन-पूर्वक करे। श्मशान में, अश्वत्थ-मूल में, शव पर या शून्य मन्दिर में काली, तारा आदि का मन्त्र जप करने से और स्तोत्र, अन्तर्याग, पूजन, कवच-पाठ आदि से महा-देवी प्रसन्न होती हैं।

शय्या-साधन और उसका फल

योगिनी तन्त्र, पूर्व-खण्ड, पञ्चम पटल—डेढ़ याम निशा के बीत जाने पर साधक दिगम्बर होकर विधिपूर्वक आचमन करे। मूल-मन्त्र से शय्या का अभ्युक्षण कर उस पर बैठे। फिर गुरु, परम गुरु, परापर गुरु और परमेष्ठि गुरु का पूजन कर बाँई ओर गणेश को नमन कर दाँई ओर **'क्लीं श्मशान-वासिन्यै नमः'** से नमस्कार करे। तदनन्तर **'ह्रीं आसनाय नमः'** से शय्या का नमन कर शय्या के नीचे **'ॐ क्लीं फट्'** लिखकर अपनी पद्धति के अनुसार आचमन करे। फिर निम्न मन्त्र से शिखा-बन्धन करे—

ॐ मणिधरि वज्रिणि महा-प्रतिसरे रक्ष-रक्ष मां हुं फट् स्वाहा।

इसके बाद अंग-न्यास, कर-न्यास, मातृका-न्यास, भूत-शुद्धि आदि क्रमशः कर परमा शिवा का ध्यान करे। भक्ति-पूर्वक उनका मानसोपचारों से पूजन कर शय्या के नीचे **'ॐ वटुकेभ्यो नमः'** से वटुक भैरव का मानसिक रूप से पाद्यादि से पूजन करे। तब वह्नि-बीज (रं) का उच्चारण करते हुए अपने चारों ओर जल-धारा डाले और उसे अग्नि-मयी दीवाल की भावना कर सङ्कल्प करे। फिर विधिपूर्वक जप कर, जप-फल समर्पित करे। पुनः सङ्कल्प कर होम, तर्पण, अभिषेक, ब्राह्मण-भोजनादि सम्पन्न करे। इन्हें न कर सके, तो इसके स्थान पर द्वि-गुण जप करे। अन्त में स्वर्ण-मयी दक्षिणा देकर छिद्रावधारण करे। **'क्षमस्व'** कह कर विसर्जन करे।

इस प्रकार शय्या-साधन करने से शीघ्र मन्त्र-सिद्धि मिलती है और साधक को सायुज्य लाभ होता है।

शय्या-साधन की विशेष विधि 'निर्गुण काण्ड' में बताई जायगी।

त्रि-वाट, चतुर्वाट-साधन और उनका फल

त्रि-वाट (त्रि-पथ) या चतुर्वाट (चतुष्पथ) से आशय है क्रमशः तिराहे या चौराहे से अर्थात् जहाँ तीन मार्ग या चार मार्ग मिलते हैं। ऐसे स्थान पर जाकर पहले पूर्ववद् **'मणिधरि०'** इत्यादि मन्त्र से पूजन कर वस्त्र के अन्त में ग्रन्थि (गाँठ) बाँधकर साधक निर्भय मन से निम्न मन्त्र से प्रार्थना करे—

ॐ श्मशान-वासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः। कृपां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदाश्च भवन्तु मे॥

फिर आसन पर बैठकर, आचमन-पूर्वक, स्वस्ति-वाचन कर पूजा-स्थान का मार्जन कर आसन के नीचे प्रेत-वीज 'ह्सौः' लिखे। अब हृदय में इष्ट-देवता का स्मरण कर यथा-शक्ति मानस-पूजा कर आठों दिशाओं में निम्न मन्त्रों से आठ नित्याओं का विधिवत् पूजन कर उन्हें वलि प्रदान करे—

१ ॐ काल्यै नमः, २ ॐ कपालिन्यै नमः, ३ ॐ कुल्लायै नमः, ४ ॐ कुरुकुल्लायै नमः ५ ॐ विरोधिन्यै नमः, ६ ॐ विप्र-चित्तायै नमः, ७ ॐ नीलायै नमः, ८ ॐ बलाकायै नमः।

तदनन्तर १०८ या १००८ बार इष्ट-मन्त्र का जप कर अच्छिद्रावधारण करे। अन्त में त्रि-पथ या चतुष्पथ को स्वच्छ कर भगवती का स्मरण करते हुए अपने घर वापस जाये।

विल्व-साधन और उसका फल

विल्व (बेल वृक्ष) के मूल के चारों ओर १६ हाथ तक का स्थान साधना के लिए प्रशस्त है। वहाँ पहुंच कर पहले पूर्ववत् गुरु-चतुष्टय का पूजन करे। फिर निम्न मन्त्र से क्षेत्रपाल की प्रार्थना करे—

ॐ क्षेत्रपाल ! महा-भाग ! श्मशानाधिप ! सुव्रत ! सिद्धिं देहि जगत्कर्त्ता देहि स्थानं नमोऽस्तु ते।

फिर स्थान की पूजा कर वहाँ वाग्भव 'ऐं', प्रेत-वीज 'ह्सौः', पुनः वाग्भव 'ऐं' और अन्त में मूलमन्त्र लिखे। पूर्ववत् काली आदि नित्याओं का पूजन कर सङ्कल्प-पूर्वक १००८ बार मन्त्र का जप कर अच्छिद्रावधारण करे। इस प्रकार विल्व-साधना पूर्ण कर स्थान को स्वच्छ करने के वाद गुरुदेव का स्मरण करते हुये अपने घर वापस जाये।

कार्त्तवीर्यार्जुन-प्रयोग

मन्त्र-महोदधि—**फ्रों व्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं फट् कार्त्तवीर्यार्जुनाय नमः**'—यह १९ अक्षर का मन्त्र है। इसके आदि में 'ॐ' लगाने से यह २० अक्षर का मन्त्र होता है।

निम्न १९ मन्त्रों से अङ्ग-न्यास करे—

१—ॐ नमो भगवते भोः भोः कार्त्तवीर्यार्जुन ! ॐ ॐ ॐ मम हृदये दुष्टं दारय दुरितं हन हन पापं मथ मथ आरोग्यं कुरु कुरु हां हूं हूं फट् फट् द्विषः।

२—ॐ नमो भगवते भोः भोः कार्त्तवीर्यार्जुन ! ॐ फ्रौं ॐ मम उदरे दुष्टं दारय दुरितं हन हन पापं मथ मथ आरोग्यं कुरु कुरु हां हां हूं हूं फट् फट् द्विषः।

३—ॐ नमो भगवते भोः भोः कार्त्तवीर्यार्जुन ! ॐ व्रीं ॐ मम नाभौ दुष्टं दारय दुरितं हन हन पापं मथ मथ आरोग्यं कुरु कुरु हां हां हूं हूं फट् फट् द्विषः।

४—ॐ-१५ ॐ क्लीं मम जठरे दुष्टं दारय०

५—ॐ-१५ ॐ द्रुं मम गुह्य-मण्डले दुष्टं०

६—ॐ-१५ ॐ आं ॐ मम ऊरु-युग्-जानु-पादेषु दुष्टं०

७—ॐ-१५ ॐ ह्रीं ॐ मम मूर्ध्नि दुष्टं०

८—ॐ-१५ ॐ क्रौं ॐ मम भ्रू-युगले दुष्टं०

९—ॐ-१५ ॐ स्त्रीं ॐ मम कर्णाक्षि-नासिका-जिह्वा-वक्त्रेषु दुष्टं०

१०—ॐ-१५ ॐ हुं ॐ मम कण्ठ-बाहु-युगेषु दुष्टं०

११—ॐ-१५ ॐ कां ॐ मम सर्वांगेषु दुष्टं०। ॐ-१५ ॐ फट् ॐ मम सर्वांगेषु दुष्टं०

१२—ॐ-१५ ॐ ॐ ॐ मम सर्वांगेषु दुष्टं०

१३—ॐ-१५ ॐ वीं ॐ मम सर्वांगेषु दुष्टं०

१४—ॐ-१५ ॐ र्यां ॐ मम सर्वांगेषु दुष्टं०
१५—ॐ-१५ ॐ र्जुं ॐ मम ,, ,,
१६—ॐ-१५ ॐ नां ॐ ,, ,, ,,
१७—ॐ-१५ ॐ यं ॐ ,, ,, ,,
१८—ॐ-१५ ॐ नं ॐ ,, ,, ,,
१९—ॐ-१५ ॐ मं: ॐ ,, ,, ,,

कार्त्तवीर्यार्जुन-गायत्री का जप प्रयोगादि में करे। यथा—

ॐ कार्त्तवीर्याय विद्महे महा-वीर्याय धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात् ।

कार्त्तवीर्यार्जुन-कवच

विनियोग--अस्य श्रीकार्त्तवीर्यार्जुन-कवच-स्तोत्रस्य श्रीदत्तात्रेय ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । चक्रवर्ती कार्त्तवीर्यार्जुनो विष्णुः देवता । रक्षायै सर्व-दुष्ट-विनाशाय, सर्वार्थ-सिद्धये च पाठे विनियोगः ।

विनियोग के अनुसार ऋष्यादि-न्यास कर पूर्वोक्त अङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—

सहस्रादित्य-सङ्काशे नाना-रत्न-समुज्ज्वले । भास्वद्-ध्वज-पताकाढ्ये तुरगायुध-भूषणे ।
महा-संवर्त्तकाम्भोज-भीम-राव-विराविणि । समुद्धृत-महाच्छत्र-वितानित-वियत्-पथे ।
निर्माण-किङ्किणी-जाल-चलच्चामर-शोभिते । महा-रथ-वरे दीप्ते नानायुध-विराजिते ।
सु-स्थितं विपुलोदार-सहस्र-भुज-मण्डितं । वामोरु-कुण्ड-कोदण्डान् दधानमपरैः शरान् ।
किरीट-हार-मुकुट-केयूर-वलयांगदैः । मुद्रिकोदर-गन्धाढ्यैर्मौञ्जी-नूपुरकादिभिः ।
भूषितं विविधाकल्पैर्भास्वरैः सु-महाधनैः । आबद्ध-कवचं वीरं सुप्रसन्नाननाम्बुजं ।
धनुर्ज्या-सिंह-नादेन कम्पयन्तं जगत्-त्रयं । सर्व-शत्रु-क्षय-करं सर्व-व्याधि-विनाशनं ।
सर्व-सम्पत्-प्रदातारं विजय-श्री-निषेवितं । सर्व-सौभाग्यदं भद्रं भक्तानां भय-नाशनं ।
दिव्य-मालानुलेपाढ्यं सर्व-लक्षण-संयुतं । रथ-नागाश्व-पादाति-वृन्द-मध्यगमीश्वरं ।
वरदं चक्रवर्त्तीनां मही-लोकैक-पालकं । समानोदित-साहस्रं दिवाकर-सम-त्विषं ।
महा-योग-बलैश्वर्यं कीर्त्याक्रान्त-जगत्-त्रयं । श्रीमच्चक्र-हरेरंशादवतीर्णं महा-बलं ।

ध्यान करने के बाद 'कवच' का पाठ करे। यथा—

अस्याङ्ग-मूर्त्तयः पञ्च पान्तु मां स्फाटिकोज्ज्वलाः, अग्नीशासुर-वायव्य-कोणेषु हृदयादिकाः ।
क्षेमङ्करी - शक्ति - युतश्चौराणां मद -भञ्जनः, प्राची-दिशं रक्षतु मे वाण-वाणाशयायुधः ।
श्रीकरा-शक्ति-सहितो मारी- मद-विभञ्जनः, शर-चाप-धरः श्रीमान् दिशं मे पातु दक्षिणां ।
महा-वश्य - करी - युक्तः शत्रूणां मद-भञ्जनः, कोदण्डेषु-धरः सौर्यां दिशं मे परि-रक्षतु ।
प्रजा-करी - युतश्चाप - वाण- दुष्ट - प्रणाशनः, परि-रक्षतु मे सम्यक् विदिशं चैत्र-भानवीं ।
विद्या - करी-समायुक्तः सुमहान् दुष्ट-नाशनः, पातु मे नैर्ऋतीं चाप-वाणवान् दिशमीश्वरः ।
धन - कर्या समायुक्तो महा - दुरित - नाशनः, इष्वासनेषु-धृक् पातु विदिशं मे वायवीं ।
आयुष्कर्या समायुक्तः श्रीमान् भय - विनाशनः, चापेषु-धारी शैवीं मे विदिशं परि-रक्षतु ।
विजय-श्री - युतः साक्षात् सहस्रार-धरो विभुः, दिशमूर्ध्वामवतु मे महा - भय-विनाशनः ।
शङ्ख-भृत् सु-महा-शक्ति-संयुतोऽप्यधरां दिशं, परि-रक्षतु मे दुःख-ध्वान्त-सम्भेद-भास्करः ।
महा-योग-समायुक्तः सर्व- दिक् - चक्र - मण्डलं, महा-योगीश्वरः पातु सर्वतो मम पद्म-भृत् ।

एता दिङ्-मूर्त्तयो रक्ता रक्त- माल्यांशुकैर्वृताः, प्रधान-देवता-रूपा पृथक् रथ-वरे स्थिताः ।
शक्तयः पद्म-हस्ताश्च नीलेन्दीवर-सन्निभाः, सु-शुक्ल-माल्य-वसनाः सु-लिप्त-तिलकोज्ज्वलाः।
तत्-पार्श्व-देवताः स्व-स्व-वाहनायुध-भूषणाः, स्व-स्व-दिक्षु स्थिताः पान्तु मामिन्द्राद्या महा-बलाः।
एतास्तस्य समाख्याताः सर्वावरण - देवताः, सर्वतो मां सदा पान्तु सर्व-शक्ति-समन्विताः ।
हृदये चोदरे नाभौ जठरे गुह्य - मण्डले, उरु-युग् - जानु-पादेषु मूर्ध्नि भ्रू - युगलेषु च ।
कर्णाक्षि-नासिका-जिह्वा-कण्ठ-बाहु-युगेषु च, दश-बीजात्मकाः मन्त्राः सम्यक् सम्पत्ति-दायकाः ।
दश चान्ये महा-वर्णा मन्त्र-रूपा महोज्ज्वलाः, व्यापकत्वेन पान्त्वस्मानापाद - तल-मस्तकं ।
कार्त्तवीर्यः शिरो पातु ललाटं हैहयेश्वरः, सुमुखो मे मुखं पातु कर्णौ व्याप्त-जगत्-त्रयः ।
सुकुमारो हनू पातु भ्रू-युगं मे धनुर्धरः, नयने पुण्डरीकाक्षो नासिकां मे गुणाकरः ।
अधरोष्ठौ सदा पातु ब्रह्म-गेयो द्विजान् कविः, सर्व-शास्त्र-कला-धारो जिह्वां चिबुकमव्ययः ।
दत्तात्रेय-प्रियः कण्ठं स्कन्धौ राज-कुलेश्वरः, भुजौ दशास्य-दर्पघ्नो हृदयं मे महा-बलः ।
करौ सर्वार्थदः पातु कराग्राणि जगत्-प्रियः, कुक्षिं रक्षतु मे विद्वान् वक्षः पर-पुरञ्जयः ।
देवाम्बु - लीला-सन्तृप्तो जठरं परि - रक्षतु, शूर-वीरस्तु मे नाभिं पार्श्वौ मे सर्व - दुष्टहा ।
सहस्र-भुज-भृत् पृष्ठं सप्त-द्वीपाधिपः कटिं, ऊरू माहिष्मती-नाथो जानुनी वल्लभो विभुः ।
जङ्घे वीराधिपः पातु पातु पादौ मनोजवः, पातु सर्वायुध - धरः सर्वाङ्गं सर्व - मर्मसु ।
सर्व-दुष्टान्तकः पातु धात्वाष्टक - कलेवरं, प्राणादि-दश-जीवेशान् सर्व-शिष्टेष्टदोऽवतु ।
वशीकृतेन्द्रिय-ग्रामः पातु सर्वेन्द्रियाणि मे, अनुक्तमपि यत्-स्थानं शरीरेऽन्तर्बहिश्च यत् ।
तत्-सर्वं पातु मे सर्व-लोकनाथेश्वरेश्वरः, वज्रात् सार-तरं चेदं शरीरं कवचावृतं ।
बाधा- शत - विनिर्मुक्तमस्ति मे भय-वर्जितं, बध्वेदं कवचं दिव्यं न भेद्यं हैहयेशितुः ।
विचरामि दिवा- रात्रौ निर्भयेणान्तरात्मना, न भवेत् तु भयं किञ्चित् कवचेनावृतस्य मे ।

फल-श्रुति

य इदं कार्त्तवीर्यस्य कवचं पुण्य-वर्द्धनं, सर्व - पाप - प्रशमनं सर्वोपद्रव - नाशनं ।
सर्व - शान्ति-करं गुह्यं समस्त-भय-नाशनं, विजयार्थ-प्रदं नृणां सर्व-सम्पत्-प्रदं शुभं ।
शृणुयाद्वा पठेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकं, नित्यं शिरसि यो धत्ते सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
मुच्यते सर्व-दुःखैस्तु सर्वत्र विजयी भवेत्, मारी-चौरादि- पीडाद्यैर्न कदाचित् प्रबाध्यते ।

कार्त्तवीर्य अष्टोत्तर-नाम-शतकं

कार्त्तवीर्योर्जुनो धन्वी राजेन्द्रो हैहयेश्वरः । दत्तात्रेय - प्रियतमः सहस्र - भुज-मण्डितः ।
चापी खड्गी रथी वाणी तूणी चर्मी महा-बलः । सुभगः सुमुखः शान्तश्चक्रवर्ती गुणाकरः ।
दशास्य-दर्प-हारी वा लीला-तृप्तः सुदुर्जयः । दुष्टहा चौर-दमनो राज-राजेश्वरः प्रभुः ।
सर्वज्ञः सर्वदः श्रीमान् सर्व-शिष्टेष्टदः कृती । राज-चूडा-मणिर्योगी सप्त-द्वीपाधिनायकः ।
विजयी विश्वतो राज्ञां महा-मतिरलोलुपः । देव-विप्र-प्रियो विद्वान् ब्रह्म-गेयः सनातनः ।
माहिष्मती-पतिर्योद्धा महा-कीर्तिर्महा - भुजः । सुकुमारो महा-वीरो मारीघ्नो मदिरेक्षणः ।
शत्रुघ्नः शाश्वतः शूरः शङ्ख-भृद्गोपि-वल्लभः । महा-भागवतो धीमान् महा-भय-विनाशनः।
असाध्य-विग्रहो दिव्य-भावो व्याप्त-जगत्-त्रयः । सर्व-शास्त्र-कलाधारो विरजो लोक-वन्दितः ।
वीरो विमल-सत्वाढ्यो महा-बल-पराक्रमः । विजय-श्री-मयो नान्यो जितारिर्मन्त्र-नायकः ।

चक्र-भृत् कामदः कान्तः कामघ्नः कमलेक्षणः । भद्र-वाद-प्रियो वैद्यो विभुदो वरदो वशी ।
जितेन्द्रियो जितारातिः महान् योऽनन्त-विक्रमः । चक्र-भृत् पर-चक्रघ्नः संग्राम-विधि-पूजितः ।
महा-धनो निधि-पतिर्महा-योगी गुरु- प्रियः । योगाढ्यः सर्व-रोगाघ्नो राजिताखिल-भूतलः ।
दिव्यास्त्र भृदमेयात्मा सर्व-गोप्ता महोज्ज्वलः । सर्वायुध-धरोऽभीष्ट-प्रदः पर-पुरञ्जयः ।
योग-सिद्धो महा-कायो महा-वृन्द-शताधिपः । सर्व-ज्ञान-निधिः सर्व-सिद्धि-दान-कृतोद्यमः ।
इत्यष्ट-शतनामोत्था मूर्त्तयो दश-दिक्-पतेः । सम्यक् दश दिशो व्याप्य पालयन्तु च मां सदा ।
भय-हानिर्यशः कान्तिर्विद्या-बुद्धि- महोच्छ्रितः । अनष्ट-द्रव्यता चैव नष्टस्य पुनरागमः ।
दीर्घायुष्यं मनोलाभः सौकुमार्यमभीप्सितं । सन्तु मे कार्त्तवीर्यस्य हैहयेन्द्रस्य कीर्त्तनात् ।

श्रीकार्तवीर्य-द्वादश-नाम-कीर्तन

१ कार्त्तवीर्यः, २ खल-द्वेषी, ३ कृत-वीर्य-सुतो, ४ बली,
५ सहस्र-बाहुः, ६ शत्रुघ्नो ७ रक्त-वासा, ८ धनुर्धरः ।
९ रक्त-गन्धो, १० रक्त-माल्यो, ११ राजा, १२ स्मर्तुरभीष्टदः,
द्वादशैतानि नामानि कार्त्तवीर्यस्य यः पठेत्, सम्पदस्तस्य जायन्ते जनास्तस्य वशे सदा ।

मूल पाठ में 'अष्टोत्तर-शतनाम' और 'द्वादश-नामावली' कवच के अन्दर ही समाविष्ट हैं। 'कवच' का स्वरूप भी अधिक विस्तृत है, जिसमें सृष्टि-गत समस्त हिंसक, दुष्ट, विद्वेषक जीवों-भूत-प्रेतों-राक्षसों-ग्रहों आदि की शान्ति हेतु सहस्र-बाहु कार्तवीर्य अर्जुन की विशेषताओं का स्मरण करते हुए प्रार्थना की गई है। जो साधक अधिक समय दे सकते हों, वे मूल ग्रंथ से इस सबको लेकर उसका भी पाठ कर सकते हैं। इसी प्रकार वहाँ 'फल-श्रुति' भी विस्तृत दी है, जिससे इस कवच के प्रयोग की विशेष विधियाँ ज्ञात होती हैं। यहाँ उन विधियों का कुछ सारांश दिया जाता है—

साधक गुरु से कार्त्तवीर्य का मन्त्र प्राप्त करे। फिर कवच के पाठ के पूर्व निम्न प्रकार श्री कार्त्तवीर्य देव को सम्बोधित करे—

कार्त्तवीर्य ! महा-वीर्य ! सर्व दुष्ट - विनाशन !
सर्वत्र सर्वदा तिष्ठ दुष्टान् नाशय पाहि माम् ।।
उत्तिष्ठ दुष्ट - दमन ! सप्त - द्वीपैक-पालक !
त्वमेव शरणं प्राप्तं सर्वतो रक्ष माम् माम् ।।

इसके बाद ध्यान, मानस-पूजन कर न्यास करे। तब कवच, शतनाम, द्वादश नामावली का पाठ करे।

उक्त कवच का पाठ प्रातःकाल करने से दुःस्वप्नादि का प्रभाव नष्ट होता है और अभीष्ट की प्राप्ति होती है। रात्रि में पश्चिम की ओर मुख करके सात बार इसका पाठ करने से नष्ट-द्रव्य मिलता है। घोर विवाद या कलह का सङ्कट हो, तो पाँच बार पाठ करने से उससे उद्धार होकर विजय मिलती है। यात्रा करने के पूर्व इसका पाठ कर लेने से मार्ग में कोई बाधा नहीं आती और उद्देश्य की सिद्धि होती है। सभी प्रकार के रोगों की शान्ति हेतु इसका तीन या पाँच बार पाठ करे। छः महीने तक तीनों सन्ध्याओं में इसका पाठ करने से मनुष्य अनिवार्य मृत्यु-योग से भी छटकर सब प्रकार से सम्पन्न होकर दीर्घ-जीवी होता है। इत्यादि।

चौथा परिच्छेद

कुक्कुट, उच्छिष्ट-चाण्डालिनी आदि प्रयोग

कुक्कुट-प्रयोग

फेत्कारिणी तन्त्र, द्वितीय पटल—आयु, श्री, वैभव, सुख, सौभाग्य, सम्पत्ति देनेवाला 'कुक्कुट'-देव का मन्त्र १५ अक्षरों का है। यथा—

धूं कुक्कुट ! वीप्सैतत् त्वां वीप्सित-पूर्वकं धूं ।

'कुक्कुट'-देव का विग्रह सब देवताओं के तेज और शक्ति से उद्दीप्त है। उनका ध्यान निम्न प्रकार है—

क्षीरोदधि - मध्य - गते द्वीप - वरे कनक - रत्न - मय - भूमौ,
अनवरत - सिकता - मुक्ता - मणि - मृदु - पवन - सुशीतले रम्ये ।
तत्र समुत्थितममलं विपुल-तरं कलित-वर-रत्न-फल-जातम्,
हैमं ताल-महीजं बहु-मणि-विलसद्-विचित्र-पत्र-वरम् ।। १ ।।
तं - पुनरधितिष्ठन्तं ध्यायेदखिलोज्ज्वलनाङ्गमति - शोभम्,
चूड़ा-शोभित-वक्त्रं कुक्कुटमति - तीक्ष्ण - नख - चरणम् ।
वक्त्रं यस्य षडाननो गिरि - सुता यस्योदरं कालहा,
पृष्ठं यस्य च बर्हि-कुक्कुर-मुखौ पादौ च वक्रेतरौ ।। २ ।।
पक्षौ यस्य सुर - द्रुमौ मणि - मयी या शृङ्खला - बन्धनी,
कामाकर्ष-करो करोतु स तु नः सर्वानसौ कुक्कुटः ।
गौरी हस्तारविन्दे त्वनिशमधि - वसन् षण्मुखारूढ़ - कायः,
सर्वालङ्कार - दीप्तः प्रचलित - चरणः पक्ष - विक्षेप - दक्षः ।
हेमाभो रत्न - चञ्चु - मणि - विलसद्- वृत्त-कण्ठः स्वरूपः,
पायान्नस्तात्र-चूड़ः सकल-जन-रतः सर्व-सिद्धि-प्रदाता ।।३।।

अन्य संक्षिप्त ध्यान इस प्रकार है—

सर्व-प्रियः सागर-मध्य-रत्न-द्वीपस्य तालाग्र-निवासि - कुक्कुटः ।
विद्याभिरामोऽखिल-भूषणाढ्यो वशीकरोत्याशु सु-सेवितो नरैः ।।

पुरश्चरण हेतु एक-लिङ्ग शिवालय में भगवान् शिव की महती पूजा करने के बाद उत्तर को मुख कर बैठे। अथवा पर्वत के शिखर या नदी-तट पर या वृष-शून्य शिवालय में, जिसका द्वार पश्चिम की ओर हो, पुरश्चरण करे। पहले गुरु को प्रणाम कर आसन की कल्पना करे। तब कर-शुद्धि, देह-शुद्धि कर ताल-त्रय द्वारा विद्या-मन्त्र से दिग्-बन्धन करे। फिर प्रणव 'ॐ' से तीन प्राणायाम कर मातृका-न्यास कर षडङ्ग-न्यास करे। यथा—

धूं हृदयाय नमः । कुक्कुट शिरसे स्वाहा । वीप्सैतत् शिखायै वषट् । त्वां कवचाय हुँ । वीप्सित-पूर्वकं नेत्र-त्रयाय वौषट् । धूं अस्त्राय फट् ।

तदनन्तर ललाट, भ्रू-मध्य, नेत्र, कर्ण, नासा, मुख, कण्ठ, हृदय, जठर, नाभि, लिङ्ग और गुह्य अङ्गों में न्यास कर नमोऽन्त मन्त्र द्वारा व्यापक न्यास करे। इस प्रकार न्यास-युक्त होकर वह्नि-शिवात्मक

कुक्कुट देव का ध्यान कर मानसिक षोडशोपचारों से उनका पूजन करने के बाद उन्हें बाहर आवाहन कर यथा-विधि पूजा द्वारा सन्तुष्ट करे। तब पुनः ध्यान कर भानु-सहस्र (१२ हजार) जप करे। १२ सौ से तर्पण कर पुरश्चरण सम्पन्न करे।

वश्य-कर्म-प्रयोगादि

'कुक्कुट'-मन्त्र द्वारा वश्य, आकर्षण, स्तम्भन, उच्चाटनादि षट्-कर्म के प्रयोग होते हैं, जिन्हें मूल ग्रन्थ में कृपया देखें।

चरणायुध-मन्त्र

'कुक्कुट' का ही नामान्तर 'चरणायुध' है। इनका १८ अक्षर का मन्त्र निम्न प्रकार है—

आं यूंकोलि यूंकोलि वां ह्रीं यूंकोलि यूंकोलि चुं वां क्रों।

भूर्ज-पत्र में इस मन्त्र को लिख कर 'कुक्कुट' का ध्यान कर सहस्र वार जप करने मात्र से जप करनेवाले की सभी आपत्तियों से रक्षा होती है और उसके गृह में लक्ष्मी स्थिर होकर वास करती है। यह मन्त्र कल्प-वृक्ष के समान सभी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करता है।

उच्छिष्ट-चाण्डाली-प्रयोग

फेत्कारिणी तन्त्र, षष्ठ पटल—सर्व-सिद्धि-दायिनी उच्छिष्ट-मातङ्गी को जानने से सभी आपत्तियाँ और पाप नष्ट होकर सभी प्रकार के सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इस देवता का मन्त्र उच्छिष्ट (जूठे) मुख से ही जपा जाता है। मन्त्र के प्रभाव से आचमन किए विना ही, जप करनेवाले का जूठापन दूर होकर वह शुद्ध हो जाता है। इस मन्त्र के फल-स्वरूप दुर्भाग्य, दुःख दूर होकर सुख मिलता है। वन्ध्या स्त्री भी चिरजीवी पुत्र प्राप्त करती है। निर्धनी धनी होता है, मूर्ख विद्वान् हो जाता है। जो-जो भी प्रार्थना की जाती है, वह सभी पूरी होती है।

इस मन्त्र की विधि यह है कि भोजन करने के बाद आचमन किए विना पहले मूल-मन्त्र से वलि प्रदान करे। फिर इष्ट-सिद्धि के लिए देवी का ध्यान कर मन्त्र का जप करे। २४ अक्षरों वाला मन्त्र निम्न प्रकार है--

नमः उच्छिष्ट-चाण्डालिनि सुमुखि देवि महा-पिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः

इस मन्त्र के पुरश्चरण के लिए न तो तिथि, नक्षत्रादि के विचार करने की आवश्यकता है और न अङ्ग-न्यास या वर्ण-न्यास आदि करने की। ध्यान निम्न प्रकार करे—

शवोपरि समासीनां रक्ताम्बर-परिच्छदां, रक्तालङ्कार-संयुक्तां गुञ्जा-हार-विभूषितां।
षोडशाब्दां च युवतीं पीनोन्नत-पयोधरां, कर्तृका-हस्तां परम-ज्योति-रूपिणी॥

बाँएँ हाथ में कपाल और दाँएँ में कर्तृका (कैंची) का ध्यान करे। उच्छिष्ट (जूठे) से वलि देकर उच्छिष्ट-दशा में ही जप करे, तो सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

इस मन्त्र द्वारा होम, तर्पण करने से विशेष कार्यों की सिद्धि होती है। इसके लिये स्थण्डिल में चतुरस्र मण्डल वनाकर मूल मन्त्र से उसमें पूजा करने के बाद वह्नि-रूपा देवी का ध्यान कर दधि-सिद्धान्त-तण्डुल द्वारा एक सहस्र होम करे, तो सर्वाभीष्ट-सिद्धि होती है। विविध द्रव्यों से होम करने के अलग-अलग फल हैं। यथा—छाग-मास से धन-प्राप्ति, शर्करा-मधु-खीर से विद्या-लाभ, नागवल्ली-मधु घृत से विद्या-सिद्धि, घृत-युक्त विल्व-पत्रों से वन्ध्या को भी चिरजीवी पुत्र की प्राप्ति, तिल-पायस से शास्त्र-ज्ञान इत्यादि।

इस मन्त्र को सिद्धि वामाचार से ही होती है। दक्षिणाचार से फल नहीं मिलता। भोजनोपरान्त बलि देकर प्रतिदिन उच्छिष्ट मुख से १०८ बार जप करे। श्मशान, शून्य-गृह, चतुष्पथ और वन में बलि देने से देवी प्रत्यक्ष होती है। इस मन्त्र के उच्चारण से साधक पवित्र होकर अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। मन्त्र का सदा स्मरण करे और दुग्ध, गुड़, पके मांस से हवन करे, तो मनुष्य आयु, धन और पुत्र से सम्पन्न होकर १८ विद्याओं का ज्ञाता होता है। गुरु की भक्ति शरीर और धन द्वारा करे, तो इस लोक में सुख पाकर अन्त में देवी-पुर में निवास करता है। यह विद्या पृथ्वी पर काम-धेनु के समान भोग और मोक्ष-दायिनी है।

ग्राम-मेध और उसका फल

मत्स्य-सूक्त, अष्ट-पञ्चाशत् पटल—'ग्राम-मेध' के करने से रोगों का कष्ट नहीं होता। न करने से ग्राम अर्थात् बस्ती में मृत्यु की दुर्घटनाएँ होती हैं, अतः प्रयत्न करके 'मेध' (यज्ञ) करना चाहिए। इस यज्ञ में देवी, शिव, विष्णु, प्रजा-पति, भद्रकाली, क्षेत्रपाल और घण्टा-कर्ण की पूजा विशेष रूप से कर्तव्य है।

धूमावती-प्रयोग और उसका फल

फेत्कारिणी तन्त्र, सप्तम पटल—धूमावती का मन्त्र निम्न प्रकार है—

'धूं धूं धूमावति स्वाहा'

यह मन्त्र शत्रु का निग्रह करता है। इस मन्त्र के ऋषि पिप्पलाद, छन्द निवृद् और देवता धूमावती हैं, जिनका ध्यान निम्न प्रकार है—

विवर्णा चञ्चला कृष्णा दीर्घा च मलिनाम्बरा, विमुक्त-कुन्तला रूक्षा विधवा विरल-द्विजा।
काक-ध्वज - रथारूढ़ा विलम्बित - पयोधरा, सूर्प-हस्ताति-रूक्षाक्षा धृत-हस्ता वरान्विता।
प्रवृद्ध - घोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा, क्षुत्-पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा।

नवर्ग के चौथे वर्ण 'ध' में षड्-दीर्घ-स्वर लगा कर अङ्ग-न्यास करे। यथा—

'धां हृदयाय नमः, धीं शिरसे स्वाहा, धूं शिखायै वषट्, धैं कवचाय हुँ, धौं नेत्र-त्रयाय वौषट्, धः अस्त्राय फट्।'

पुरश्चरण-सिद्धि के लिए कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी में जप करे। उपवास कर शून्य गृह, श्मशान या वन में दिन-रात एक लक्ष जप करे।

इस मन्त्र द्वारा मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि षट्-कर्म सम्पन्न होते हैं। विधि मूल-ग्रन्थ में द्रष्टव्य है। उल्लेखनीय है कि सभी अभिचार-कर्मों की शान्ति पञ्च-गव्य से होती है। क्षीर [दुग्ध] एवं मधुर-त्रय से भी शान्ति की जाती है।

कृत्या-परिमल का प्रयोग

त्रयोदश पटल—परिमलात्मक कृत्या मन्त्र के जानने मात्र से कोई भी कर्म असाध्य नहीं रह जाता। यथा—**ह्रीं महा-योगिनी गौरी भुवन-भयङ्करी हुं फट्।**

इस मन्त्र के ऋषि अङ्गिरा, छन्द गायत्री और देवता सिंह-वक्त्रा महा-कृत्या है। ध्यान निम्न प्रकार है—

सिहाननां कृष्ण - मुखीं लम्ब - मान - पयोधरां,
दंष्ट्रा - कराल - वदनां त्रिनेत्रां सर्वतोज्ज्वलां ।
कृष्ण- कंचुक - संवीतां विधूमाग्नि - सम - प्रभां,
त्रिशूल - चक्र - मुशल - खट्वांग - कर - पङ्कजां ।
लेलिहानां महा-जिह्वां विद्युत्-प्रेक्षस-भीषणां ।

इस मन्त्र के द्वारा षट्-कर्म सम्पन्न करने की विधि मूल ग्रन्थ में द्रष्टव्य है। उल्लेखनीय यह कि इस मन्त्र के प्रयोग से सभी अरिष्टों की भी शान्ति होती है।

जय-दुर्गा मन्त्र और ज्वालामुखी के प्रयोगादि

चतुर्दश पटल—जयदुर्गा का महा-मन्त्र निम्न प्रकार है—

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा ।

इस मन्त्र में कवच 'हुँ' का योग करने से रक्षा होती है। युद्ध में और सांसारिक जीवन में इस न्त्र के प्रभाव से विजय मिलती है।

ध्यान—श्यामां त्रिलोचनां दुर्गां ध्याये त्वेनां चतुर्भुजाम् ।
शङ्खं चक्रं शरं शूलं बहन्तीं रौद्र - रूपिणीम् ।।

गीधों के समूह से घिरी रहनेवाली 'ज्वालामुखी दुर्गा' का मन्त्र है—

ॐ नमो भगवति ! ज्वाला-मालिनि गृध्र-गण-परिवृते हुं स्वाहा फट् ।

इस मन्त्र में षडङ्ग-न्यास निम्न प्रकार करे—

ॐ नमो हृदयाय नमः । भगवति शिरसे स्वाहा । ज्वाला-मालिनि शिखायै वषट् । गृध्र-गण-रिवृते कवचाय हुं । हुं नेत्र-त्रयाय वौषट् । स्वाहा फट् अस्त्राय फट् ।

ज्वालामुखी का दूसरा मन्त्र निम्न प्रकार है—

ह्रीं ज्वालामुखि स्वाहा ।

इन सभी मन्त्रों के विधान षट्-कर्मादि से सम्बन्धित हैं, जो मूल में द्रष्टव्य हैं। गुरुवार से प्रारम्भ तेईस दिन तक आठ सहस्र उक्त मन्त्र का जप करने से प्रतिदिन छः रौप्य की प्राप्ति होती है। नारायणी विद्या है। दुर्गा नौ प्रकार की हैं। 'नव-दुर्गा' प्रसिद्ध हैं।

पाँचवाँ परिच्छेद

दुर्गोत्सव की विधि

दुर्गोत्सव

मत्स्य-सूक्त, महा-मन्त्र उपरि-भाग, एक-चत्वारिंशत् पटल—आश्विन के शुक्ल पक्ष में हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहते हुए नदी के जल में स्नान कर उसी के किनारे दुर्गा की आराधना करनी चाहिए।

पूजा का विधान

प्रतिपदा की नन्दा-तिथि के दिन 'कुम्भ' (कलश) में, द्वितीया के दिन 'पुस्तक' में, तृतीया को 'खड्ग' में पूजन कर चतुर्थी तिथि में 'केशों' का शोधन अर्थात् कङ्कतिका (कंघी) में पूजा करे। पञ्चमी के दिन 'सूर्य-विम्ब' में, षष्ठी को 'विल्व के मूल' में, सप्तमी के दिन 'पत्रिका' में और अष्टमी को 'प्रतिमा' में पूजा का विधान है।

ज्येष्ठा-नक्षत्र से युक्त षष्ठी तिथि में 'विल्वाभिमन्त्रण' कर, मूल नक्षत्र के आदि चरण की सप्तमी में 'पत्रिका-प्रवेश' करे। पूर्वाषाढ़ा-नक्षत्र से युक्त अष्टमी में देवी दुर्गा का 'पूजन' महोत्सव के साथ कर्तव्य है। नवमी तिथि के दिन उत्तरा-नक्षत्र में 'बलि-प्रदान' द्वारा शिवा की पूजा करे। श्रवण नक्षत्र के अन्त में दशमी में प्रणाम कर देवी का 'विसर्जन' करे।

देवी-पुराण का कथन है कि 'कन्या राशि में स्थित रवि के काल में शुक्ला षष्ठी से प्रारम्भ कर नन्दिका तक पूजा करे,' जिसकी व्याख्या स्मार्त्त भट्टाचार्य ने यह की है कि षष्ठी से नवमी तक यह दुर्गा पूजा होती है किन्तु दुर्गा-भक्ति-तरङ्गिणी में कहा है कि 'नन्दिका' से आशय है प्रतिपदा-तिथि से और यही बात ठीक है।

निर्दिष्ट नक्षत्र का अभाव हो, तो भी षष्ठी तिथि से क्रमशः उक्त सभी विधि सम्पन्न करे। नक्षत्र मिलने से विशेष फल होता है।

दुर्गा-महोत्सव षष्ठी से अष्टमी तक तीन दिनों का माना गया है। इन दिनों में जो अन्य देवता का यजन करता है, उसे फल नहीं प्राप्त होता। इस काल में शत-प्रतिशत देवी ही पूजनीया हैं। प्रत्येक प्रहर में स्नान करे, बलि प्रदान करे, होम करे, आमिष-युक्त अन्न से भोजन कराये। नवमी में प्रभूत बलि देने का विधान है, जिससे देवी अनन्त फल देती हैं।

पूजा-काल का निर्णय

ज्येष्ठा नक्षत्र या षष्ठी सायंकाल न होने पर भी सायं-समय ही विल्व-शाखा का अभिमन्त्रण करना चाहिए। सायं के पूर्व नक्षत्र-सहित भी यदि षष्ठी हो, तो वह त्याज्य है। सप्तमी के दिन विल्व का वरण कर अष्टमी में प्रवेश करे। नवमी में पूजन कर दशमी में विसर्जन करे। दिन का क्षय होने पर षष्ठी के पूर्व-दिन में विल्व-वन्दन कर षष्ठी-संयुक्ता सप्तमी में पत्रिका-प्रवेश करे और अष्टमी के दिन तड़के ही प्रतिमा का प्रवेश कराये तथा सप्तमी-युक्ता अष्टमी में महा-पूजोत्सव सम्पन्न करे। नवमी में बलि-प्रदान कर दशमी के दिन देवी को विदा करे। अगले दिन यदि नवमी दशमी से विद्धा हो, तो अष्टमी-युक्ता नवमी के ही दिन महा-पूजा और बलि-प्रदान दोनों ही कर्म करने चाहिए।

रात्रि में चन्द्रोदय होने पर अष्टमी तिथि के होने पर 'महाष्टमी' का पुण्य पर्व होता है, जिसमें पूजा करने से भगवती बहुत प्रसन्न होती हैं। इसी प्रकार 'महा-नवमी' तिथि को जानना चाहिये।

पूजा के आधार

चित्र, प्रतिमा, मिट्टी की मूर्ति, श्रीफल (नारिकेल), महा-योनि, चन्द्र-बिम्ब, शिला, त्रिकोण-मण्डल, पुस्तक, पादुका, खड्ग, महा-विल्व, पुण्य क्षेत्र या गङ्गा में देवी का आवाहन कर पूजा करनी चाहिए। गृहस्थ को 'मृण्मयी' अर्थात् केवल मिट्टी की प्रतिमा नहीं बनानी चाहिए। यह निषेध साढ़े तीन हाथ की मिट्टी की प्रतिमा-विषयक है। उससे छोटी तीन हाथ या उससे कम की मिट्टी–प्रतिमा, जो तृण-गर्भा हो, स्थापित करने में दोष नहीं है। विल्व-युग्म के सहित ऐसी प्रतिमा पूजनीय है।

विल्व-युग्म का विशेष-फल-कथन

माहेन्द्र एवं ईश कोण में स्थित 'विल्व-युग्म' ब्राह्मण या सभी वर्णों के लिए, ऊर्ध्व या उत्तर में स्थित क्षत्रिय के लिये, वायव्य में स्थित वैश्य एवं शूद्र के लिये प्रशस्त है। माहेन्द्रस्थ 'विल्व-युग्म' के पूजन से ज्ञान-वृद्धि और सभी कामनाओं की पूर्ति, वायव्यस्थ से धन-प्राप्ति और उत्तरस्थ से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। याम्यस्थ से शत्रु-वृद्धि और शेष कोणों (अग्नि, नैऋत) में स्थित 'विल्व-युग्म' से मृत्यु-भय होता है, अतः वे त्याज्य हैं।

विल्व-युग्म (बेल की एक ही शाखा में लगे दो बेल-फल) सुन्दर, गोलाकार और स्थूल होना चाहिए, कीटादि से दूषित न हो। पूर्वोक्त निर्दिष्ट स्थान में स्थित विल्व-युग्म यदि प्राप्त न हो सके, तो ऊर्ध्व (उत्तर) से नीचे मध्य स्थान में स्थित बेल-फल ग्रहण कर पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

विल्व-युग्म या प्रतिमा के गिरने का दोष और उसका प्रायश्चित्त

विल्व-युग्म को स्नान के स्थान पर ले जाते समय यदि वे गिर पड़ें या मृण्मयी प्रतिमा गिर जाय, तो मृत्यु-भय होता है। अतः इस दोष की शान्ति के लिए अयुत (दस सहस्र) होम घृत से कर गो-दान और दक्षिणा देनी चाहिये तथा श्वेत छाग की बलि देनी चाहिये।

पूजा-मण्डप के स्थान का निरूपण

'कूर्म-चक्र' के शिर स्थान को दीप-स्थान माना गया है। उसकी विधि 'तन्त्रसार' में दी है। देखें 'हिन्दी तन्त्रसार', पृष्ठ ४२ या 'मन्त्र-सिद्धि का उपाय,' पृष्ठ ५२। दीप-स्थान से भिन्न यदि तृण-काष्ठ-मय गृह में पूजा-मण्डप बनाना हो, तो उसमें दोष नहीं है। अभीष्ट गृह में ईशान, महेन्द्र या उत्तर दिशा में ३५, ३१, ९ या ४ हाथ विस्तृत सुन्दर पूजा-मण्डप यथा-शक्ति बनाए। उसके अगल-बगल दोनों ओर स्थान छोड़कर चारों दिशाओं के प्रमाण से मध्य में गोलाकार पीठिका पर देवी की प्रतिष्ठा करे।

सिंहासनादि का विवरण

एक हाथ ऊँची वेदी पर रङ्गों से सर्वतो-भद्र आदि महा-चक्र की रचना कर उसके मध्य में पीठ स्थापित करे। यही सिंहासन है।

षष्ठी, सप्तमी आदि के कर्तव्य

शारदीय नवरात्र के अन्तर्गत षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और दशमी में की जानेवाली पूजा का प्रामाणिक विवरण मूल में द्रष्टव्य है। यह विवरण हिन्दी में विस्तार से 'नवरात्र-कल्पतरु' और 'नवरात्र-पूजा-पद्धति' (पौराणिक) में उपलब्ध है। अतः जिज्ञासु पाठक कृपया उन पुस्तकों में देखें।

छठा परिच्छेद

दुर्गा के विशेष मन्त्र और ध्यान-पूजा, स्तुति आदि

त्र्यक्षर दुर्गा-मन्त्र

वाक् (ऐं), शक्ति (ह्रीं) और कमला (श्रीं)—यह त्र्यक्षर मन्त्र नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीनों कर्मों में तथा मोक्षार्थ उपयोगी है। शारदीय-प्रयोग के लिए इसकी विशेष महिमा है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप्, देवता परमेश्वरी चण्डिका और विनियोग चतुर्वर्ग-फल-प्राप्त्यर्थ है। पुरश्चरण पाँच लाख जप एवं तद्-दशांश तर्पण, होमादि से सम्पन्न होता है। इसके लिए पूजा-यन्त्र है—१ षट्-कोण, २ अष्ट-दल, ३ षोडश-दल और ४ चार द्वार-युक्त चतुरस्र। इसके दलों में ब्राह्मी आदि की, षट्-कोणों में जयन्ती आदि की और शेष दलों में अमृतादि कलाओं की पूजा करे। ध्यान मूल ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड या 'श्रीदुर्गा-कल्पतरु' के पृष्ठ १६ पर देखें।

ध्यान कर मन्त्र जपे और बलि देकर मत्स्य-सूक्तोक्त दुर्गा-स्तुति पढ़े। यथा—

अस्य दिव्य-कवच - महा-मन्त्र - स्वरूप - श्रीदुर्गा - स्तोत्रस्य श्रीनारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्दः, श्री परमेश्वरी चण्डिका देवता, चतुर्वर्ग - फल - प्राप्त्यर्थे पाठे विनियोगः।

ॐ पर-ब्रह्म-स्वरूपां च वेद-गर्भां जगन्मयीं। शरण्ये! त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥१
कामाख्यां कामदां श्यामां काम-रूपां मनोरमां। ईश्वरीं त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम्। २
त्रि-नेत्रां हास्य-संयुक्तां सर्वालङ्कार-भूषितां। विजयां त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीं ॥३
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानां सिद्ध-गन्धर्व-सेवितां। भवानीं त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥४
निशुम्भ-शुम्भ-मथिनीं महिषासुर-घातिनीं। दिव्य-रूपामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥५
विंशत्यर्द्ध-भुजां देवीं शुद्ध-काञ्चन-सन्निभां। गौरी-रूपामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥६
त्रिशूलं खड्ग-चक्रं च बाण-शक्ति-परश्वधं। दधानां त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥७
जगन्मयीं महा-विद्यां सृष्टि-संहार-कारिणीं। सर्वदैवमहं वन्दे दुर्गां दुर्गति - नाशिनीम् ॥८

फल-श्रुति

इदं तु कवचं दिव्यं महा-मन्त्रं महा-फलं। यः पठेन्मानवो नित्यमस्मद्-भक्ति-समन्वितः।
धनं धान्यं प्रयच्छामि सकृदावर्तनं च ॥

दशाक्षर जयदुर्गा-मन्त्र

महा-विद्या जय-दुर्गा का दशाक्षर मन्त्र है—**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा**। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता दुर्गा और विनियोग सर्वार्थ-प्राप्त्यर्थ है। एक लक्ष जप और दशांश होम, तर्पणादि से पुरश्चरण होता है। महिष-मन्त्र से आसन देकर मूल-मन्त्र से मूर्ति-कल्पना कर ध्यान करे—

ततो जल-निधेस्तीरे वन-राजि-विराजितं, तमाल-ताल-हिन्ताल-पाटलामलकैर्वृतम्।
कुन्द-मन्दार-दाड़िम-कदम्ब-कुसुमैर्युतं, चम्पकाशोक - रम्भाढ्यं चन्दनागुरु - भूषितम्।
सुगन्धि-कुसुमामोद-गन्धामोदित-दिङ्-मुखं, पशु-पक्षि-गणाकीर्णं विल्व-नीप-सरोवरम्।
कुमुदोत्पल-कल्हार- पुण्डरीकोप-शोभितं, तस्मिन्नमृतदं चारु - पारिजात - चतुष्टयम्।
पाद-पल्लवमामोदि मञ्जीर-पुञ्ज-धारितं, तस्मिन्मणि-मयं कुण्डं मण्डपं मणि-कुट्टिमम्।

तड़ित्-कोटि-प्रतीकाशं बालादित्य-सम-प्रभं, मण्डितं पाण्डरच्छत्रैर्विमानेन विराजितम् ।
शोभितं शत-साहस्रैर्ध्वजैः पाण्डर-चामरैः, तत्र सिंहासनं रम्यं रत्न-दाम-विराजितम् ।

ततो भावयेद् भास्वरं सिंहमाजं चतुर्वेद-पादं चतुर्विंश-तत्त्वम् ।
बहिर्लोलजिह्वं चलत्-पिङ्गलाक्षं तुषार-प्रभं दुर्निरीक्षं समस्तैः ।
महत्ता - प्रभवारक्त - पङ्कजं षट् - पुरान्वितं,
विभ्राजमानं विस्तीर्णं मृगराजोपरि - स्थितम् ।

ध्यायेत् तस्मिन् तप्त-जाम्बू-नदाभां दिव्यैर्भासयन्तीं त्रि-नेत्रैः,
चन्द्रादित्यौ कुण्डले द्वे दधानामूर्ध्वे चन्द्रं धारयन्तीं मुदा हि ।

स छिन्न-बल-वीर्यौघो निर्गतो महिषासुरः, सप्रासेन त्रिशूलेन भ्रुकुटी-कुटिलाननाम् ।
गृहीत-नाग-तत्केश - मृगेन्द्राकृष्ट- वाहकं, लोहितास्यैर्महा-घोरैः शार्दूलैरपि भक्षितम् ।
नियुक्तं रक्तपं सिंहं वीक्षयन्ती मुहुर्मुहुः, सिद्ध-गन्धर्व - रक्षोभिर्यक्ष- विद्याधरोरगैः ।
गीता-वादित्र-निर्घोषैः स्तूयमाना महेश्वरी, महोत्सवे महा-रात्रौ उत्थाने शयनेऽपि च ।

नित्यां नीलोत्पलाभ्यां तांत्रि-नेत्रां शशि-शेखरां, चतुर्भिः स्व-करैर्धत्ते शङ्ख-चक्र-कृपाणकम् ।
त्रि-शिखं च जटा-जूटं सिंहस्थामपि चिन्तयेत् ।।

उक्त प्रकार ध्यान कर १ प्रभा, २ माया, ३ जया, ४ सूक्ष्मा, ५ विशुद्धा, ६ नन्दिनी, ७ सुप्रभा, ८ विजया और ९ सर्व-सिद्धि—इन नौ पीठ-शक्तियों के साथ पूजन करे ।

भगवती दुर्गा के ध्यान

अष्टादश-भुजा दुर्गा का ध्यान निम्न प्रकार है—

सूर्य-मण्डल-मध्यस्थां दावाग्नि-सदृश-प्रभां, जटा-जूट-समायुक्तां त्रि-नेत्रां शशि-शेखरां ।
अष्टादशाब्दिकां देवीं रक्ताम्बर-विभूषितां, निघ्नन्तीं महिषं चैव सिंहासनोपरि-स्थितां ।
शक्तिं च दुर्द्धरं शूलं वज्रं खड्गं तथांकुशं, शरं चक्रं शलाकं च वाम-दक्षिणतः शृणु ।

कात्यायनी दुर्गा का मन्त्र जय-दुर्गा के मन्त्र के आदि में प्रणव के बाद वाग्-बीज लगाने से बनता है । द्वादश-भुजा दुर्गा के मन्त्र के आदि में श्री-बीज रहता है ।

चतुर्भुज दुर्गा का एक ध्यान निम्न प्रकार है—

सिन्दूरार्क-प्रसङ्काशां पीनोन्नत-पयोधरां, त्रि-नेत्रां महिषघ्नीं च चन्द्र-लेखांशुभिर्युतां ।
करैश्चतुर्भिः खड्गं च शूलं चक्रं गदां तथा, वामे चर्मांकुशं घण्टां मुण्ड-पञ्चकमेव च ।

अष्ट-भुजा दुर्गा का ध्यान इस प्रकार है—

सूर्य-कोटि-प्रतीकाशां त्रि-नेत्रां शशि-शेखरां, मृग-चर्मोत्तरासङ्गां सिंह-स्कन्ध-निवासिनीं ।
अष्टभिर्बाहुभिः खड्गं चक्रं दक्षिण-बाहुभिः, वज्राशनिं कपालं च वामे चर्म धनुः शरं ।
घण्टां च परशुं चैव क्रमादस्त्राणि वै प्रिये !

चतुर्भजा-दुर्गा का एक ध्यान वैष्णव श्रीवत्स के अनुसार निम्न प्रकार है—

सिंहारूढां महा-भीमां शूलं चक्रं धनुस्तथा, शङ्खं पद्मं च महिषं निघ्नन्तीं परिचिन्तयेत् ।

दुर्गा-नाम का माहात्म्य और फल

मुण्ड-माला तन्त्र, पिच्छिला तन्त्र और यामल के वचनों के आधार पर 'दुर्गा' नाम की महिमा बताई गई है, जो मूल ग्रंथ में द्रष्टव्य है । हिन्दी में विस्तार से 'श्री दुर्गा कल्पतरु' में प्रकाशित है । यहाँ

इतना उल्लेखनीय है कि 'दुर्गा' नाम-मन्त्र का पुरश्चरण एक लक्ष जप से सम्पन्न होता है, जिससे सभी आपत्तियों से रक्षा होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दुर्गा शतनाम स्तोत्र

मुण्ड-माला-तन्त्रोक्त। यह मूल ग्रंथ, द्वितीय खण्ड या 'श्री दुर्गा-स्तव-मञ्जरी' में द्रष्टव्य है।

बलि-प्रकरण

समयाचार तन्त्र—प्रति-दिन भोजन करते समय भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व मूल-मन्त्र द्वारा 'बलि' देनी चाहिए। भोजन कर चुकने पर 'बलि' को उठाकर एकान्त स्थान में रख देना चाहिए।

उत्तराम्नाय में मातङ्गी के लिए 'बलि' भोजन कर चुकने पर आचमन किए बिना ही मूल-मन्त्र द्वारा प्रतिदिन देने की विधि है। 'बलि' देने के बाद कुछ जप करने के बाद आचमन करना चाहिए।

'बलि' दो प्रकार की होती है—१ सात्विक, २ राजस। सात्विक 'बलि' में मांस, रक्तादि नहीं होते। राजस 'बलि' मांस-रक्तादि से युक्त होती है।

गायत्री मन्त्र, पञ्चम ब्राह्मण पटल—'बलि' तीन प्रकार की होती है—१ उत्तम, २ अधम और ३ मध्यम।

मत्स्य-सूक्त—साधक तीन प्रकार के हैं—१ सात्विक, २ राजस, ३ तामस।

योगिनी तन्त्र, उत्तर खण्ड, सप्तम पटल—विप्रों को दूध, शाल्यन्न, पायस (खीर), घृत-युक्त चरु, फल, पुष्प, मधु, मोदक आदि; क्षत्रियों को प्रशस्त पशु आदि; वैश्यों को विहित अन्नादि और शूद्रों को सभी क्षुद्र अन्न और पशु आदि की बलि देनी चाहिए।

प्रशस्त और निषिद्ध पशु, अन्न, फलादि के ज्ञान के लिए मूल ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड द्रष्टव्य है।

बलि देने के मन्त्र

अर्द्ध-रात्रि में चतुष्पथ पर बलि देने से शत्रु, ग्रहावेश, रोग, कृत्यादि का निवारण होता है। रम्भा (केला), जाती - पुष्प, बीजपूर (नीबू), सुगन्धि (धूप आदि) मिश्रित कर बलि दे। बलि देने का मन्त्र निम्न प्रकार है—

ॐ उग्र-तारे विकट-दंष्ट्रं पर-मोक्षं मोहय मोहय खादय खादय पच पच। ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनी-चक्रे तान् दारय हुं फट् स्वाहा। सर्व-विद्यामाकर्षयाकर्षय छेदय छेदय हन हन कपाले गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

बृहन्नील तन्त्र, षष्ठ पटल—क्षीर (दूध) से शत्रु-बलि को निर्मित कर, शत्रु-नाम से उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर, क्रुद्ध दृष्टि से उसे देखकर प्रहार द्वारा उसके दो टुकड़े कर बलि प्रदान करे, तो निश्चित रूप से शत्रु का क्षय होता है।

मत्स्य-सूक्त—शत्रु-नाश के उद्देश्य से—

'कात्यायन्यम्बिके ! ॐ हन हन दह दह पच पच मथ मथ प्रमथ प्रमथ ह्रीं ह्रीं वश वश चण्डि ! चण्डि ! त्रां क्षं क्षं धं त्रां चामुण्डे ! ॐ भक्षय दह दह मथ मथ पच पच छिन्धि छिन्धि ॐ जय जय स्फोटय स्फोटय कर्तय कर्तय दह दह मम शत्रुं दाहय दाहय ह्रीं ह्रीं छेदय मोहय छेदय छेदय विश्लेषय मम शत्रुं ॐ हन हन भक्षय भक्षय त्रासय त्रासय नाशय नाशय आवेशय आरोहय स्फोटय उच्चाटय उन्मत्तय उन्मत्तय।'

[illegible] जप कर एक काला पुष्प लेकर स्वयं ही उसे छिन्न-भिन्न करे—रिपु-पक्ष को [illegible] फिर निम्न मन्त्र से बलि प्रदान करे—

उच्चा[illegible]

उक्त मन्त्र [illegible]

नष्ट-भ्रष्ट करने की भावना के साथ [illegible]

विलयं यान्तु ते सर्वे ये मां हिंसन्ति जन्तवः । मृत्यु-रोग-भय-क्लेशाः पतन्तु शत्रु-मस्तके ।
शत्रु के मस्तक पर भावना द्वारा क्रुद्ध दृष्टि डाले और कहे—**हुं हुं स्वाहा स्वाहा ।**

उत्तरोत्तर प्रशस्त बलि-पशु

मत्स्य-सूक्त में छाग, कूर्म, शशक आदि पशुओं में से कौन बलि-पशु बलि देने में अधिक प्रशस्त हैं, इसका विवरण दिया गया है, साथ ही खड्ग-पूजा एवं बलि-छेदन-विधि का वर्णन है, जो मूल ग्रंथ, द्वितीय खण्ड में द्रष्टव्य है ।

होम-विधि

शारदा-तिलक, गणेश-विमर्षिणी, वशिष्ठ-संहिता, स्मृति-सार, मन्त्र-मुक्तावली, कात्यायन, राघव भट्ट, मत्स्य-सूक्त, योगिनी तन्त्र, वीर मित्रोदय में उद्धृत हस्ति-हृदय-प्रबन्ध आदि के उद्धरणों के आधार पर होम की विस्तृत विधि मूल ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड में द्रष्टव्य है । यहाँ कुछ विशेष बातों का उल्लेख किया जाता है—

आहुति देने की विधि

हाथ उत्तान (हथेली को ऊपर कर) रखे, अँगुलियाँ परस्पर सटी रहें और अँगूठे के अगले भाग से तिल, मोदक, पायस आदि हव्य वस्तु आगे सरका कर आहुति देनी चाहिए ।

घृत आदि की आहुति अधोमुख स्रुवा द्वारा देनी चाहिए ।

द्रव्य-विशेष में अग्नि-जिह्वा

१ घृत की आहुति में 'हिरण्या', २ शस्य (अन्न) की आहुति में 'कनका', ३-४ समिधा की आहुति में 'रक्ता' और 'कृष्णा', ५-६ मोदक की आहुति में 'सुप्रभा' और 'बहु-रूपा' (अति-रूपका), ७ पत्र की आहुति में 'पुष्पा'—ये सात जिह्वायें अग्नि की कही गई हैं ।

द्रव्य के अभाव में उनके प्रतिनिधि

कथित द्रव्य के अभाव में उसके स्थान पर निम्न प्रकार प्रतिनिधि द्रव्य बताए गए हैं—१ अर्क =उडुम्बर, २ खदिर=शमी, ३ पिप्पल=पलाश, ४ अपामार्ग=पलाश, ५ कुश=दूर्वा, ६ इक्षु=अमृता (पटोल), ७ अमृता=पलाश, ८ पद्म=हयारि (कमल-विशेष), ९ घृत=शुद्ध क्षीर (दूध), १० क्षीर=दधि, ११ मधु=गुड़, १२ शर्करा=श्रीखण्ड (चंदन) या गुड़-खण्ड, १३ मोदक=पिष्टक ।

उक्त पदार्थ एक दूसरे के प्रतिनिधि हैं अर्थात् कुश के अभाव में दूर्वा से और दूर्वा के अभाव में कुश से काम चलाना चाहिए । इसी प्रकार अन्य युगल द्रव्यों के सम्बन्ध में भी समझे । रस का प्रतिनिधि रस ही होता है, सभी रसों के अभाव में 'ईख का रस' ले सकते हैं । इसी प्रकार निर्दिष्ट फल का अभाव हो, तो उसके स्थान में कोई अन्य फल ले सकते हैं । ऐसे ही काष्ठ का प्रतिनिधि अन्य काष्ठ ही और पुष्प का प्रतिनिधि अन्य फूल ही होता है ।

पूर्णाहुति देने का नियम

'पूर्णाहुति' खड़े होकर ही देनी चाहिए । बैठे-बैठे कभी 'पूर्णाहुति' न दे । नित्य-होम में 'पूर्णाहुति' नहीं दी जाती ।

सातवाँ परिच्छेद

मास-कृत्यादि का कथन

चान्द्र मास के अनुसार धार्मिक कृत्यों (व्रत, पूजा, पर्वोत्सवादि), वर्ष-कृत्य, देवी-षोडश-यात्रा का सविधि फल-सहित विवरण विस्तार से मूल ग्रन्थ में द्रष्टव्य है। यहाँ प्रमुख कृत्यों का विवरण उद्-धृत किया जाता है—

आश्विन मास के कृत्य

(१) **विजया-दशमी : मत्स्य-सूक्त, द्वि-पञ्चाशत् पटल**—शुक्ल पक्ष की दशमी को 'रेवन्त' की पूजा करने से इस लोक में सुख और अन्त में शिव-लोक में स्थान मिलता है। घोड़े पर सवार, दोनों हाथों में खड्ग और ढाल लिये 'रेवन्त' को पूजा निम्न मन्त्रों से करे—

नमस्ते सूर्य-पुत्राय तुरङ्गानां हिताय च, शान्ति कुरु तुरङ्गानां रेवन्ताय नमो नमः।
ॐ गन्धर्व-कुल-जातः त्वं भू-पालाय च केशव, ब्रह्मणस्तत्त्व-वाह्यो न सोमस्य वरुणस्य च।
तेजसा चैव सूर्यस्य स्व-लीला ते पदा तथा, रुद्रस्य ब्रह्मचर्यस्य पवनस्य बलेन च।

रात्रि बीतने के बाद द्वि-गुण सूत्र में पद्म-पत्र, नव-धान्य की बाली, सरसों आदि बाँधकर अपने गले में पहने और अस्त्र, शस्त्रादि तथा राज्य के विशेष अङ्गों को उससे विभूषित करे। दशमी के अपराह्न में खञ्जन या नील-कण्ठ पक्षी का दर्शन कर नमस्कार करे और निम्न मन्त्र से स्तुति करे, तो ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है—

वासुदेव-स्वरूपेण सर्व-काम-फल-प्रद ! पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट ! नमोऽस्तु ते।
खञ्जनाय नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्ट - प्रदाय च, नील - कण्ठाय भद्र - रूपाय ते नमः।
भद्र ! त्वं देहि मे भद्रकाशां पूरय पूरक ! स्वस्तिकोऽसि कुरु स्वस्ति खञ्जरीट ! नमोऽस्तु ते।

नारायण-स्वरूपाय संवत्सर-सुख-प्रद ! नील-कण्ठ ! महादेव ! खञ्जरीट ! नमोऽस्तु ते।
देव - दानव - यक्षाणां नराणां पुष्टि - वर्धनं, दर्शनं तव भद्रस्य विष्णु - रूप ! नमोऽस्तु ते।

जल के पास, भवन, पर्वत-शिखर पर दर्शन शुभ होता है। गोशाला में दर्शन हो, तो धन-वृद्धि; कमल के फूलों के बीच हो, तो राज्य-प्राप्ति; देवालय, जलाशय के किनारे हो, तो धन-प्राप्ति; श्मशान में हो, तो मृत्यु होती है।

(२) **कोजागरी लक्ष्मी-पूजा :** रात्रि में चाँदनी होने पर पतिव्रता गृहिणी इन्द्र और लक्ष्मी की सुगन्धित पुष्पादि से पूजा कर पायस (खीर) की बलि अन्न के व्यञ्जनों के साथ दे तथा नारिकेल फलों से देवों व पितरों की पूजा कर भाई-बन्धुओं का सत्कार करे। नारिकेल का जल पिए और रात्रि में जागरण करे। कलश, रेशमी वस्त्र या पीढ़े पर चन्द्रमा की पूजा करे। इस अवसर पर लक्ष्मी का ध्यान निम्न प्रकार करे—

नव-यौवन-सम्पन्नां तप्त-काञ्चन-सन्निभां, द्वि-नेत्रां द्वि-भुजां रम्यां दिव्य-कुण्डल-धारिणीं।
श्री-फलं दक्षिणे पाणौ वामे पद्मं च बिभ्रतीं, सर्वालङ्कार-सम्पूर्णां सर्वालङ्कार-गर्वितां।
किन्नरामर-गन्धर्व-सिद्ध-चारण-सेवितां।

'श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः' से षडङ्ग न्यास कर पूजा करने की अनुमति निम्न मन्त्र से माँगे—

क्षीरोदार्णव-सम्भूते ! विष्णोरुरसि संस्थिते । गृहाण पूजां देवेशि ! कौमुद्यां च नमोऽस्तु ते ।

अब लक्ष्मी के पूजा-यन्त्र में पूर्वादि दलों में 'भूति' आदि नौ शक्तियों, 'वासुदेव' और 'वामन' आदि आवरण-देवताओं की पूजा करे ।

पूजा के बाद विल्व, पद्म, धेनु मुद्राएँ दिखाते हुए निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

विश्व-रूपस्य भार्यासि पद्मे पद्मालये शुभे ! महा-लक्ष्मि नमस्तुभ्यं कौमुदीं च कुरुष्व मे ।
नमस्ते सर्व-जगतां वरदासि हरि-प्रिये ! या गतिस्त्वत्-प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात् ।
लक्ष्मि देवि ! नमस्तुभ्यमचला भव सर्वदा । कमले वरदे देवि ! कुलोद्योत - करी मम ।
हिताय सर्व-भूतानां यथा नारायणे स्थिता । तथा त्वं पाहि मां देवि ! सर्व-लक्षण-सम्भवे ।
कृता पूजा मया भक्त्या कमले वरदे शुभे ! पूजां गृह्ण परमेशानि ! नमस्ते कमलालये !

लक्ष्मी-पूजा के बाद कलश में देवराज 'इन्द्र' का इस प्रकार ध्यान करे कि वे शची (इन्द्राणी) के साथ ऐरावत पर विराजमान हैं और एक हाथ में वज्र लिए दूसरे हाथ से वर दे रहे हैं । निम्न मन्त्र से उनकी पूजा करे—

वज्र-हस्त, महा-बाहो, बहु-नेत्र, पुरन्दर ! रक्षार्थं सर्व-भूतानां पूजां प्रतिगृह्यताम् ।

कार्तिक मास के कृत्य

(१) **गो-शृङ्ग में लक्ष्मी-पूजा** : मत्स्य सूक्त, त्रि-पञ्चाशत् पटल—शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा में, जब सूर्य तुला-राशि में हों, गाय की सींगों में कमलालया (लक्ष्मी) की पूजा कुन्द पुष्पों से करे और पायस (खीर) की बलि दे । इससे सब पापों का नाश होता है ।

(२) **दुर्गा-पूजा** : विशेष कर शुक्लाष्टमी में तीनों काल खड्ग में दुर्गा का पूजन करने से यश और तेज की वृद्धि होती है ।

(३) **सुन्दरी-पूजा** : वृहन्नील तन्त्र, षष्ठ पटल—शुक्ल पक्ष की नवमी में पर-देवता सुन्दरी की पूजा करे । मत्स्य-सूक्त—शुक्ला नवमी में तिलों से होम करे ।

(४) **देवोत्थान-पूजा** : शुक्ला एकादशी में श्वेत तिलों से स्नान कर हरि की पूजा करे और शुक्ला द्वादशी के प्रातःकाल में नित्य-कर्म कर सङ्कल्प-पूर्वक गणेश, ब्रह्मा, दिक्-पालों और नव-ग्रहों की पूजा कलश में कर स्थण्डिल में हरि की पूजा करे । पञ्चामृत और सुगन्धित तीर्थ-जल से स्नान कराकर कुमुद, पङ्कज और शारदीय पुष्पों से तीन काल पूजन कर रात्रि में होम करे । मध्याह्न में प्रबोधन करे । हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र पढ़े—

ब्रह्मेन्द्र-रुद्रैरभिनूयमानो भवान् सुरौघैश्च विवन्दनीयः,
प्राप्ता तवेयं द्वादशी कौमुद्याख्या त्वमेव जागृष्व हि लोक-नाथ !
मेघागतैर्निर्मल-चन्द्र-तोयैरारण्य - पुष्पैरथ सौरभेयैः,
अहं ददामीति च धर्म-हेतोः जागृष्व जागृष्व च लोक-नाथ !

फिर घुटनों के बल भूमि पर बैठकर प्रार्थना करे—

ॐ प्रसीद नारायण, कृष्ण, विष्णो, मुकुन्द, लक्ष्मीश ! भवन्नमस्ते ।
सम्पश्य लक्ष्मीं तव भाव - भूतिमाश्रित्य च श्रित्य च लोक-नाथ !

रात्रि का समय नृत्य, गीत, पुराण सुनने आदि में व्यतीत करे। प्रातःकाल गाय की पूजा कर ब्राह्मणों को विधिवत् दक्षिणा प्रदान करे।

(५) **अपामार्ग-पूजा** : कृष्णा त्रयोदशी में प्रातःकाल विधिवत् नदी में स्नान कर उमा, हर, रवि, विष्णु को चन्दन द्वारा अङ्कित कर पद्म-पत्रों और विल्व-पत्रों से पूजा करे। शाक से देवों को सन्तुष्ट कर स्वयं भी शाकाहार करे। मध्याह्न में कलश को स्नान कराकर उसे वस्त्र से विभूषित करे। फिर बान्धवों के साथ अपामार्ग के पुष्प द्वारा गायत्री मन्त्र या निम्न मन्त्र का जप करते हुए अपने सिर का तीन बार वामावर्त्त-क्रम से अभिषिञ्चन करे—

यत् - कृतं दुष्कृतं कर्म मया जन्म - शतान्यपि,
व्यापाद्य त्वत् - प्रसादेन अपामार्ग ! हरस्व मे।

(६) **प्रेत-पूजा** : कृष्णा चतुर्दशी में, यदि अगले दिन रात्रि 'दर्श' (अमावास्या) युक्ता न हो, प्रेत-पूजा करे। सूर्योदय-गता तिथि ही प्रेता-कथा सुनने एवं यम-तर्पण के लिए विहित है। एकादशी से पञ्चदशी तक निरामिष रहे और एक बार भोजन करे। इसे 'भीष्म-व्रत' कहते हैं।

(७) **लोला-लक्ष्मी सहित विष्णु-पूजा** : पूर्णिमा में तुलादित्य होने पर लोला-लक्ष्मी-सहित विष्णु का पूजन चन्दन द्वारा करने से कुल का नाश नहीं होता। तुला राशि में सूर्य के आने पर लक्ष्मी निद्रा तज-कर जागती हैं। उस समय उनकी पूजा करने से वे स्थिर होकर रहती हैं। श्वेत कलश में लक्ष्मी, रक्त कलश में कुबेर और पीत कलश में विष्णु पूजनीय हैं। विविध वन्दनाओं एवं नैवेद्यों से यह पूजा करे।

(८) **सुख-रात्रि और मलिम्लुच** : मत्स्य सूक्त—कार्तिक में दो 'दर्श' (अमावास्या) हों, तो प्रथम 'सुख-रात्रि' और द्वितीय 'मलिम्लुच' होती है। 'मलिम्लुच' में वृश्चिक राशि में विष्णु के उत्थान के बाद लक्ष्मी का प्रबोधन होता है। यदि अगले दिन एक दण्ड रात्रि में 'दर्श' (अमा०) योग हो, तो पूर्व रात्रि को छोड़कर अगली ही रात्रि को 'सुख-रात्रि' माने। इस समय श्राद्ध करने से अक्षय फल मिलता है। सौ ग्रहणों में तीर्थ-स्नान का जो फल होता है, वह पुण्य प्राप्त होता है। इष्ट-देव और पितरों के उद्देश्य से शिवालय में दीप-दान करे। दीर्घायु की इच्छा हो, तो चतुष्पथ पर दीप-दान करे। यथा-शक्ति ३२, २५, १६, ५, ३ या १ आकाश-दीप प्रदान करे। पूजा-यन्त्र के दलों में १ कमला, २ ह्लादिनी, ३ धरणी, ४ विजया, ५ जया, ६ लक्ष्मी, ७ सुभद्रा और ८ महा-माया की पूजा कर दलाग्र-भाग में ब्रह्मादि और वासुदेवादि का पूजन करे। शङ्ख, पद्म-निधि, कुबेर, वरुण और इन्द्रादि की सविधि पूजा कर निम्न प्रकार स्तुति करे—

त्वं गतिः सर्व-भूतानां वरदासि हरि-प्रिये ! सर्वानन्द-करे, देवि, सर्व-शाखे ! नमोऽस्तु ते।
लोले देवि ! नमस्तेऽस्तु नरकार्णव-तारिणि ! क्षीरोद-मथनोद्भूते ! प्रसीद परमेश्वरि !
जय पद्मालये देवि ! जय लक्ष्मि, हरि-प्रिये ! सर्वानन्द-करे, देवि, सर्व-शाखे ! नमोऽस्तु ते।
जय क्षीरोद - दुहितर्मद् - गेहे सुस्थिरा भव, इयं सांवत्सरी - पूजा नैवेद्यादिकमुत्तमम्।
लोले ! गृहीत्वा तत्-सर्वं गृहाण परमेश्वरि !

ईशान कोण में दीप-दान के बाद निम्न मन्त्र पढ़े—

दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह, प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे।
ऊर्ध्वतः सप्त-लोका ये ये चाधो-वर्तिनः सदा, दत्ताकाश-प्रदीपेन प्रकाशं विचरन्तु ते।

ये च नारकिणो लोकाः पीड़या बाधिताः सदा, भवस्थास्ते प्रकाशं तु दत्ताकाश-प्रदीपतः।
अन्धकारे स्थिता ये च ये च लोक-विवर्जिताः, तेषां प्रकाशनार्थाय प्रदीपो दीयते मया।
यम-द्वारे महा-घोरे सन्ति ये पुरुषा मम, तेषां प्रकल्पितार्थाय प्रदीपो दीयते मया।
वात-वर्ष-पतङ्गादि-स्नेह-वर्त्ति - क्षयादिना, निर्वाणस्य प्रदीपस्य न दोषो मम केशव !
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे, नमो धर्माय रुद्राय कान्तार-पतये नमः।

फिर दक्षिणाभिमुख होकर निम्न मन्त्र से उल्का-दान करे—

उल्का-मुखाश्च ये केचिच्चरन्ति इह भू-तले, उज्ज्वल-ज्योतिषा दग्धास्तेषां तु परमा गतिः।
आपदो मम नश्यन्तु सुख - रात्रि - प्रसादतः, उल्का - सन्दीपनेनैव वर्द्धन्तु मम पूरुषाः।

(६) **कालरात्रि-व्रत** : अमावास्या से 'काल-रात्रि-व्रत' प्रारम्भ होता है।

अग्रहायण (मार्गशीर्ष) के कृत्य

(१) **जगद्धात्री-पूजा** : शुक्ला द्वितीया में जल में जगद्धात्री की पूजाकर एकाहार से रहते हुए तृतीया में जनार्दन की, चतुर्थी में श्रीकान्त की, एकादशी में जनार्दन की, द्वादशी में ब्रह्मा की, त्रयोदशी में इन्द्र की, चतुर्दशी में गौरीश की श्वेत-पद्मों से पूजा करे। श्वेत वस्त्र पहने और तीनों काल संयम-नियम से रहे। मधु से देवों का तर्पण करे तो ब्रह्म-लोक की प्राप्ति होती है।

(२) **अन्नदा-पूजा** : शुक्ला सप्तमी में अन्नदा की पूजा करनेवाला पुत्र-पौत्र से युक्त होकर स्थिर लक्ष्मीवान् होता है।

(३) **क्षेत्र-पूर्णिमा** : मत्स्य-सूक्त—वृश्चिक राशि में पूर्णिमा हो, तो वह 'क्षेत्र-पूर्णिमा' कहलाती है। इसमें गुड़-खण्डों की बलि देकर पूजा करने से अलक्ष्मी का नाश होकर परा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। 'क्षेत्र-पूर्णिमा' के दिन से तीन रात्रि तक जौ, शर्करा आदि के मोदकों से पूजा कर केवल रात्रि में भोजन करे, तो 'सुर-यज्ञ' सम्पन्न होता है, जिससे महान् वैभव, धन, लक्ष्मी, सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

(४) **पितृ-श्राद्ध** : अमावास्या में गो-दुग्ध के चरु से पितरों का श्राद्ध मधु, गुड़, लवण और जल से सम्पन्न कर तीनों काल में तर्पण करे, तो अभीष्ट कामना की पूर्ति होती है और पितृ-लोक में उत्तम स्थान मिलता है।

पौष के कृत्य

(१) **सूर्य-पूजा** : शुक्ल पक्ष में सूर्य के धनु राशि में स्थित होने पर प्रतिपदा में प्रातः स्नान कर जितेन्द्रिय हो तीनों काल में सूर्य की पूजा करे, तो सभी रोगों से मुक्ति मिलती है।

(२) **कात्यायनी-पूजन** : शुक्ला चतुर्थी में एकाहारी रहते हुए रमेश की, पञ्चमी में कृष्ण, इन्द्र, विष्णु, मधुसूदन की, षष्ठी में स्कन्द (कार्तिकेय) और विशाखा की पूजा कर रात्रि में खीर खाए। दोनों पक्षों की सप्तमी, अष्टमी और नवमी में कात्यायनी की, दशमी में पार्वती-नाथ की, एकादशी में लक्ष्मी-पति की पूजा करे। विष्णु की पूजा पिष्टकों से करे। स्वयं रात्रि में ही ग्रहण करे। चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा में पुरोडाश-विधि से पितरों का तर्पण करे। इस प्रकार करनेवाला कभी दुखी नहीं होता।

माघ के कृत्य

(१) **वसन्त-पञ्चमी** : यह सर्व-पाप-मोचनी है। इसमें कामदेव और रति के साथ वसन्त की पूजा करे और वसन्त राग को सुने, तो श्री की प्राप्ति होती है।

(२) **सप्तमी-पूजा** : शुक्ला सप्तमी सूर्य-ग्रहण जैसी फल-प्रदा है। इसमें सूर्योदय के समय स्नान करना बड़ा पुण्यदायक है। बेर, अर्क, धान के ७-७ पत्र, लाल चावल और दूर्वा से शिर का मज्जन निम्न मन्त्र से करे—

ॐ यद्-यज्जन्म-कृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु,
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी।

फिर अर्क के ७ पत्र, लाल चावल, गन्ध, चन्दन, दूर्वा, जवा-पुष्प से सूर्य को अर्घ्य दे—

सप्त-सप्ति-प्रीति-वहे, सप्त-लोक-प्रदीपनि ! सप्त-व्याहृतिके, देवि ! नमस्ते रवि-मण्डले।
जननी सर्व-भूतानां सप्तमी सप्त-सप्तिके ! सप्त-व्याहृतिके, देवि ! नमस्ते रवि-मण्डले।

इस सप्तमी में दान, होम, जप, देव-पूजा का कोटि-गुण फल होता है। ब्राह्मणों को भोजन करा-कर स्वयं हविष्य ग्रहण करे। तीर्थ-स्नान का दश-गुणा, गङ्गा-स्नान का कोटि-गुणा फल होता है। रविवार को हो, तो कोटि-कोटि-गुण फल मिलता है। १०००, १०० या ५० अर्घ्य दे।

(३) **पुन्नाम-नक्षत्र-पूजा** : दशमी का व्रत 'पुन्नाम' नक्षत्र में कर्तव्य है। ये नक्षत्र हैं—१ हस्त, २ मित्र, ३ पुष्य, ४ ज्येष्ठा, ५ भृगु, ६ पुनर्वसु।

(४) **भीष्माष्टमी** : शुक्लाष्टमी में पितरों का श्राद्ध करने से समस्त श्राद्धों का पुण्य मिलता है। पितरों का तर्पण कर सभी द्विज वर्ण भीष्म के प्रति तीन तिलाञ्जलियाँ दक्षिण की ओर मुख कर निम्न मन्त्र से प्रदान करें—

एहि भीष्म, महा-बाहो, शान्तनोः कुल-नन्दन ! गृहाण दत्तमस्माभिः पानीयं वरदो भव।
वैयाघ्र - पद - गोत्राय सांकृति - प्रवराय च, अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्म-वर्मणे।

स्नान, तर्पण, दान सूर्योदय के समय करे किन्तु श्राद्ध सदा भीष्माष्टमी के मध्याह्न में करे।

(५) **विभूति-द्वादशी**—१ कार्तिक, २ मार्गशीर्ष, ३ माघ, ४ फाल्गुन, ५ आषाढ़—की शुक्ला द्वादशी की ५ तिथियाँ इस नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें उषा-काल में धात्री (आँवला) से स्नान कर गोविन्द की पूजा करे और गोदान कर होम, ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न करे, तो महा-पाप नष्ट होते हैं।

(६) **रटन्ती चतुर्दशी** : शुक्ला १४ में भगवती तारा की सविधि पूजा करने से महान् वैभव मिलता है।

फाल्गुन के कृत्य

(१) **महा-शिव-रात्रि** : नारद पञ्चरात्र, द्वितीय रात्र, सप्तम अध्याय—कृष्णा त्रयोदशी में, जिसकी रात्रि में चतुर्दशी हो, 'शिव-रात्रि' का व्रत करे। दिन में व्रत रखे और चतुर्दशी लगने पर स्नान कर नैवेद्य लगाए। प्रातः स्नान कर स्थण्डिल में शिव-लिङ्ग स्थापित करे। 'आप्यायस्व०' मन्त्र से दूध या दही द्वारा लिङ्ग को स्नान कराकर, 'मधुवाता०' मन्त्र से मधु द्वारा, गायत्री मन्त्र से गुड़ द्वारा, 'आपोहिष्ठा०' मन्त्र से रत्नोदक या पञ्चामृत से उसे स्नान कराए। फिर बिल्व-पत्र से मार्जन कर घट-स्थापन करे। सङ्कल्प के अन्त में निम्न मन्त्र पढ़े—

अद्य शैव-चतुर्दश्यां जागरयाम्यहं निशां, पूजा दानं जपं होमं कारयाम्यथ शक्तितः।
शिव, शङ्कर, सर्वज्ञ, व्रतानां फल - दायक ! शिव-रात्रि-व्रतं करोमि त्वत् - प्रसादतः।
चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा चैवापरेऽहनि, भोक्ष्येऽहं भुक्ति-मुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर !

उत्तराभिमुख होकर प्राणायाम करे। गणेश, दिक्-पालों, ग्रहों, मरुद्-गण, ब्रह्मा को कुम्भ में स्थापित कर उनकी पूजा करे। पूर्व-द्वार में नन्दी, महा-काल की; दक्षिण-द्वार में भूतेश, चण्ड-पाणि की; उत्तर-द्वार में वेताल, वृषभ की और मध्य में आधार–शक्तियों आदि की पूजा कर महेश का ध्यान करे—

वृषासन-गतं पद्मं तत्र पद्मासने स्थितं, शुद्ध-स्फटिक- सङ्काशमणिमादि - गुणैर्युतं ।
दशभिर्बाहुभिर्धत्ते शूल - शक्ति - वराभयं, खट्वांगं भुजगं चैव घण्टांकुशं तथैव च ।
डमरुं बीज-पूरं च नीलोत्पल-वरं तथा, द्वा-त्रिंशल्लक्षणोपेतं पञ्च-वक्त्रं त्रि-लोचनं ।

इच्छादि-शक्तियों सहित उन्हें बीज-मन्त्र से प्रतिष्ठित कर अङ्ग-पूजा-पूर्वक पाद्यादि अर्पित करे। फिर पूर्वादि-दलों में स्व-शक्ति-सहिता श्रीकण्ठ आदि की, उनके बाहर अष्ट-मूर्तियों की पूजा करे। तब घुटनों के बल बैठकर दधि–दूर्वा–अक्षत–गन्ध–पुष्प से युक्त अर्घ्य निम्न मन्त्र से अर्पित करे—

नमः शिवाय शान्ताय सर्व-पाप-हराय च, शिव-रात्रौ ददाम्यर्घ्यं प्रसीद उमया सह ।

इस व्रत में चारों पहर में स्नान करने की विधि है। स्नान न कर सके, तो 'मार्जन' कर ले। दूसरे प्रहर में निम्न मन्त्र से स्नान करना चाहिए—

अज्ञान-तिमिरान्धानां प्रणीत-कल्मषात्मनां, स्नानं करोमि देवेश ! सर्व-पाप-विशुद्धये ।

फिर पूर्ववत् शिव-लिङ्ग को स्नान कराकर रुद्र-सूक्त से अर्चन करे और हर, महेश, विजय, यक्षेश, शिव, नारायण, ब्रह्मा की पूजा कर होम के बाद मधु-क्षीर-घृत-कुश-पुष्प-गुड़-शर्करा से युक्त अघ्य निम्न मन्त्र से अर्पित करे—

नमः शिवाय शान्ताय भुक्ति-मुक्ति-प्रदाय च, शिव-रात्रौ ददाम्यर्घ्यं सर्वाभिमत-साधनं ।

तीसरे प्रहर में कुश द्वारा जल से अभ्युक्षण कर निम्न मन्त्र से स्नान करे—

विरूपाक्ष, महा-देव ! सु-चिन्त्यो मे भवाधिप, शिव-रात्रौ कृत-स्नानाद् भुक्ति-मुक्ति-प्रदो भव ।

इस मन्त्र से अर्घ्य दे—**शिव, शङ्कर, देवेश, प्रभो, पशुपते, हर ! गृहाणार्घ्यमिदं देव, उमा-कान्त ! प्रसीद मे ।**

फिर मन्मथ, हर, योगेश, माधव, धर्म, विष्णु-लोक की पूजा कर चौथे प्रहर में स्नान कर निम्न मन्त्र से मार्जन करे—

यथाष्ट-कोटि-लिङ्गानां यत् फलं पूजनाद् विभो ! तदेतत् प्राप्यते नाथ ! शिव-रात्रौ स्नान-कर्मणा ।

फिर मध्य-पीठ में पावक, भुवन, विष्णु, नरसिंह, इन्द्र, जनार्दन, माधव, गौरी, वीरभद्र, चन्द्रार्द्ध-कृत-शेखर की पूजा कर निम्न मन्त्र से अर्घ्य दे—

सर्व-पाप विशुद्धचर्थमर्घ्यो मे प्रति-गृह्यतां, संसार-क्लेश-दग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर !
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं शिव-रात्रौ प्रसीद मे ।

अगले दिन प्रातः नित्य-कर्म कर 'त्र्यम्बक०' मन्त्र से शिवलिङ्ग को स्नान कराकर पूजन करे। अन्त में दक्षिणा देकर विधिवत् पारण करे। 'नमः शिवायः' मन्त्र से ब्राह्मणों को भोजन कराये।

(२) **शक्ति-पूजा** : वृहन्नील तन्त्र, सप्तम पटल—शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ कर शुक्ला नवमी तक शक्ति-पूजा की विशेष विधि है। सर्व-प्रथम मध्य रात्रि में घर के आँगन में केले के खम्भों से सुन्दर मण्डप बनाए। उसे आम, बरगद, पीपल के पत्तों से सुशोभित करे। काली, तारा या अन्नदा आदि महा-देवी की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर दूध से पाद्य, कुशोदक से अर्घ्य, मधुपर्क देकर जल से आचमनादि-क्रम से स्नान कराकर लाल वस्त्र, आभूषणादि प्रदान करे। तण्डुल-रहित नैवेद्य दे, जिसमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय—चारों पदार्थ हों। रक्त चन्दन के दानों से बनी माला द्वारा अष्ट-सहस्र १००८ मन्त्र-जप कर छाग बलि अर्पित करे। अन्न, मत्स्य, मांस, घृतादि से युक्त पिष्टक प्रदान करे। यथा-शक्ति होम कर कुमारियों

का पूजन करे। इस प्रकार काली, तारा, अन्नपूर्णा, भैरवी की पूजा करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

चैत्र से भाद्रपद तक के शेष छः मासों के पर्वों का सामान्य विवरण ही मूल में दिया है। अतः कृपया उसे मूल 'प्राण-तोषिणी तन्त्र', द्वितीय भाग में देखें।

वार्षिक कृत्य

वरदा तन्त्र, पञ्चम पटल—कालिका की त्र्यक्षरी विद्या गुरु-मुख से ग्रहण कर प्रथम दिन जवा पुष्प, कुंकुम और वर्बर (श्वेत चन्दन) से देवी की पूजा कर एकान्त गृह में एक सहस्र मन्त्र-जप करे। १०८ होम दूर्वा-घृत-इन्दुक (श्वेत कमल) या कालागरु और घृत से निम्न मन्त्र द्वारा करे—

कालि, कालि, राजेश्वरि, राज्य-प्रदे ! राज्यं देहि दयामयि ! स्वाहा।

इस साधना में स्वेच्छाचार है। स्थानादि-शोधन की विधि नहीं है। एक वर्ष तक प्रतिदिन नियम से १०८ वार मन्त्र जपना चाहिए। पुरश्चरण की अन्य विधि की आवश्यकता नहीं है। पूर्णिमा में एक पैर से खड़े रहकर मन्त्र का जप करे और कालागुरु-द्रव्य से शिवा का तर्पण करे। कृष्णाष्टमी में विल्व-वृक्ष को, चतुर्दशी में जवा-तरु को, सभी अमावास्या तिथियों में शेफाली-तरु को सूर्योदय के समय स्पर्श कर दस-दस वार मन्त्र का जप करे। कृष्णाष्टमी और चतुर्दशी में अति यत्न से पूजन करे, रात्रि में १०८ आहुति देकर रात्रि में भी १०८ जप करे। इस प्रकार बारह महीने तक साधना करने से विपुल वैभव की प्राप्ति होती है।

वर्ष के मध्य यदि शत्रु-बाधा हो, तो उसके शमन के लिए इस मन्त्र का जप करे—

मूलं अमुकं स्तम्भय स्वाहा।

'मूल' अर्थात् कालिका त्र्यक्षरी। इस मन्त्र को ब्राह्मण गुरुवार में, क्षत्रिय शुक्रवार में, वैश्य मङ्गल के दिन और शूद्र रवि-सुत (शनि)के दिन जपे। पाँच दिनों तक प्रतिदिन पूर्वाह्ण में निर्जन स्थान में एक सहस्र-मन्त्र-जप करे। तब दक्षिणा कालिका की पूजा कर शत्रु-नाम के नक्षत्र में उन्मत्त (धत्तूर) की जड़ उखाड़कर कुंकुम में घर्षित करे और श्वेत चन्दन, कर्पूर, जाती, लवङ्ग, कुचन्दन, जवा, दूर्वा को एकत्रकर निम्न मन्त्र से राम-तत्व मुद्रा द्वारा बलि प्रदान करे—

ॐ कालिके, काल-रात्रिके ! मद्-दत्तं गृह्ण गृह्ण अमुकस्य कार्यं विनाशय, छिन्धि छिन्धि, मथ मथ, मम राज्यं प्रदापय स्वाहा।

यह बलि अष्टमी में दे। इससे शत्रु की शक्ति क्षीण होकर अभीष्ट वैभव की प्राप्ति होती है। कामना पूरी होने पर कालिका की वृहत् पूजा कर ब्राह्मणों, स्त्रियों, दीनजनों को भोजन-वस्त्र-धनादि से सन्तुष्ट करे। नारी और ब्राह्मण की निन्दा मन, वचन कर्म से कदापि न करे, तभी साधना सफल होगी।

वामकेश्वर तन्त्र, चतुःपञ्चाशत्-पटल—बारह मासों की १२ अमावास्या तिथियों में पूजादि करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'कुल-वार' और 'कुल-तिथि' में पूजन कर रात्रि में जप करे। 'कुज' (मङ्गल) और 'मन्द' (शनि)—ये दो 'कुल-वार' हैं और अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा—ये पाँच 'कुल-तिथियाँ' हैं। इनमें संक्रान्ति होने से 'महा-योग' बनता है।

देवी की सोलह यात्रायें

१ मञ्च-यात्रा : वैशाख-पूर्णिमा में चार हाथ के लम्बे-चौड़े ऊँचे मञ्च पर 'देवेशी' को गीत-मङ्गल-वाद्य सहित प्रतिष्ठित कर चन्दन, अगरु, कर्पूर, कुंकुम, अलक्तक, सिन्दूर, कस्तूरी, मधु से उनके गात्र का मार्जन कर कर्पूर-वासित जल से स्नान कराये। फिर मन्दिर में ले जाकर सविधि पूजा कर होम करे। बलि देकर भोजनादि से सन्तुष्ट करे। कुमारी-पूजन कर ब्राह्मणों को भी भोजन कराये।

२ महा-स्नान-यात्रा : ज्येष्ठ में कर्पूरादि से सुगन्धित जल से पूर्ण १०८ कलशों से स्नान कराकर वस्त्र से गात्र को पोछकर घृत-गुग्गुल की धूप दे। फिर मञ्च से मन्दिर में ले जाकर बलि, पूजा, होम करे। गन्धाष्टक से अङ्गराग कर कुमारी, सुवासिनी और ब्राह्मणों का पूजन कर प्रसाद ग्रहण करे।

३ रथ-यात्रा : आषाढ़ में पहले 'अम्बुवाची' के दिन-त्रय में सङ्गोपन-गृह में वस्त्रावेष्टनों में देवी को स्थापित करे। रात्रि में महा-निशा-योग में पञ्चाचार से पूजन कर बलि दे और होम कर विहार करे। शुक्ला द्वितीया में 'चण्डिका' को रथ पर स्थापित कर नृत्य, गीतादि के साथ स्वेच्छापूर्वक घुमाये। फिर पूजा-गृह में ले जाकर बलि, होमादि से पूजन कर कुमारी, सुवासिनी, ब्राह्मण—सबको भोजन कराये।

४ जल-यात्रा : श्रावण में वस्त्र, चामर, भूषण से नौका को सजाकर उसमें देवी को स्थापित कर गीत-वाद्य-सहित उसे साधक स्वयं खेकर घुमाए। फिर पूजा-गृह में ले जाकर विधिवत् पूजन करे।

५ धूनन-यात्रा : भाद्र में त्रयोदशी से प्रारम्भ कर तीन दिनों तक प्रतिदिन पूजन कर रात्रि में बलि, होम कर कुमारी आदि को सन्तुष्ट करे। कुहु (अमावास्या) या पूर्णिमा में धूनन करे।

६ महा-पूजा-यात्रा : आश्विन में नवमी में महा-पूजा आरम्भ करे। प्रतिदिन बलि, होम, स्तवादि से देवी की पूजा कर कुमारी आदि को भोजन कराये। दिन में पशु या वीर-भाव से और रात्रि में कुलाचार से पूजन करे। अशक्त हो, तो तीन दिन ही 'शिवा' की यह महा-पूजा करे।

७ दीप-यात्रा : कार्तिक की अमावास्या में रात्रि के महा-निशा-योग में दीपादि से देवी-गृह को सजाकर पूजा, बलि, होमादि से अर्चन करे। घी के अभाव में तैल-दीप जलाए।

८ नवान्न-यात्रा : मार्गशीर्ष में मत्स्य, मांस, पायस, दुग्ध, दधि, घृत, मधु, सूप, शाक, पिष्टक, मिष्ठान्न, तिल-लड्डू, शर्करा-गुड़-मिश्रित नारिकेल—सभी नौ-नौ की मात्रा में देकर पूजन करे।

९ अंगराग-यात्रा : पौष में अङ्गराग-विधि कर नए वस्त्र और विविध अलङ्कार देकर पूजा करे। होम, बलि, ब्राह्मण-पूजा के बिना महा-देवी की पूजा सम्पन्न नहीं होती, इसे सदा ध्यान में रखे।

१० दोला-केलि-यात्रा : माघ में 'रटन्ती' नाम से प्रसिद्ध कृष्णा-चतुर्दशी में 'चण्डिका' के प्रीत्यर्थ ब्राह्मणों, जाड़े से दुःखी लोगों, भूखों और दरिद्रों को अन्न, वस्त्र, सुवर्ण देकर यथा-शक्ति पूजन करे।

११ दूती-यात्रा : फाल्गुन पूर्णिमा में तीन खण्ड वाला मञ्च बनाकर उसमें देवी का आसन वस्त्र-वेष्टन से सजाये। चारों ओर पताका, केले, घण्टियाँ लगाए। गीतादि से 'कालिका' को सन्तुष्ट करे।

१२ दूती-याग-यात्रा : चैत्र कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि में दूती-यागोक्त मन्त्रों द्वारा देवी की पूजा कर नौ कन्याओं को या एक ही विप्र-कन्या को पूजनपूर्वक भोजन करा स्वयं भोजन करे।

१३ वासन्ती-यात्रा : यह चैत्र शुक्ल पक्ष में तीन दिनों तक बलि, होमादि सहित की जाती है।

१४ रास-यात्रा : चैत्र पूर्णिमा की अर्द्ध-निशा में पूर्व-वत् मञ्च बनाकर उसमें देवी को आसन देकर भैरवी-भैरव-सहित उनका पूजन कर नृत्य, गीत, वाद्यादि उत्सव करे।

१५ नील-यात्रा : संक्रान्ति में 'नील-यात्रा' प्रारम्भ करे। महाकाल की तुष्टि के लिए धूप प्रदान करे। रात्रि में महाकाल के साथ देवी की पूजा करे। संवित्-प्रधान विविध पदार्थों से युक्त नैवेद्य दे कर स्तुति करे और बन्धु-बान्धव-सहित नृत्य, गीतादि द्वारा उत्सव मनाए।

१६ शिवा बलि : अर्द्ध-निशा में शिवा-बलि देकर भगवती को सन्तुष्ट करे।

उक्त प्रकार सांवत्सरी 'यात्रा' सम्पन्न करने से साधक गुरुदेव की कृपा से भगवान् शिव के तुल्य प्रतापी एवं तेजस्वी होता है, इसमें सन्देह नहीं।

प्राण-तोषिणी तन्त्र

भाग १ : सर्ग-काण्ड एवम् धर्म-काण्ड

मूल-मात्रः संस्कृत में

१२५ प्राचीन तन्त्र ग्रन्थों द्वारा तान्त्रिक-साधना के महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन

सुन्दर सजिल्द : मूल्य ५० रु०

हिन्दी महानिर्वाण तन्त्र

मूल्य २०-००

हिन्दी कुलार्णव-तन्त्र

मूल्य १५-००

सचित्र श्री कुण्डलिनी साधना

मूल्य १५-००

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग--६